मंटो

ठंडा गोश्त

और अन्य कहानियाँ

सआदत हसन मंटो

मई 11, 1912—जनवरी 18, 1955

भारत-विभाजन की पृष्ठभूमि में लिखी 'टोबा टेक सिंह' लेखक मंटो की सबसे मशहूर कहानी है। मई 11, 1912 को जन्मे सआदत हसन मंटो का साहित्यिक सफ़र अंग्रेज़ी, फ्रेंच और रूसी लेखकों की रचनाओं के अनुवाद से आरम्भ हुआ। शुरू के लेखन में मंटो समाजवादी और वामपंथी सोच से प्रभावित नज़र आते हैं, लेकिन देश के बँटवारे ने उन को बहुत गहरा और अमिट घाव दिया जिसकी परछाईं उनकी अनेक कहानियों में मिलती है, जिनमें उन दिनों के पागलपन, क्रूरता और दहशत को दर्शाया गया है। कई बार उनकी लिखी कहानियों पर अश्लीलता के आरोप लगाए गए। 1947 में विभाजन के बाद, मंटो पाकिस्तान में जा बसे। लेकिन वहाँ उन्हें मुम्बई जैसा बौद्धिक वातावरण और दोस्त नहीं मिले और वह अकेलेपन और शराब के अँधेरे में डूबने लगे और 1955 में गुर्दे की बीमारी के कारण उनकी

मौत हो गई।

ठंडा गोश्त और अन्य कहानियाँ

सआदत हसन मंटो

क्रम

ठंडा गोश्त

ईश्वरसिंह ज्यों ही होटल के कमरे में दाख़िल हुआ, कुलवन्त कौर पलँग पर से उठी। अपनी तेज़ आँखों से उसकी तरफ़ घूरकर देखा और दरवाज़े की चिटखनी बन्द कर दी। रात के बारह बज चुके थे। शहर का वातावरण एक अजीब रहस्यमयी ख़ामोशी में गर्क था।

कुलवन्त कौर पलँग पर आलथी-पालथी मारकर बैठ गयी। ईश्वरसिंह, जो शायद अपने समस्यापूर्ण विचारों के उलझे हुए धागे खोल रहा था, हाथ में कृपाण लेकर एक कोने में खड़ा था। कुछ क्षण इसी तरह ख़ामोशी में बीत गये। कुलवन्त कौर को थोड़ी देर के बाद अपना आसन पसन्द न आया और दोनों टाँगें पलँग से नीचे लटकाकर उन्हें हिलाने लगी। ईश्वरसिंह फिर भी कुछ न बोला।

कुलवन्त कौर भरे-भरे हाथ-पैरों वाली औरत थी। चौड़े-चकले कूल्हे थुल-थुल करने वाले गोश्त से भरपूर। कुछ बहुत ही ज़्यादा ऊपर को उठा हुआ सीना, तेज़ आँखें, ऊपरी होंठ पर सुरमई ग़ुबार, ठोड़ी की बनावट से पता चलता था कि बड़े धड़ल्ले की औरत है।

ईश्वरसिंह सर नीचा किये एक कोने में चुपचाप खड़ा था। सर पर उसके कसकर बाँधी हुई पगड़ी ढीली हो रही थी। उसने हाथ में जो कृपाण थामी हुई थी, उसमें थोड़ी-थोड़ी कम्पन थी, उसके आकार-प्रकार और डील-डौल से पता चलता था कि वह कुलवन्त कौर जैसी औरत के लिए सबसे उपयुक्त मर्द है।

कुछ क्षण जब इसी तरह ख़ामोशी में बीत गये तो कुलवन्त कौर छलक पड़ी, लेकिन तेज़ आँखों को नचाकर वह सिर्फ़ इस कदर कह सकी—"ईशरसियाँ!"

ईश्वरसिंह ने गर्दन उठाकर कुलवन्त कौर की तरफ़ देखा, मगर उसकी निगाहों की गोलियों की ताब न लाकर मुँह दूसरी तरफ़ मोड़ लिया।

कुलवन्त कौर चिल्लायी—"ईशरसियाँ!" लेकिन फ़ौरन ही आवाज़ भींच ली, पलँग पर से उठकर उसकी तरफ़ होती हुई बोली—"कहाँ गायब रहे तुम इतने दिन?"

ईश्वरसिंह ने खुश्क होंठों पर ज़बान फेरी—"मुझे मालूम नहीं।"

कुलवन्त कौर भन्ना गयी, "यह भी कोई माइयावा जवाब है!"

ईश्वरसिंह ने कृपाण एक तरफ़ फेंक दी और पलँग पर लेट गया। ऐसा मालूम होता था, वह कई दिनों का बीमार है। कुलवन्त कौर ने पलँग की तरफ़ देखा, जो अब ईश्वरसिंह से लबालब भरा था और उसके दिल में हमदर्दी की भावना पैदा हो गयी। चुनांचे उसके माथे पर हाथ रखकर उसने बड़े प्यार से पूछा, "जानी, क्या हुआ तुम्हें?"

ईश्वरसिंह छत की तरफ़ देख रहा था। उससे निगाहें हटाकर उसने कुलवन्त कौर के परिचित चेहरे को टटोलना शुरू किया, "कुलवन्त।"

आवाज़ में दर्द था। कुलवन्त कौर सारी-की-सारी सिमटकर अपने ऊपरी होंठ में आ गयी—"हाँ, जानी।" कहकर वह उसको दाँतों से काटने लगी।

ईश्वरसिंह ने पगड़ी उतार दी। कुलवन्त कौर की तरफ़ सहारा लेनेवाली निगाहों से देखा। उसके गोश्त भरे कूल्हे पर ज़ोर से थप्पा मारा और सर को झटका देकर अपने-आपसे कहा, "इस कुड़ी दा दिमाग ही खराब है।"

झटके देने से उसके केश खुल गये। कुलवन्त उँगलियों से उनमें कंघी करने लगी। ऐसा करते हुए उसने बड़े प्यार से पूछा, "ईशरसियाँ, कहाँ रहे तुम इतने दिन?"

"बूरे की माँ के घर।" ईश्वरसिंह ने कुलवन्त कौर को घूरकर देखा और फौरन दोनों हाथों से उसके उभरे हुए सीने को मसलने लगा, "कसम वाहे गुरु की, बड़ी जानदार औरत हो!"

कुलवन्त कौर ने एक अदा के साथ ईश्वरसिंह के हाथ एक तरफ़ झटक दिये और पूछा, "तुम्हें मेरी कसम, बताओ कहाँ रहे?—शहर गये थे?"

ईश्वरसिंह ने एक ही लपेट में अपने बालों का जूड़ा बनाते हुए जवाब दिया, "नहीं।"

कुलवन्त कौर चिढ़ गयी, "नहीं, तुम ज़रूर शहर गये थे और तुमने बहुत-सा रुपया लूटा है, जो मुझसे छुपा रहे हो।"

"वह अपने बाप का तुख़्म (बीज) न हो, जो तुमसे झूठ बोले।"

कुलवन्त कौर थोड़ी देर के लिए ख़ामोश हो गयी, लेकिन फौरन ही भड़क उठी, "लेकिन मेरी समझ में नहीं आता उस रात तुम्हें हुआ क्या? अच्छे-भले मेरे साथ लेटे थे। मुझे तुमने वे तमाम गहने पहना रखे थे, जो तुम शहर से लूटकर लाये थे। मेरी पप्पियाँ ले रहे थे। पर जाने एकदम तुम्हें क्या हुआ, उठे और कपड़े पहनकर बाहर निकल गये।"

ईश्वरसिंह का रंग ज़र्द हो गया। कुलवन्त ने यह तब्दीली देखते ही कहा, "देखा, कैसे रंग पीला पड़ गया ईशरसियाँ, कसम वाहे गुरु की, ज़रूर कुछ दाल में काला है।"

"तेरी जान की कसम, कुछ भी नहीं!"

ईश्वरसिंह की आवाज़ बेजान थी। कुलवन्त कौर का शुबहा और ज़्यादा मज़बूत हो गया। ऊपरी होंठ भींचकर उसने एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए कहा, "ईशरसियाँ, क्या बात है, तुम वह नहीं हो, जो आज से आठ रोज़ पहले थे।"

ईश्वरसिंह एकदम उठ बैठा, जैसे किसी ने उस पर हमला किया था। कुलवन्त कौर को अपने मज़बूत बाज़ुओं में समेटकर उसने पूरी ताकत के साथ झंझोड़ना शुरू कर दिया, "जानी, मैं वही हूँ—घुट-घुट कर पा जफियाँ, तेरी निकले हड्डाँ दी गर्मी।"

कुलवन्त कौर ने कोई बाधा न दी, लेकिन वह शिकायत करती रही, "तुम्हें उस रात क्या हो गया था?"

"बूरे की माँ का वह हो गया था!"

"बताओगे नहीं?"

"कोई बात हो तो बताऊँ।"

"मुझे अपने हाथों से जलाओ, अगर झूठ बोलो।"

ईश्वरसिंह ने अपने बाज़ू उसकी गर्दन में डाल दिये और होंठ उसके होंठ पर गड़ा दिये। मूँछों के बाल कुलवन्त कौर के नथुनों में घुसे तो उसे छींक आ गयी। ईश्वरसिंह ने अपनी जर्सी उतार दी और कुलवन्त कौर को वासनामयी नज़रों से देखकर कहा, "आओ जानी, एक बाज़ी ताश की हो जाये।"

कुलवन्त कौर के ऊपरी होंठ पर पसीने की नन्ही-नन्ही बूँदें फूट आयीं। एक अदा के साथ उसने अपनी आँखों की पुतलियाँ घुमायीं और कहा, "चल, दफा हो।"

ईश्वरसिंह ने उसके भरे हुए कूल्हे पर ज़ोर से चुटकी भरी। कुलवन्त कौर तड़पकर एक तरफ़ हट गयी, "न कर ईशरसियाँ, मेरे दर्द होता है!"

ईश्वरसिंह ने आगे बढ़कर कुलवन्त कौर का ऊपरी होंठ अपने दाँतों तले दबा लिया और कचकचाने लगा। कुलवन्त कौर बिल्कुल पिघल गयी। ईश्वरसिंह ने अपना कुर्ता उतारकर फेंक दिया और कहा, "तो फिर हो जाये तुरप चाल।"

कुलवन्त कौर का ऊपरी होंठ कँपकँपाने लगा। ईश्वरसिंह ने दोनों हाथों से कुलवन्त कौर की कमीज़ का घेरा पकड़ा और जिस तरह बकरे की खाल उतारते हैं, उसी तरह उसको उतारकर एक तरफ़ रख दिया। फिर उसने घूरकर उसके नंगे बदन को देखा और ज़ोर से उसके बाज़ू पर चुटकी भरते हुए कहा, "कुलवन्त, कसम वाहे गुरु की! बड़ी करारी औरत है तू।"

कुलवन्त कौर अपने बाज़ू पर उभरते हुए धब्बे को देखने लगी, "बड़ा ज़ालिम है तू ईशरसियाँ।"

ईश्वरसिंह अपनी घनी काली मूँछों में मुस्कुराया, "होने दे आज ज़ालिम।" और यह कहकर उसने और ज़ुल्म ढाने शुरू किये। कुलवन्त कौर का ऊपरी होंठ दाँतों तले किचकिचाया, कान की लवों को काटा, उभरे हुए सीने को भँभोड़ा, भरे हुए कूल्हों पर आवाज़ पैदा करने वाले चाँटे मारे, गालों के मुँह भर-भरकर बोसे लिये, चूस-चूसकर उसका सीना थूकों से लथेड़ दिया। कुलवन्त कौर तेज़ आँच पर चढ़ी हुई हांडी की तरह उबलने लगी। लेकिन ईश्वरसिंह इन तमाम हीलों के बावजूद खुद में हरकत पैदा न कर सका। जितने गुर और जितने दाँव उसे याद थे, सबके-सब उसने पिट जाने वाले पहलवान की तरह इस्तेमाल कर दिये, परन्तु कोई कारगर न हुआ। कुलवन्त कौर के सारे बदन के तार तनकर खुद-ब-खुद बज रहे थे, गैरज़रूरी छेड़छाड़ से तंग आकर कहा, "ईशरसियाँ, काफ़ी फेंट चुका है, अब पत्ता फेंक!"

यह सुनते ही ईश्वरसिंह के हाथ से जैसे ताश की सारी गड्डी नीचे फिसल गयी। हाँफता हुआ वह कुलवन्त के पहलू में लेट गया और उसके माथे पर सर्द पसीने के लेप होने लगे।

कुलवन्त कौर ने उसे गरमाने की बहुत कोशिश की, मगर नाकाम रही। अब तक सब कुछ मुँह से कहे बगैर होता रहा था, लेकिन जब कुलवन्त कौर के क्रियापेक्षी अंगों को सख्त निराशा हुई तो वह झल्लाकर पलँग से उतर गयी। सामने खूँटी पर चादर पड़ी थी, उसे

उतारकर उसने जल्दी-जल्दी ओढ़कर और नथुने फुलाकर बिफरे हुए लहज़े में कहा, “ईशरसियाँ, वह कौन हरामज़ादी है, जिसके पास तू इतने दिन रहकर आया है और जिसने तुझे निचोड़ डाला है?”

कुलवन्त कौर गुस्से से उबलने लगी, “मैं पूछती हूँ, कौन है वह चड्डो-है वह उल्फती, कौन है वह चोर-पत्ता?”

ईश्वरसिंह ने थके हुए लहज़े में कहा, “कोई भी नहीं कुलवन्त, कोई भी नहीं।”

कुलवन्त कौर ने अपने उभरे हुए कूल्हों पर हाथ रखकर एक दृढ़ता के साथ कहा, “ईशरसियाँ! मैं आज झूठ-सच जानकर रहूँगी—खा वाहे गुरु जी की कसम—इसकी तह में कोई औरत नहीं?”

ईश्वरसिंह ने कुछ कहना चाहा, मगर कुलवन्त कौर ने इसकी इजाज़त न दी, “कसम खाने से पहले सोच ले कि मैं भी सरदार निहालसिंह की बेटी हूँ तक्का-बोटी कर दूँगी अगर तूने झूठ बोला—ले, अब खा वाहे गुरु जी की कसम—इसकी तह में कोई औरत नहीं?”

ईश्वरसिंह ने बड़े दु:ख के साथ हाँ में सर हिलाया। कुलवन्त कौर बिल्कुल दीवानी हो गयी। लपककर कोने में से कृपाण उठायी। म्यान को केले के छिलके की तरह उतारकर एक तरफ़ फेंका और ईश्वरसिंह पर वार कर दिया।

आन-की-आन में लहू के फव्वारे छूट पड़े। कुलवन्त कौर को इससे भी तसल्ली न हुई तो उसने वहशी बिल्लियों की तरह ईश्वरसिंह के केश नोचने शुरू कर दिये। साथ-ही-साथ वह अपनी नामालूम सौत को मोटी-मोटी गालियाँ देती रही। ईश्वरसिंह ने थोड़ी देर बाद दुबली आवाज़ में विनती की, “जाने दे अब कुलवन्त, जाने दे।”

आवाज़ में बला का दर्द था। कुलवन्त कौर पीछे हट गयी।

खून ईश्वरसिंह के गले में उड़-उड़ कर उसकी मूँछों पर गिर रहा था। उसने अपने काँपते होंठ खोले और कुलवन्त कौर की तरफ़ शुक्रियों और शिकायतों की मिली-जुली निगाहों से देखा।

“मेरी जान, तुमने बहुत जल्दी की—लेकिन जो हुआ, ठीक है।”

कुलवन्त कौर की ईर्ष्या फिर भड़की, “मगर वह कौन है, तेरी माँ?”

लहू ईश्वरसिंह की ज़बान तक पहुँच गया। जब उसने उसका स्वाद चखा तो उसके बदन में झुरझुरी-सी दौड़ गयी।

“और मैं...और मैं भेनी या छरू आदमियों को कत्ल कर चुका हूँ—इसी कृपाण से।”

कुलवन्त कौर के दिमाग में दूसरी औरत थी—“मैं पूछती हूँ कौन है वह हरामज़ादी?”

ईश्वरसिंह की आँखें धुँधला रही थीं। एक हल्की-सी चमक उनमें पैदा हुई और उसने कुलवन्त कौर से कहा, “गाली न दे उस भड़वी को।”

कुलवन्त कौर चिल्लायी, “मैं पूछती हूँ, वह कौन?”

ईश्वरसिंह के गले में आवाज़ रुँध गयी—“बताता हूँ,” कहकर उसने अपनी गर्दन पर हाथ फेरा और उस पर अपना खून देखकर मुस्कुराया, “इन्सान माइयावा भी एक अजीब चीज़ है।”

कुलवन्त कौर उसके जवाब का इन्तज़ार कर रही थी, “ईशरसिंह, तू मतलब की बात कर।”

ईश्वरसिंह की मुस्कुराहट उसकी लहू भरी मूँछों में और ज़्यादा फैल गयी, “मतलब ही की बात कर रहा हूँ—गला चिरा हुआ है माइयावा मेरा—अब धीरे-धीरे ही सारी बात बताऊँगा।”

और जब वह बताने लगा तो उसके माथे पर ठंडे पसीने के लेप होने लगे, “कुलवन्त! मेरी जान—मैं तुम्हें नहीं बता सकता, मेरे साथ क्या हुआ?—इन्सान कुड़िया भी एक अजीब चीज़ है—शहर में लूट मची तो सबकी तरह मैंने भी इसमें हिस्सा लिया—गहने-गाटे और रुपये-पैसे जो भी हाथ लगे, वे मैंने तुम्हें दे दिये—लेकिन एक बात तुम्हें न बतायी?”

ईश्वरसिंह ने घाव में दर्द महसूस किया और कराहने लगा। कुलवन्त कौर ने उसकी तरफ़ तवज्जो न दी और बड़ी बेरहमी से पूछा, “कौन-सी बात?” ईश्वरसिंह ने मूँछों पर जमे हुए जरिये उड़ाते हुए कहा, “जिस मकान पर...मैंने धावा बोला था...उसमें सात...उसमें सात आदमी थे—छरू मैंने कत्ल कर दिये...इसी कृपाण से, जिससे तूने मुझे...छोड़ इसे...सुन...एक लड़की थी, बहुत ही सुन्दर, उसको उठाकर मैं अपने साथ ले आया।”

कुलवन्त कौर ख़ामोश सुनती रही। ईश्वरसिंह ने एक बार फिर फूँक मारकर मूँछों पर से लहू उड़ाया, “कुलवन्ती जानी, मैं तुझसे क्या कहूँ, कितनी सुन्दर थी—मैं उसे भी मार डालता, पर मैंने कहा, नहीं ईशरसियाँ, कुलवन्त कौर के हर रोज़ मज़े लेता है, यह मेवा भी चखकर देख!”

कुलवन्त कौर ने सिर्फ़ इस कदर कहा, “हूँ।”

“और मैं उसे कन्धे पर डालकर चल दिया...रास्ते में...क्या कह रहा था मैं...हाँ, रास्ते में...नहर की पटरी के पास, थूहड़ की झाड़ियों तले मैंने उसे लिटा दिया—पहले सोचा कि फेंटूँ, फिर ख़याल आया कि नहीं...” यह कहते-कहते ईश्वरसिंह की ज़बान सूख गयी।

कुलवन्त ने थूक निगलकर हलक तर किया और पूछा, “फिर क्या हुआ?”

ईश्वरसिंह के हलक से मुश्किल से ये शब्द निकले, “मैंने...मैंने पत्ता फेंका...लेकिन...लेकिन...। ”

उसकी आवाज़ डूब गयी।

कुलवन्त कौर ने उसे झिंझोड़ा, “फिर क्या हुआ?”

ईश्वरसिंह ने अपनी बन्द होती आँखें खोलीं और कुलवन्त कौर के जिस्म की तरफ़ देखा, जिसकी बोटी-बोटी थिरक रही थी, “वह...वह मरी हुई थी...लाश थी...बिलकुल ठंडा गोश्त...जानी, मुझे अपना हाथ दे...!”

कुलवन्त कौर ने अपना हाथ ईश्वरसिंह के हाथ पर रखा जो बर्फ़ से भी ज्य़ादा ठंडा था।

मोमबत्ती के आँसू

गंदे ताक़ पर, जो जर्जर दीवार में बना था, मोमबत्ती सारी रात रोती रही थी। मोम पिघल-पिघल कर कमरे के गीले फ़र्श पर ओस के ठिठुरे हुए धुँधले क़तरों की मानिन्द बिखर रहा था। नन्ही लाजो मोतियों का हार लेने पर ज़िद करने और रोने लगी तो उसकी माँ ने मोमबत्ती के उन जमे हुए आँसुओं को एक कच्चे धागे में पिरोकर उनका हार बना दिया। नन्ही लाजो उस हार को पहिनकर ख़ुश हो गयी और तालियाँ बजाती हुई बाहर चली गयी।

रात आयी...मैल भरे ताक़चे में नयी मोमबत्ती रौशन हुई और उसकी कानी आँख उस कमरे का अँधेरा देखकर एक लम्हे के लिए हैरत के कारण चमक उठी। मगर थोड़ी देर के बाद जब वह उस माहौल की आदी हो गयी तो उसने ख़ामोशी से टिकटिकी बाँधकर अपने आस-पास देखना शुरू कर दिया।

नन्ही लाजो एक छोटी-सी खटिया पर पड़ी सो रही थी और ख़्वाब में अपनी सहेली बिन्दु से लड़ रही थी कि वह अपनी गुड़िया का ब्याह उसके गुड्डे से कभी नहीं करेगी। इसलिए कि वह बदसूरत है।

लाजो की माँ खिड़की के साथ लगी, ख़ामोश और नीम (अर्ध) रौशन सड़क पर फैली हुई कीचड़ को हसरत भरी निगाहों से देख रही थी। खिड़की के उस तरफ़ लोहे के खम्भे पर एक लालटेन दिसम्बर की सर्दी में मजबूर सन्तरी की तरह ऊँघ रही थी। सामने भटियारे की बन्द दुकान के बाहर चबूतरे पर अँगीठी में से कोयलों की चिंगारियाँ ज़िद्दी बच्चों की तरह मचल-मचलकर नीचे गिर रही थीं।

घंटे ने बारह बजाये। बारह की आख़िरी पुकार दिसम्बर की सर्द रात में थोड़ी देर तक काँपती रही और फिर ख़ामोशी का लिहाफ़ ओढ़कर सो गयी...लाजो की माँ के कानों में नींद का बड़ा सुहाना पैग़ाम गुनगुनाया, मगर उसकी अंतड़ियाँ उसके दिमाग़ तक कोई और ही बात पहुँचा चुकी थीं।

अचानक सर्द हवा के झोंके से घुँघरुओं की मद्धिम झनझनाहट उसके कानों तक पहुँची। उसने ये आवाज़ अच्छी तरह सुनने के लिए कानों में अपनी समझ-बूझ की ताकत भरनी शुरू कर दी।

घुँघरू रात की ख़ामोशी में मरते हुए आदमी के हलक में अटके हुए साँस की तरह बजने शुरू हो गये। लाजो की माँ इत्मिनान से बैठ गयी। घोड़े की हिनहिनाहट ने रात की ख़ामोशी में कम्पन पैदा कर दिया और एक ताँगा लालटेन के खम्भे के बगल में आ खड़ा हुआ। ताँगेवाला नीचे उतरा। घोड़े की पीठ पर थपकी देकर उसने खिड़की की तरफ़

देखा...चिक उठी हुई थी और तख़्त पर एक धुँधला साया भी नज़र आ रहा था।

अपने खुरदरे कम्बल को जिस्म पर अच्छी तरह लपेटकर ताँगेवाले ने अपनी जेब में हाथ डाला। साढ़े तीन रुपये का करियाना था। उसमें से उसने एक रुपया चार आने अपने पास लिये और बाकी पैसे ताँगे की अगली सीट का गद्दा उठाकर नीचे छिपा दिये। ये काम करने के बाद वह कोठे की सीढ़ियों की तरफ़ बढ़ा।

लाजो की माँ चन्दो सुनयारी उठी और दरवाज़ा खोल दिया।

माधव ताँगेवाला अन्दर दाख़िल हुआ और दरवाज़े की ज़ंजीर चढ़ाकर उसने चन्दो सुनयारी को अपने साथ लपटा लिया।

“भगवान जानता है, मुझे तुझ से कितना प्रेम है...अगर जवानी में तुझसे मुलाक़ात होती तो यारों का ताँगा घोड़ा ज़रूर बिकता।” ये कहकर उसने एक रुपया उसकी हथेली में दबा दिया।

चन्दो सुनयारी ने पूछा, “बस?”

“ये ले...और।” माधव ने चाँदी की चवन्नी उसकी दूसरी हथेली पर जमा दी। “तेरी जान की कसम। बस यही कुछ था मेरे पास।”

रात की सर्दी में घोड़ा बाज़ार में खड़ा हिनहिनाता रहा। लालटेन का खम्भा वैसे ही ऊँघता रहा।

सामने टूटे हुए पलँग पर माधव बेहोश लेटा था। उसके बगल में चन्दो सुनयारी आँखें खोले पड़ी थी और पिघलते हुए मोम के उन क़तरों को देख रही थी जो गीले फ़र्श पर गिरकर छोटे दोनों की सूरत में जम रहे थे। वह अनायास विचलित हो उठी और लाजो की खटिया के पास बैठ गयी। नन्ही लाजो के सीने पर मोम के दाने धड़क रहे थे। चन्दो सुनयारी की धुँधली आँखों को ऐसा मालूम हुआ कि मोमबत्ती के उन जमे हुए क़तरों में उसकी नन्ही लाजो की जवानी के आँसू छिपकर बैठ गये। उसका काँपता हुआ हाथ बढ़ा और लाजो के गले से वो हार जुदा हो गया।

पिघले हुए मोम पर से मामबत्ती का जलता हुआ धागा फिसलकर नीचे फ़र्श पर गिरा और उसकी आग़ोश (गोद) में सो गया...कमरे में ख़ामोशी के अलावा अँधेरा भी छा गया।

तक़ी कातिब

'वली मुहम्मद' जब तक़ी को पहली मर्तबा दफ़्तर में लाया तो उसने मुझे बिल्कुल प्रभावित न किया। लखनऊ और दिल्ली के जाहिल और मनमौजी कातिबों (हाथ से पुस्तकों की पांडुलिपि लिखने वालों) से मेरा जी जला हुआ था। एक था, उसको 'पेश' (उर्दू भाषा की एक मात्रा) डालने की बुरी आदत थी। मौत को मूत और सौत को सूत बना देता था। मैंने बहुत समझाया मगर वह न समझा। उसको अपने अहल-ए-ज़बान होने का बहुत ज़ोम (दंभ) था। मैंने जब भी उसको 'पेश' के मामले में टोका, उसने अपनी दाढ़ी को ताव देकर कहा, "मैं अहल-ए-ज़बान (भाषाविद्) हूँ साहब...इसके अलावा तीस सिपारों का हाफ़िज़ हूँ। एराब (मात्राओं) के मामले में आप मुझसे कुछ नहीं कह सकते।"

मैंने उसे और कुछ न कहा और रुख़्सत कर दिया।

उसकी जगह एक दिल्ली के लेखक ने ली...और सब ठीक था मगर उसको सुधार करने की बीमारी थी, और सुधार भी ऐसा कि मेरी आँखों में खून उतर आता था। कोई मज़मून था। मैंने उसमें यह लिखा, 'उसके हाथों के तोते उड़ गये' उसने यह सुधार किया, 'उसके हाथ-पाँव के तोते उड़ गये।'

मैंने उसका मज़ाक उड़ाया तो वह ख़ालिस देहलवी लहज़े में बड़बड़ाता नौकरी से अलग हो गया।

रामपुर का एक कातिब था। बहुत ही सुन्दर आलेखन करने वाला था मगर उसको संक्षिप्तीकरण के दौरे पड़ते थे। सतरें की सतरें और पैरे के पैरे ग़ायब करता था। जब उसको पूरा सफ़हा (पृष्ठ) दोबारा लिखने को कहता तो वह दबाव देता, "इतनी मेहनत मुझसे न होगी साहब—पोट में लिख दूँगा।"

पोट में लिखवाना मुझे सख़्त नापसन्द था, चुनांचे यह रामपुरी कातिब भी ज़्यादा दिन दफ़्तर में न टिक सके।

वली मुहम्मद हेड कातिब जब तक़ी को पहली मर्तबा दफ़्तर में लाया तो उसने मुझे बिल्कुल आकर्षित न किया। ख़त का नूमना देखा। ख़ास अच्छा नहीं था। अक्षरों की गोलाई में परिपक्वता नहीं थी। मैं गुँजान (सटी हुई) लिखाई का क़ायल हूँ। वह छिदरा लिखता था। कम उम्र था। वार्तालाप में अजीब किस्म की बौखलाहट थी, बात करते वक़्त उसका एक बाज़ू हिलता रहता था। जैसे घड़ी का पैंडुलम। रंग सफ़ेद था। ऊपर के होंठ पर भूरे-भूरे महीन बाल थे। ऐसा मालूम होता था कि उसने ख़ुद स्याही से यह हल्की-हल्की मूँछें बनायी हैं।

मैंने उसे चन्द रोज़ के लिए रखा। मगर उसने अपनी शराफ़त, मेहनत और सेवाभाव से दफ़्तर में अपने लिए स्थायी जगह पैदा कर ली। वली मुहम्मद से मेरे सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ थे। जिन्सयात (सेक्स) सम्बन्धी अपनी मालूमात में बढ़ोतरी करने के लिए वह अक्सर मुझसे गुफ़्तगू किया करता था, उस दौरान में मुहम्मद तक़ी ख़ामोश रहता। औरत और मर्द के सम्बन्धों का ज़िक्र खुले शब्दों में आता तो उसके कान की लवें सुर्ख़ हो जातीं। वली मुहम्मद जो कि शादीशुदा था, उसको ख़ालिस पंजाबी अन्दाज़ में छेड़ता, "मंटो साहब इसका मुर्दा ख़राब हो रहा है इससे कहिये कि शादी कर ले...जब भी कोई फ़िल्म देखकर आता है, सारी रात करवटें बदलता रहता है।"

तक़ी आम तौर पर झेंपते हुए कहता, "मंटो साहब झूठ बोलता है।"

वली मुहम्मद की स्याह नुकीली मूँछें थिरकने लगतीं, "और यह भी झूठ है मंटो साहब कि यह बिल्डिंग की बेहूदी छोकरियों की नँगी टाँगें देखकर उनको चित्रित किया करता है।"

तक़ी की नाक की चोंच पर पसीने के कतरे प्रकट हो जाते, "मैं तो...मैं तो ड्राइंग सीख रहा हूँ।"

वली मुहम्मद उसे और छेड़ता, "ड्राइंग चेहरे की सीखो...यह किस ड्राइंग मास्टर ने तुमसे कहा कि पहले नँगी टाँगों से शुरू करो।"

मुहम्मद तक़ी करीब-करीब रो देता चुनांचे मैं वली मुहम्मद को मना करता कि वह उसे न छेड़ा करे। इस पर वली मुहम्मद कहता, "मंटो साहब, मैं इसके वालिद साहब से कह चुका हूँ, आपसे भी कहता हूँ कि इस लौंडे की शादी करा दीजिये वरना इसका मुर्दा बिल्कुल ख़राब हो जाएगा।"

मुहम्मद तक़ी के बाप से मेरी मुलाकात हुई। दाढ़ीवाले बुज़ुर्ग थे। नमाज़-रोज़े के पाबन्द। माथे पर महराब। झंडी बाज़ार में वली मुहम्मद की साझेदारी में घी की एक छोटी-सी दुकान करते थे। मुहम्मद तक़ी से उनको बहुत मुहब्बत थी। बातें करते हुए आपने मुझसे कहा, "तक़ी दो बरस का था कि उसकी माँ का देहान्त हो गया...खुदा उसको मुक्ति प्रदान करे। बहुत ही नेक बीवी थी। मंटो साहब यकीन जानिये उसकी मौत के बाद अज़ीज़ों और दोस्तों ने बहुत ज़ोर दिया कि मैं दूसरी शादी कर लूँ मगर मुझे तक़ी का ख़याल था। मैंने सोचा, 'हो सकता है कि मैं उसकी तरफ़ से बेखबर हो जाऊँ।' चुनांचे दूसरी शादी के ख़याल को मैंने अपने करीब तक न आने दिया और उसकी परवरिश ख़ुद अपने हाथों से की। अल्लाह की बड़ी दया है कि उसने मुझ गुनाहगार को सुर्ख़रू (कामयाब) किया। ख़ुदा उसको ज़िन्दगी और नेकी की हिदायत दे।"

मुहम्मद तक़ी अपने बाप के इस त्याग की हमेशा तारीफ़ किया करता, "बहुत कम बाप इतनी बड़ी कुर्बानी कर सकते हैं। अब्बा जवान थे। अच्छा खाते थे। चाहते तो चुटकियों में उनको अच्छी-से-अच्छी बीवी मिल जाती, लेकिन मेरी ख़ातिर उन्होंने अकेलेपन की ज़िन्दगी बसर की। इतनी मुहब्बत और इतने प्यार से मेरी परवरिश की कि मुझे माँ की कमी महसूस ही न होने दी।"

वली मुहम्मद भी तक़ी के बाप को बहुत मानता था। मगर उसे सिर्फ़ यह शिकायत थी

कि मौलाना ज़रा सनकी हैं, “मंटो साहब आदमी बहुत अच्छा है कारोबार में सोलह आने खरा है...तक़ी से बहुत प्यार करता है...लेकिन यह प्यार...मैं अब अपनी एहसासात (भावनाएँ) किन शब्दों में पेश करूँ...उसका प्यार हद से बढ़ा हुआ है...यानी वह इस तरह प्यार करता है जिस तरह कोई ईर्ष्यालु आशिक़ अपनी माशूक से करता है।”

मैंने वली मुहम्मद से पूछा, “तुम्हारा मतलब?”

वली मुहम्मद ने अपनी मूँछों की नोकें दुरुस्त कीं, “मतलब-वतलब मैं नहीं समझा सकता। आप ख़ुद समझ लीजिये।”

मैंने मुस्कुराकर कहा, “भाई तुम ज़रा विस्तार से बताओ, तो मैं समझ जाऊँगा।”

वली मुहम्मद ने सुर्ख़ियाँ (हेडिंग्स) लिखने वाले कलम को कपड़े के चीथड़े से साफ़ करते हुए कहा, “मौलाना सनकी हैं...मुझे मालूम नहीं क्यों। तक़ी कहता है कि पहले उनके प्यार और उनकी शफ़क़त (स्नेह) का यह रंग नहीं था जो अब है...यानी पिछले चन्द बरसों से आपने अपने सुपुत्र से पूछताछ का लामतनाही (अनवरत) सिलसिला शुरू कर रखा है...‘लामतनाही’ ठीक इस्तेमाल हुआ है न मंटो साहब?”

“ठीक इस्तेमाल हुआ है...हाँ यह पूछताछ का सिलसिला क्या है?”

“यही तुम रात को देर से क्यों आये?...सफ़ेद गली में क्या करने गये थे? वह यहूदन तुमसे क्या बात कर रही थी?...इतनी फ़िल्म क्यों देखते हो...पिछले हफ़्ते तुमने किताबत (पुस्तक हस्त-लेखन) की उजरत (पारिश्रमिक) में से चार आने कहाँ रखे?...वली मुहम्मद से तुम बाई कल्ला के पुल पर बैठे क्या बातें कर रहे थे? क्या वह तुम्हें वरग़ला (प्रेरित) तो नहीं रहा था कि शादी कर लो?”

मैंने वली मुहम्मद से पूछा, “वरग़लाना क्या हुआ?”

“मालूम नहीं...लेकिन मौलाना समझते हैं कि तक़ी का हर दोस्त उसे शादी के लिए वरग़लाता है...मैं उसको वरग़लाता तो नहीं लेकिन यह ज़रूर कहता हूँ और अक्सर कहता हूँ कि जान-ए-मन शादी कर लो, वरना तुम्हारा मुर्दा ख़राब हो जायेगा...और मंटो साहब मैं आपसे ख़ुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि लड़के को एक अदद बीवी की सख़्त ज़रूरत है।”

चार-पाँच बरस गुज़र चुके थे। मुहम्मद तक़ी की मूँछों के भूरे बाल अब महीन नहीं थे हर रोज़ दाढ़ी मूँड़ता था। टेढ़ी माँग भी निकालता था और दफ़्तर में जब जिन्सयात (सेक्स) के बारे में बातचीत छिड़ती तो वह कलम दाँतों में दबाकर ग़ौर से सुनता। औरत और मर्द के जिन्सी ताल्लुक का ज़िक्र खुले अल्फ़ाज़ में होता तो उसके कानों की लवें सुर्ख़ होतीं...मुहम्मद तक़ी को बीवी की ज़रूरत हो सकती थी।

एक दिन जबकि और कोई दफ़्तर में नहीं था और अकेला तक़ी तख़्त पर दीवार के साथ पीठ लगाये पर्चे की आख़िरी कॉपी पूरी कर रहा था। मैंने उसके ख़द-ओ-ख़ाल (शरीर) का ग़ौर से मुआयना करते हुए पूछा, “तक़ी तुम शादी क्यों नहीं करते?”

सवाल अचानक किया गया था। तक़ी चौंक पड़ा, “जी?”

“मेरा ख़याल है तुम शादी कर लो।”

तक़ी ने कलम कान में अड़सा और किसी कदर शरमाकर कहा, “मैंने अब्बा से बात की है।”

“क्या कहा उन्होंने?”

तक़ी विस्तार से कुछ कहना चाहता था। मगर न कह सका, “जी वह...कुछ नहीं...वह कहते हैं अभी इतनी जल्दी क्या है?”

“तुम्हारा क्या ख़याल है?”

“जो उनका है।”

इस जवाब के बाद गुफ़्तगू का सिलसिला टूट गया। तक़ी ने पर्चे की आख़िरी कॉपी पूरी की और उसे जोड़कर चला गया।

चन्द दिन के बाद वली मुहम्मद ने तक़ी की मौज़ूदगी में मुझसे कहा...“मंटो साहब...कल बड़ा लफ़ड़ा हुआ...‘मौलाना’ और तक़ी में घी-पिटास होते-होते रह गयी।”

वली मुहम्मद यूँ तो उर्दू बोलता था। लेकिन पंजाबी और बम्बई की उर्दू के कई अल्फ़ाज़ हास्य पैदा करने के लिए इस्तेमाल करने का आदी था।

तक़ी ने उसकी बात सुनी और ख़ामोश रहा।

वली मुहम्मद ने अपनी थिरकती हुई मूँछों को आँखों का आयाम बदलकर देखा फिर उस बगीचे को बदलकर उसने तक़ी की तरफ़ देखा और मुझसे कहा, “लड़के को एक अदद बीवी की सख़्त ज़रूरत है, लेकिन बाप इस ज़रूरत को मानता ही नहीं...उसने बहुत समझाया। मंटो साहब। मगर मौलाना ने एक न सुनी...मंटो साहब यह क्या मुहावरा है एक न सुनी...मौलाना ने सुनी तो हज़ार थीं, लेकिन अनसुनी कर दी...ये मुहावरे भी खूब चीज़ हैं।...और मौलाना भी...अपने वक़्त के एक लाजवाब मुहावरे हैं।”

तक़ी भन्ना कर मुझसे सम्बोधित हुआ, “मंटो साहब उससे कहिये खामोश रहे।”

वली मुहम्मद बोला, “मंटो साहब उससे कहिये कि मौलाना के सामने खामोश रहा करे...वह शादी की इजाज़त नहीं देते। ठीक है।...बाप हैं वह उसका नफ़ा-नुक़सान सोच सकते हैं।”

बाप बेटे में तकरार ज़रूर हुई थी। तक़ी ने मौलाना से दरख़्वास्त की थी कि वह उसकी शादी किसी अच्छे घराने में कर दें। यह सुनकर वह चिढ़ गये और तक़ी के दोस्तों पर बरसने लगे, “तुम्हारे दोस्तों ने तुम्हारी जड़ों में पानी फेर दिया है...जब मैं तुम्हारी उम्र का था, मुझे मालूम ही नहीं था कि शादी-ब्याह किस जानवर का नाम है?”

यह सुनकर तक़ी ने डरते-डरते कहा, “लेकिन...आपकी शादी तो चौदह बरस की उम्र में हुई थी।”

मौलाना ने उसे डाँटा, “तुम्हें क्या मालूम है?”

तक़ी ख़ामोश हो गया...वह बहुत ही कम-गो (अल्पभाषी) और फ़रमाबर्दार (आज्ञाकारी) क़िस्म का लड़का था। दो-चार मर्तबा उसने अनौपचारिक बातचीत की और उसने खुलने का मौक़ा दिया तो मुझे मालूम हुआ कि उसको बीवी की वक़्तन ज़रूरत है। उसने मुझसे एक रोज़ झेंपते हुए कहा, “मेरे ख़यालात आजकल बहुत परागंदा (दूषित) रहते

हैं। वली मुहम्मद शादीशुदा है, वह जब अपनी बीवी के साथ बाहर जाता है तो मेरे दिल को जाने क्या होता है...आपने एक दफ़ा एहसास-ए-कमतरी (हीनभावना) के बारे में बातें की थीं...मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैं शीघ्र ही इसका शिकार होने वाला हूँ। मगर क्या करूँ। अब्बा मानते ही नहीं। मैं शादी की बात करता हूँ तो वह चिढ़ जाते हैं...जैसे...जैसे शादी करना कोई गुनाह है...वह अपनी मिसाल देते हैं कि देखो तुम्हारी माँ के मरने के बाद अब तक मैंने शादी नहीं की...लेकिन मंटो साहब...इस मिसाल का मेरे साथ क्या ताल्लुक है...उन्होंने शादी की अल्लाह को यह मंज़ूर नहीं था कि उनकी बीवी ज़िन्दा रहती। उन्होंने बहुत बड़ी कुर्बानी की जो मेरी ख़ातिर दूसरी शादी न की...लेकिन वह चाहते हैं कि मैं कुँवारा ही रहूँ।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

तक़ी ने जवाब दिया, "मालूम नहीं मंटो साहब...वह मेरी शादी के बारे में कुछ सुनने के लिए तैयार ही नहीं...मैं उनकी बहुत इज़्ज़त करता हूँ। लेकिन कल बातों-बातों में जज़्बात में बहकर मैं गुस्ताख़ी कर बैठा।"

"क्या?"

तक़ी ने इन्तेहाई निदामत (ग्लानि) के साथ कहा, "मैं मिन्नत समाजत (अनुरोध) करते-करते और समझाते-समझाते तंग आ गया था...कल जब उन्होंने मुझसे कहा कि वह मेरी शादी के बारे में कुछ सुनने को तैयार नहीं तो मैंने गुस्से में आकर उनसे यह कह दिया...आप नहीं सुनेंगे तो मैं अपनी शादी का बन्दोबस्त ख़ुद कर लूँगा।"

मैंने उससे पूछा, "यह सुनकर उन्होंने क्या कहा?"

"अभी-अभी घर से निकल जाओ"...चुनांचे कल रात मैं यहाँ दफ़्तर ही में सोया।"

मैंने शाम को वली मुहम्मद के ज़रिये से मौलाना को बुलवाया...चन्द जज़्बाती बातें हुईं तो उन्होंने तक़ी को गले लगाकर रोना शुरू कर दिया। फिर शिकवे होने लगे, "मुझे मालूम नहीं था कि यह लड़का जिसकी ख़ातिर मैंने तजर्रूद (अकेलापन) बर्दाश्त किया, एक रोज़ मेरे साथ ऐसी गुस्ताख़ी से पेश आयेगा। मैंने माँओं की तरह उसे पाला पोसा आप सूखी खायी पर उसके लिए ख़ुद अपने हाथों घी में गूँध-गूँधकर परांठे पकाये...।"

मैंने बात काटकर कहा, "मौलाना यह कब आपके उन एहसानात को नहीं मानता। आपकी तमाम कुर्बानियाँ उसके दिल-ओ-दिमाग़ पर अंकित हैं। आपने इतना कुछ किया। क्या आप उसकी शादी नहीं कर सकते। माँ-बाप की तो सबसे बड़ी ख़्वाहिश यह होती है कि वे अपनी औलाद को फलता-फूलता देखें। आपके घर में बहू आयेगी। बाल-बच्चे होंगे। दादा जान बनकर आपको पुरफ़ख्र मसर्रत (गर्व भरी खुशी) न होगी?... मेरा ख़याल है, तक़ी को ग़लत-फ़हमी हुई है कि आप शादी के ख़िलाफ़ हैं।"

मौलाना लाजवाब हो गये। रूमाल से अपनी आँखें ख़ुश्क करने लगे। थोड़ी देर के बाद बोले, "पर कोई ऐसा रिश्ता तो हो..."

"आप हाँ कर दीजिये, सब ठीक हो जायेगा।"

वली मुहम्मद ने यह कुछ ऐसे अन्दाज़ में कहा, "चलिये अँगूठा लगाइये।" मौलाना

बिदक गये, “लेकिन ऐसी जल्दी भी क्या है?”

इस पर मैंने बुज़ुर्गों का अन्दाज़ इख़्तियार करते हुए कहा, “कार-ए-ख़ैर (शुभ कार्य) में देर नहीं होनी चाहिए...आप औरों को छोड़िये, खुद अपनी पसन्द का रिश्ता ढूँढिए... माशा अल्लाह डोंगरी में सब लोग आपको जानते हैं...यहाँ बम्बई में पसन्द न हो तो अपने पंजाब में सही। कौन-सा काले कोसों दूर है।”

मौलाना ने सर हिलाकर सिर्फ़ इतना कहा, “जी हाँ।”

मैंने तक़ी के कन्धे पर हाथ रखा, “लो भई तक़ी...फ़ैसला हो गया। मौलाना को तुम ज़िद्दी बच्चों की तरह अब तंग न करना...मैं ख़ुद इस मामले में उनकी मदद करूँगा।” यह कहकर मैं मौलाना से मुख़ातिब हुआ, “यहाँ कुछ ख़ानदान हैं। उनसे मेरी जान-पहचान है। मैं अपनी बीवी से कहूँगा वह लड़कियाँ देख लेगी।”

तक़ी ने हौले से कहा, “आपकी बहुत मेहरबानी।”

कई महीने गुज़र गये मगर तक़ी की शादी की बातचीत कहीं भी शुरू न हुई। वली मुहम्मद इस दौरान में उसे बराबर उकसाता रहा। वह अपने बाप के पीछे पड़ा। नतीजा यह हुआ कि एक रोज़ मौलाना मेरे पास आये और कहा, “सांगली स्ट्रीट की तीसरी गली में नुक्कड़ की बिल्डिंग में... शायद आप जानते ही हों... यू.पी. का एक ख़ानदान रहता है...”

मैंने फ़ौरन कहा, “आप कहिये...मैं जानता हूँ।”

मौलाना ने पूछा, “कैसे लोग हैं?”

“बेहद शरीफ़”

“जो सबसे बड़ा भाई है। उसकी बड़ी लड़की मैंने सुना है ख़ासी अच्छी है।”

“मैं पैग़ाम भिजवा देता हूँ।”

मौलाना घबरा गये, “नहीं-नहीं...इतनी जल्दी नहीं...यह भी तो देखना है कि लड़की शक्ल-ओ-सूरत की कैसी है?”

“मैं अपनी बीवी के ज़रिये से मालूम कर लूँगा।”

मेरी बीवी ने उस लड़की को देखा तो पसन्द किया। कुबूल सूरत (ठीक-ठाक) थी। तालीम इण्ड्रेंस तक थी। तबियत की बहुत ही अच्छी थी। ये सब ख़ूबियाँ मौलाना से बयान कर दी गयीं। वह लड़की के बाप से मिले। दहेज़ और हक़ महर के बारे में बातचीत की। प्रारम्भिक चरण तय हो गये। तक़ी बहुत ख़ुश था। लेकिन तीन महीने गुज़र गये और बात वहीं की वहीं रही। आख़िर एक रोज़ मालूम हुआ कि लड़कीवालों ने आगे की वार्ता से इनकार कर दिया है, क्योंकि वह तक़ी के बाप की मीन-मेख़ से तंग आ चुके हैं। बार-बार वह उनसे जा-जा कर यह कहता था, “देखिये लड़की के दहेज़ में इतने जोड़े हों, बर्तनों की तादाद यह हो। लड़की ने अगर आदेशों को न माना तो उसकी सज़ा तलाक़ होगी। फ़िल्म देखने हरगिज़ न जायेगी। पर्दे में रहेगी।”

मैंने जब इन अनुचित बातों का ज़िक्र तक़ी से किया तो वह अपने बाप की तरफ़ हो गया, “नहीं मंटो साहब लड़कीवाले ठीक नहीं। अब्बा का यह कहना ठीक है कि वह मुझे ज़न मुरीद (बीवी का ग़ुलाम) बनाना चाहते हैं।”

मैंने कहा, “ऐसा है तो छोड़ो...किसी और जगह सही।”

तक़ी ने कहा, “अब्बा कोशिश कर रहे हैं।”

मौलाना ने डोंगरी में अपने एक परिचित के ज़रिये से बातचीत शुरू की, सब कुछ तय हो गया। निकाह की तारीख भी तय हो गयी। मगर एकदम कुछ हुआ और सब कुछ ढह गया...लड़कीवालों को तक़ी पसन्द था, लेकिन जब मौलाना से अच्छी तरह मिलने-जुलने का संयोग हुआ तो वे पीछे हट गये। और लड़की का रिश्ता किसी और जगह पक्का कर दिया। तक़ी ने फिर अपने बाप की तरफ़दारी की और मुझसे कहा, “ये लोग बड़े लालची थे मंटो साहब...एक दौलतमन्द का लड़का मिल गया तो अपनी बात से फिर गये।...अब्बा शुरू ही से कहते थे कि ये लोग मुझे ईमानदार मालूम नहीं होते। लेकिन मैं ख़्वामख़्वाह उनके पीछे पड़ा रहा कि जल्दी मामला तय कीजिये।”

कुछ अर्से के बाद तीसरी जगह कोशिश शुरू हुई। यहाँ भी नतीजा सिफ़र। चौथी जगह बातचीत शुरू हुई तो तक़ी ने मुझसे कहा, “मंटो साहब, वे लोग आपसे मिलना चाहते हैं।”

“बड़े शौक़ से मिलें।”

मैं उनसे मिला। आदमी शरीफ़ थे। मौलाना से उनकी बहुत कम बातें हुईं। मैंने तक़ी की तारीफ़ की। मामला तय हो गया, लेकिन चन्द ही दिनों में गड़बड़ पैदा हो गयी। लड़की के बड़े भाई ने किसी से सुना कि मौलाना दुकान पर अपने एक दोस्त से कह रहे थे, “लड़की मेरे कहने पर न चली तो मैं तक़ी की दूसरी शादी कर दूँगा”। वह यह सुनकर मेरे पास आया। मैंने मौलाना को बुलवाया। उनसे पूछा तो दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहने लगे, “मैंने क्या बुरा कहा...मैं ऐसी बहू घर में नहीं लाना चाहता जो मेरा कहा न माने...मैं तक़ी की शादी इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे आराम पहुँचे।”

अजीब-ओ-ग़रीब मन्तक (तर्क) थी। मैंने पूछा, “आप को आराम ज़रूर पहुँचना चाहिए। मगर आपकी यह मन्तक मेरी समझ में नहीं आयी...ऐसा मालूम होता है कि पति-पत्नी का रिश्ता आपकी समझ से परे है।”

मौलाना ने किसी क़दर ख़फ़्गी (खिन्नता) के साथ कहा, “मैं ख़ाविंद रह चुका हूँ मंटो साहब...आपके ख़यालात मेरे ख़यालात से बहुत मुख़्तलिफ़ हैं...आपके साथ काम करके, मुझे अफ़सोस है, मेरे लड़के के ख़यालात भी बदल गये हैं।” यह कहकर वह तक़ी से मुख़ातिब हुए, “सुना तुमने...मैं ऐसी लड़की घर में लाना चाहता हूँ जो मेरी और तुम्हारी ख़िदमत करे।”

इसके बाद देर तक बातें होती रहीं। उनसे जो मैंने नतीजा निकाला वह मैंने तक़ी को बता दिया, “देखो भई...बात यह है कि तुम्हारे वालिद साहब तुम्हारी शादी नहीं करना चाहते।...यही वजह है कि वह हर बार कोई-न-कोई शोशा छेड़ देते हैं। कोई-न-कोई बहाना ढूँढ निकालते हैं। ताकि मामला आगे न बढ़ने पाये।”

मौलाना खामोश अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते रहे। तक़ी ने मुझसे पूछा, “क्यों...यह मेरी शादी क्यों नहीं करना चाहते?”

मेरे मुँह से अनायास निकल गया, “मौलाना का दिमाग़ ख़राब है।”

मौलाना को इस क़दर तैश आया कि मुँह में झाग भरकर ऊटपटाँग बकने लगे। मैंने तक़ी से कहा, “जाओ, मौलाना को किसी ज़हनी शफ़ाख़ाना में ले जाओ...और मेरी यह बात याद रखो। जब तक उनका दिमाग़ दुरुस्त नहीं होगा। तुम्हारी शादी हरगिज़-हरगिज़ नहीं करेंगे। उनके दिमाग़ की ख़राबी का कारण वह कुर्बानी है जो उन्होंने तुम्हारे लिए दी।”

मौलाना ने तक़ी का बाज़ू ज़ोर से पकड़ा और मुझे खरी-खोटी सुनाते चले गये। वली मुहम्मद मेरे पास बैठा सब कुछ ख़ामोशी से सुन रहा था। इतनी देर तक अपनी नुकीली मूँछों के मौजूद होने से बिलकुल अनजान रहा। जब मौलाना और तक़ी चले गये तो उसने आँखों का कोण दुरुस्त करके उनकी तरफ़ देखा और कहा, “मुर्दा ख़राब हो रहा है बेचारे का...लेकिन मंटो साहब आपने बावन तोला और पाव रत्ती की बात कही...मुहावरा दुरुस्त इस्तेमाल हुआ है न?”

“तुमने मुहावरा दुरुस्त इस्तेमाल किया है। लेकिन अफ़सोस है कि मौलाना की तबियत साफ़ करते हुए मैंने मुनासिब अल्फ़ाज़ इस्तेमाल न किये।”

“बड़ा दुष्ट आदमी है जी।” वली मुहम्मद ने यह कहकर अपनी मूँछ का हटेला बाल ज़ोर से उखाड़ा और बड़ी संजीदगी अपना कर मुझसे पूछा, “मंटो साहब क्या मतलब था आपका उससे कि मौलाना के दिमाग़ की ख़राबी का कारण वह कुर्बानी है जो उसने तक़ी के लिए दी। बात ज़रूर बावन तोला और पाव रत्ती की है, लेकिन पूरी तरह मेरे ज़ेहन में बैठी नहीं।”

मैंने उसको समझाया, “बीवी की मौत के बाद एक वक़्ती जज़्बा था जिसके तहत मौलाना ने अकेलेपन के दिन गुज़ारने का निश्चय किया। यह जज़्बा अपनी स्वाभाविक मौत मरा तो आपके लिए दो ग़म हो गये, एक बीवी की मौत का, दूसरा उस जज़्बे की मौत का...वक़्त गुज़रता गया। और मौलाना नीम के करेले बनते गये...मुझे तो भई वली मुहम्मद बहुत तरस आता है ग़रीब पर...एक शख़्स ने पच्चीस बरस तक अपने और औरत के दरम्यान एक दीवार खड़ी रखी हो। वह किस तरह अपने जवान बेटे के पहलू में एक जवान औरत देख सकता है...और वह भी नज़रों के बहुत क़रीब।”

दूसरे दिन तक़ी न आया। वली मुहम्मद के हाथ उसने किताबत का बिल भिजवा दिया जो अदा कर दिया गया...तक़ी को बहुत अफ़सोस था कि मैंने उसके बाप को बुरा-भला कहा। मैंने वली मुहम्मद से कह दिया, “मुझे कोई अफ़सोस नहीं...तक़ी को मालूम होना चाहिए था कि उसका बाप मानसिक और रूहानी तौर पर बीमार है। लेकिन मुझे यह अफ़सोस ज़रूर है कि उसने काम छोड़ दिया है।”

वली मुहम्मद ने तक़ी से वापस आने को कहा। मगर वह न माना। उसने किसी और दफ़्तर में नौकरी न की और दुकान पर बैठकर घी बेचने लगा। वली मुहम्मद ने जब ज़ोर दिया तो उसने वहीं किताबत का काम भी शुरू कर दिया।

मैं एक काम से दिल्ली चला गया। तीन-चार महीने वहाँ रहकर बम्बई लौटा तो वली मुहम्मद ने प्लेटफार्म ही पर यह ख़बर सुनायी कि तक़ी की शादी एक हफ़्ता पहले अच्छे ढंग

से हो चुकी है। मुझे यकीन न आया लेकिन वली मुहम्मद ने कुरआन की कसम खाकर कहा, “मंटो साहब, मैं झूठ नहीं कहता...निकाह के छुवारे मैंने सँभालकर रखे हुए हैं। जिसकी शादी न होती हो, उसके लिए निदान साबित होंगे।”

मैंने तक़ी को बुलाया, मगर वह न आया।

तक़रीबन डेढ़ महीने के बाद एक दिन अलस्सुबह वली मुहम्मद आया। उसकी नुकीली मूँछें थिरक रही थीं। कहने लगा, “मंटो साहब कल घी पिटास हो गयी बाप-बेटे में...तक़ी अपनी बीवी को लेकर चला गया कहीं।”

“कहाँ?”

“मालूम नहीं,” यह कहकर आँखों का ज़ाविया (आयाम) बदलकर वली मुहम्मद ने अपनी नुकीली मूँछों को देखा, “कुछ समझ में नहीं आता मंटो साहब...लड़ाई का कारण मालूम नहीं हो सका...मौलाना बिल्कुल ख़ामोश हैं...”

मौलाना बहुत देर तक ख़ामोश रहे और उनका बेटा मुहम्मद तक़ी भी। बम्बई में वली मुहम्मद और उसके साथियों ने तक़ी को बहुत तलाश किया। मगर उसका कोई सुराग़ न मिला।

बहुत दिनों बाद दिल्ली से मुझे तक़ी का एक ख़त वसूल हुआ। लिखा था...‘बहुत दिनों से सोच रहा था कि आपको ख़त लिखूँ और हालात से आगाह करूँ। मगर हिम्मत साथ न देती थी...मैं आपसे दरख्वास्त करता हूँ कि यह ख़त किसी और को न दिखाइयेगा।

आपने मेरे वालिद के मुताल्लिक़ जो कुछ कहा था, ठीक निकला। मैंने आपकी बातों का बुरा न माना था। इसलिए कि मुझे असलियत का इल्म नहीं था शादी के बाद तो बिल्कुल उनकी दिमाग़ी हालत दुरुस्त न थी। उनकी यही कोशिश थी कि मैं अपनी बीवी से दूर रहूँ। मुझमें और उसमें दूरी पैदा करने के लिए वह अजीब-ओ-ग़रीब तरीके ईजाद करते थे, जो एक दीवाना ही कर सकता है। मैंने बहुत देर तक बर्दाश्त किया...मुझे तमाम वाक़यात बयान करते हुए बहुत शर्म महसूस होती है...एक रोज़ मेरी बीवी गुसलखाने में नहा रही थी। आपने दरवाज़े में से झाँकना शुरू कर दिया...मैं और क्या लिखूँ...समझ में नहीं आता। उनके दिमाग़ को क्या हो गया है। ख़ुदा उनकी हालत पर रहम करे।

‘मैं यहाँ दिल्ली में हूँ और बहुत खुश हूँ।’

मैं यह ख़त पढ़ रहा था कि वली मुहम्मद आया। उसके पास तक़ी का एक ख़त था। मेरी तरफ़ बढ़ाकर उसने कहा, “यह ख़त तक़ी ने देहली से अपने बाप को लिखा है...सिर्फ़ चन्द अल्फ़ाज़ हैं।”

मैंने पूछा, “क्या?”

वली मुहम्मद ने कहा, “पढ़ लीजिये।”

मैंने ये अल्फ़ाज़ पढ़े, “आदरणीय वालिद साहब...मैं यहाँ ख़ैरियत से हूँ...आपने मेरा घर आबाद किया है...मेरी ख़्वाहिश है कि आप भी अपना घर आबाद कर लें...”

...वली मुहम्मद ने आँखों का ज़ाविया बदलकर अपनी नुकीली मूँछों को देखा और कहा, “मंटो साहब...लड़का होशियार हो गया है...लेकिन मौलाना तो अपनी बात पक्की कर

चुके हैं।”

“कहाँ”

वली मुहम्मद की मूँछें थिरकीं, “एक घी बेचनेवाली से...पाँचों उँगलियाँ घी में और सर कढ़ोह में...मुहावरा ठीक इस्तेमाल किया है न मंटो साहब।”

मैं हँस पड़ा।

जून, 1950

वालिद साहिब

'तौफ़ीक' जब शाम को क्लब में आया तो परेशान-सा था।

दो रबर हारने के बाद उसने 'जमील' से कहा, "लो भई मैं चला।"

'जमील' ने तौफ़ीक के गोरे चिट्टे चेहरे की तरफ़ ग़ौर से देखा और कहा, "इतनी जल्दी?"

'रियाज़' ने ताश की गड्डी के दो हिस्से करके उन्हें बड़े माहिराना अन्दाज़ में फेंटना शुरू किया। उसकी निगाहें ताश के फड़फड़ाते पत्तों पर थीं। लेकिन ध्यान तौफ़ीक की तरफ़ था। "तौफ़ीक, आज तुम परेशान हो...दस्तूर के खिलाफ ऊपर तले दो रबर हारे हो...ऐसा मालूम होता है कि आज शाम को अस्पताल में नर्स मार्गरिट ने तुम्हारे रोमांस को पोटैशियम ब्रोमाइड पिला दिया।"

'जमील' ने एक बार फिर ग़ौर से तौफ़ीक के चेहरे की तरफ़ देखा, "क्यों 'तोफ़ी' आज टेम्प्रेचर कैसा रहा?"

'नसीर' अपनी कुर्सी पर से उठा। तौफ़ीक की उँगलियों में फँसी हुई सिगरेट निकाली और ज़ोर का कश लेकर कहने लगा, "सब बकवास है...तोफ़ी ने आज तक जितने रोमांस लड़ाये हैं। सब बकवास थे...यह नर्स मार्गरिट का किस्सा तो बिल्कुल मनगढ़ंत है...मरी की ठंडी हवाओं से यहाँ लाहौर की गर्मियों में आने के कारण इसे फ्लू हो गया है।"

'तौफ़ीक' उठ खड़ा हुआ, "बको नहीं।"

'नसीर' हँसा, "अगर नहीं हुआ तो आजकल में हो जायेगा...बताओ तुम्हारे अब्बा कब तक अस्पताल में रहेंगे।" यह कहकर वह तौफ़ीक की कुर्सी पर बैठ गया।

'तौफ़ीक' ने अपने कलफ़ लगे मलमल के कुर्ते की ढीली आस्तीनों को ऊपर चढ़ाया और जमील के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "चलो चलें...मेरी तबियत यहाँ घबरा रही है।"

'जमील' उठा, "भई तौफ़ी, तुम कोई बात छुपा रहे हो...ज़रूर कोई गड़बड़ हुई है।"

"गड़बड़ कुछ नहीं...'नसीर' की बकवास से कौन है, जिसकी तबियत नहीं घबराती।" 'तौफ़ीक' ने जेब से बाजा निकाला और मुँह के साथ लगाकर बजाना शुरू कर दिया।

'नसीर' ने अपनी टाँगें मेज़ पर फैला दीं और ज़ोर से कहा, "बकवास है...सब बकवास है...यह धुन जो तुम बजा रहे हो 'रशीद इत्रे' की है।...और रशीद इत्रे की कोई धुन सुनकर आज तक कोई एंग्लो इण्डियन या क्रिश्चियन नर्स बेहोश नहीं हुई...बेहतर होगा अगर तुम रूमाल पर थोड़ा-सा क्लोरोफार्म छिड़क कर ले जाओ।"

'रियाज़' ने ताश की गड्डी रख दी और नसीर की टाँगें एक तरफ़ रेल दीं, "कुछ भी हो। लेकिन हम इतना जानते हैं कि 'तोफ़ी' यहाँ अपनी गाड़ी का हॉर्न बजाये तो लड़कियाँ सुनकर उस पर फरेफ्ता (मोहित) हो जाती हैं।"

'नसीर' ने सिगरेट की गर्दन ऐश ट्रे में दबायी, "और साइकिल की घंटी बजाये तो आसमान से फ़रिश्ते उतरने शुरू हो जाते हैं। एक दफ़ा उसकी खाँसी की आवाज़ सुनकर स्वर्ग की सारी बुलबुलें अपनी नग़मा-सरायी (मधुर गान) भूल गयी थीं।...बड़ा हँगामा हो गया था...मास्टर गुलाम हैदर ने पूरा एक महीना उनको रिहर्सल करायी। तब जाकर वहीं कहीं टूँ-टूँ करने लगीं।"

'तौफ़ीक' के सिवा बाकी सब हँसने लगे...'नसीर' ज़रा संजीदा हो गया। उठ कर 'तौफ़ीक' के पास आ गया। उसके कलफ़ लगे मलमल के कुर्ते की एक शिकन दुरुस्त की और कहा, "मज़ाक मत करो...लो अब बताओ, अस्पताल का तुम्हारा मामला कहाँ तक पहुँचा?...मैं तो समझता हूँ वहीं-का-वहीं होगा। एक शरीफ़ आदमी अपेण्डेसाइटिस का ऑपरेशन कराये पड़ा है—निश्चित समय पर यह तुम्हारी नर्स साहिबा तशरीफ़ लाती हैं...जनाब सिर्फ़ एक दफ़ा सुबह और एक दफ़ा शाम वहाँ जा सकते हैं...मरीज़, और वह भी जनाब वालिद साहब...वह मरीज़ अपेण्डेसाइटिस और तुम मरीज़-ए-इश्क..."

'रियाज़' ने करीब-करीब गाकर कहा, "मरीज़-ए-इश्क पर रहमत ख़ुदा की।"

'नसीर' को मज़ाक की सूझी, "और मरीज़-ए-इश्क पर जब ख़ुदा की रहमत होती है तो वह बैण्ड मास्टर बन जाता है।...आज 'तोफ़ी' का मुँह बाजा बजा रहा है, ख़ुदा की रहमत रही तो कल सेक्सोफोन बजायेगा।...आहिस्ता-आहिस्ता उसके साथ दूसरे मरीज़ान-ए-इश्क शामिल हो जायेंगे। फिर यह बारातों के साथ मुँह में क्लारंट दबाये फिल्मी ट्यूनें बजाया करेगा...हीरा मण्डी से गुज़रते हुए उसकी क्लारंट का मुँह ऊँचा हो जाया करेगा। गाल धौंकनी की तरह फूलेंगे...गले की रगें उभर आएँगी...और रंडियाँ कोठों से उस पर ईश-कृपा के फूल बरसायेंगी।"

'तौफ़ीक' तंग आ गया। हाथ जोड़कर 'नसीर' से कहने लगा, "ख़ुदा के लिए यह आडम्बर बन्द करो।"

'नसीर' ने 'जमील' की तरफ़ देखा, "लो साहब हम आडम्बरी हो गये...दुनियाभर की नकलें यह उतारें। ज़मानेभर की ख़ुराफ़ात यह बकें...और आडम्बरी हम कहलायें...यह तो आज इन्हें मुँह में घूँघुनियाँ डाले देखकर मैंने छेड़खानी शुरू कर दी कि शायद इसी हीले उकसें, मुँह से बोलें। सर से खेलें। वरना 'जाये उस्ताद ख़ाली अस्त, कुजा राम-राम कुजा टें-टें।' ये कहकर उसने तौफ़ीक के कलफ़ लगे मलमल के कुर्ते की शिकन दुरुस्त की, "भई तोफ़ी ज़रा चहको...क्या हो गया है तुम्हें।"

'तौफ़ीक' ने जेब से सिगरेट केस निकाला। एक सुलगायी और कश लेता कुर्सी पर बैठ गया। मेज़ पर से ताश की गड्डी उठायी पेशंस खेलने लगा। लेकिन नसीर ने लपककर पत्ते उठा लिये, "यह बुड्ढे जलीलों का खेल है जो ज़िन्दगी में कई बार अपनी तमाम कश्तियाँ जला चुके हों...तुम इतने मायूस क्यों हो गये हो...मार्गरेट न सही कोई और सही।"

ये कहकर वह 'जमील' और 'रियाज़' से मुख़ातिब हुआ, "यारों बताओ यह फ़लाना कौन है?...ख़ूबसूरत है?...चन्द-ए-आफ़ताब, चन्द-ए- महताब है?...पानी पीती है तो गर्दन में से दिखाई देता है?"

'जमील' 'तौफ़ीक' के पास बैठ गया, "वह फ़ारसी का मुहावरा क्या है...'लैला बनज़र-ए-मजनूँ बायद दीद...मार्गरिट बनज़र-ए-तोफ़ी बायद दीद'...क्यों तोफ़ी?"

'तौफ़ीक' ख़ामोश रहा।

"मैं पूछता हूँ, ख़ूबसूरत है?...उसके बदन से भीनी-भीनी ख़ुशबू आती है?...उसकी गर्दन देखकर गर्दन तोड़ बुख़ार होता है या नहीं?" 'नसीर' ये कहता...कहता मेज़ पर बैठ गया। "मेंढकियों को जो ज़ुकाम होता है उसका इलाज तो वह ज़रूर जानती होंगी। ख़ुदा के लिए मुझे उससे मिलाओ। वरना मुझ पर हिस्टीरिया के दौरे पड़ने लगेंगे।"

'जमील' ने 'रियाज़' की तरफ़ देखा, "रियाज़ उसको कई मर्तबा देख चुका है।"

"रियाज़ के देखने से क्या होता है...उसको तो अन्ध औरता है।" नसीर मुस्कुराया।

जमील ने पूछा, "यह अन्ध औरता क्या है?"

'नसीर' ने 'रियाज़' के चश्मा लगे चेहरे को घूर के देखा और 'जमील' को जवाब दिया, "जनाब यह एक बीमारी का नाम है। इसके मरीज़ औरतों को नहीं देख सकते। चाहे असली पत्थर का चश्मा लगायें।"

'रियाज़' मुस्कुराया, "शायद इसीलिए मुझे मार्गरिट में हुस्न नज़र न आया, जिसकी तारीफ़ में 'तोफ़ी' ने ज़मीन-ओ-आसमान एक कर रखे थे।"

'तौफ़ीक' ने अपना झुका हुआ सर उठाकर रियाज़ से सिर्फ़ इतना पूछा, "क्या वह हसीन नहीं थी?"

'रियाज़' ने जवाब दिया, "हरगिज़ नहीं...साफ़-सुथरी लड़की अलबत्ता ज़रूर है।"

"लाण्ड्री से ताज़ा-ताज़ा आयी हुई सलवार की तरह?" 'नसीर' अभी कुछ और कहना चाहता था कि रियाज़ बोल पड़ा, "हाँ यार...एक दिन उसने सलवार-क़मीज़ पहनी हुई थी...उन कपड़ों में अच्छी लगती थी...मैं और 'तोफ़ी' मोटर में थे...'तोफ़ी' ड्राइव कर रहा था—मोटर अस्पताल के फाटक में दाखिल हुई तो स्टेरिंग 'तोफ़ी' के हाथों के नीचे फिसला...लड़की देखकर हमेशा उसकी यही कैफ़ियत होती है...मैंने सामने देखा तो वह सलवार-क़मीज़ पहने चली जा रही थी। 'तोफ़ी' ने मोटर ऐन उसके पास रोकी और कहा...'गुड मॉर्निंग'...वह मुस्कुरायी...लखनवी अन्दाज़ से दायाँ हाथ माथे तक ले गयी और कहा...'आदाब अर्ज़'...जैसा लिबास वैसी बोली...लौंडिया है चालाक...'तोफ़ी' अभी कोई वाक्य सोच रहा था कि वह छोटे-छोटे मगर तेज़ कदम उठाती आगे बढ़ गयी...'तोफ़ी' ने वाक्य को छोड़ा और सीने पर दो हंटर मारकर कहा...'मार डाला'...इतने में मार्गरिट का अक्स बैक व्यू मिरर में नमूदार हुआ। 'तोफ़ी' ने बड़े थ्येटरी अन्दाज़ में एक अदद चुम्मा उसकी तरफ़ फेंका और मोटर स्टार्ट कर दी।"

"तुम्हारी इस गुफ़्तगू से साबित क्या हुआ?" 'नसीर' ने अपने घुँघराले बालों का एक गुच्छा मरोड़ते हुए कहा, "बात यह है कि जब तक यह ख़ाकसार स्वयं उस लौंडिया को नहीं

देखेगा, कुछ भी साबित नहीं होगा...झूठ बोलूँ तो 'तोफ़ी' ही का मुँह काला हो।"

'तौफ़ीक' ख़ामोश सिगरेट के कश लेता रहा।

'जमील' ने अपनी कुर्सी ज़रा आगे बढ़ायी और 'रियाज़' से पूछा, "अच्छा भई यह बताओ 'तोफ़ी' ने कभी उसे मोटर की सैर नहीं करायी।"

'रियाज़' ने जवाब दिया, "एक दफ़ा उसने कहा था तो उससे मुझे याद नहीं रहा। उसने क्या जवाब दिया था। बात दरअसल यह है कि तोफ़ी को खुल के बात करने का मौक़ा ही नहीं मिला...टेम्प्रेचर लेने या टीका लगाने के लिए आती है तो बाप की मौजूदगी में यह उससे क्या बात कर सकता है...फिर भी इशारों में कुछ-न-कुछ हो ही जाता है...मेरा ख़याल है ये अदाएँ आज सिर्फ़ इसीलिए हैं कि उसके अब्बा जान दो-तीन दिनों में अस्पताल छोड़ने वाले हैं, क्योंकि ज़ख़्म अब बिल्कुल भर चुका है।...क्यों तोफ़ी?"

'तौफ़ीक' ने सिर्फ़ इतना कहा, "मुझे सताओ नहीं यार" और उठकर बाहर बाग में चला गया...'नसीर' ने अपनी ठोड़ी हाथ में पकड़ी और चेहरे पर गहरी फ़िक्रमंदी के निशानात (चिह्न) पैदा करके कहा, "कहीं लुम्ड़े को इश्क तो नहीं हो गया।"

"तोफ़ी और इश्क...दो परस्पर विरोधी चीज़ें हैं।" 'रियाज़' कुर्सी पर से उठा और संजीदगी से कहने लगा, "कोई और ही चीज़ हुई है जनाब को...मेरा ख़याल है लाहौर में उसका जी लग गया था। वालिद ठीक हो गये हैं तो अब उसे वापस मरी जाना पड़ेगा।"

"बकवास है", 'नसीर' चिल्लाया, "कोई और ही बात है...तुम यहाँ ठहरो...मैं अभी पूछ कर आता हूँ।"

'नसीर' उठकर बाहर चलने लगा तो 'जमील' ने उससे पूछा, "किससे पूछने चले हो।"

'नसीर' मुस्कुराया, "घोड़े के मुँह से...अंग्रेज़ी में फ्रॉम दी हारसेज़ माउथ!"

यह कहकर वह बाहर निकल गया।

'जमील' ने 'रियाज़' की तरफ़ देखा और संजीदगी से पूछा, "हाँ भई 'रियाज़', यह सिलसिला क्या है...'तोफ़ी' एक दिन बहुत तारीफ़ कर रहा था उस मार्गरेट की...कहता था कि मामला पटा समझो...क्या यह ठीक है?"

"ठीक ही होगा। मेरा मतलब है ऐसा कौन-सा चित्तौड़गढ़ का किला है जो 'तोफ़ी' को सर करना है। कोरीडोर में काफ़ी मीठी-मीठी बातें कर रहे थे?"

"क्या?"

"मैंने पॉकेट बुक में नोट की हुई हैं। किसी रोज़ पढ़ के तुम्हें सुनाऊँगा।"

'जमील' के होंठों पर खिसयानी-सी मुस्कुराहट पैदा हुई, "मज़ाक करते हो यार...सुनाओ...कोई और बात सुनाओ...मेरा मतलब है, यह बताओ कि मैं कभी उस नर्स को देख सकता हूँ।"

"जब चाहो देख सकते हो...अस्पताल चले जाओ, फ़ेमली वॉर्ड में तुम्हें नज़र आ जायेगी...लेकिन क्या करोगे देखकर। तुम्हारा क़द बहुत छोटा है। वह तुमसे पूरी एक बालिश्त ऊँची है।"

"इस क़द ने मुझे कहीं का नहीं रखा...बहुतेरे इलाज करवा चुका हूँ...एक सूई बराबर ऊँचा नहीं हुआ...अच्छा", मैंने कहा, "रियाज़...बाप की मौजूदगी में 'तोफ़ी' उससे इशारेबाज़ी कैसे करता होगा...नहीं, लड़का होशियार है।"

'रियाज़' ने ताश की गड्डी उठायी और पत्ते फेंटने शुरू किये, "अच्छी ख़ासी मुसीबत है। हर वक़्त यही धड़का कि वालिद देख न लें, ताड़ न जायें...कहता था, 'ज्यों ही उनकी निगाहें मेरी तरफ़ उठती थीं, मैं नज़रें नीची कर लेता था...जब वह आती थी तो दस-पन्द्रह मिनटों में ग़रीब को सिर्फ़ तीन-चार मौके आँख लड़ाने को मिलते थे'।"

'जमील' ने पूछा, "डी.एस.पी. हैं न तोफ़ी के अब्बा जान।"

"हाँ भाई...बाप होना ही काफ़ी होता है...ऊपर से डी.एस.पी.।"

'जमील' ने आह भरी, "मेरे तमाम रोमांस नष्ट करने वाले मेरे अब्बा जान हैं...हज से पहले उनकी विनाश-लीला इतने ज़ोरों पर न थी, पर जब से आप हज से वापस तशरीफ़ लाये हैं आपकी विनाश-लीला चरम पर है...सोचता हूँ शादी कर लूँ, एक लड़का पैदा करूँ और बैठा उससे अपना इन्तेक़ाम लेता रहूँ।"

रियाज़ मुस्कुराया, "हज करने जाओगे?"

"एक नहीं दस दफ़ा...साहबज़ादे को साथ लेकर जाऊँगा।"

यह कहकर उसने मेज़ पर ज़ोर से मुक्का मारा। आवाज़ के साथ ही 'नसीर' दाख़िल हुआ। 'रियाज़' और 'जमील' दोनों उसकी तरफ़ ग़ौर से देखने लगे। 'नसीर' इन्तिहाई संजीदगी के साथ कुर्सी पर बैठ गया। 'जमील' के दिमाग़ में ख़ुदबुद होने लगी, "कुछ पूछा?"

"सब कुछ," 'नसीर' का जवाब संक्षिप्त था।

'रियाज़' ने पूछा, "तोफ़ी कहाँ है?"

'नसीर' ने जवाब दिया, "चला गया है?"

"कहाँ?" यह सवाल रियाज़ ने किया।

"वापस मरी"

'नसीर' का यह जवाब सुनकर रियाज़ और जमील दोनों एक साथ बोले, "मरी वापस?"

"जी हाँ...मरी वापस चला गया है, अपनी मोटर में...अस्पताल से सीधा यहाँ क्लब आया..यहाँ से सीधा मरी रवाना हो गया है।"

'नसीर' ने एक-एक लफ़्ज़ चबा-चबाकर अदा किया।

'जमील' बेचैन हो गया, "आखिर हुआ क्या?"

'नसीर' ने जवाब दिया, "हादसा।"

'जमील' और 'रियाज़' दोनों बोले, "कैसा हादसा?"

"बताता हूँ" यह कहकर 'नसीर' ने जेब से सिगरेट की डिबिया निकाली जिसमें कोई सिगरेट नहीं थी। डिबिया एक तरफ़ फेंककर वह 'रियाज़' और 'जमील' से सम्बोधित हुआ, "मामला बहुत संगीन है।"

‘जमील’ ने रियाज़ से कहा, “मेरा ख़याल है ‘तोफ़ी’ पकड़ा गया होगा।”

‘रियाज़’ ने कहा, “मालूम ऐसा ही होता है...आदमी कब तक किसी की आँखों में धूल झोंक सकता है...डी.एस.पी. है...फौरन ताड़ गया होगा...लेकिन ‘नसीर’ तुम बताओ, तोफ़ी ने तुमसे क्या कहा।”

“बताता हूँ...एक सिगरेट देना ‘जमील’।”

‘जमील’ ने उसको एक सिगरेट दी। उसे सुलगाकर उसने बात शुरू की, “बाप की मौजूदगी में उसकी नर्स से इशारेबाज़ी होती थी। यह तुम लोगों को मालूम है...ये सिलसिला इशारेबाज़ी का बहुत दिनों से जारी था...‘तोफ़ी’ उसमें ख़ासा कामयाब रहा था। बाप की मौजूदगी के कारण उसे बहुत सचेत रहना पड़ता था, वह ज़रा गर्दन घुमाते तो यह फ़ौरन अपनी आँखें नीची कर लेता। इन दिक्कतों के बावजूद इसने लड़की से सम्पर्क बढ़ा ही लिया। ऑफ ड्यूटी के रोज़ शाम को वह उसे एक मर्तबा सिनेमा भी ले गया।”

‘जमील’ गुड़का, “वाह।”

रियाज़ ने कहा, “मुझसे उसने इसका ज़िक्र नहीं किया।”

‘नसीर’ ने सिगरेट का कश लिया, “सिनेमा में वह ख़ूब एक-दूसरे के साथ घुलमिल गये। नर्स को ‘तोफ़ी’ का चंचलपना बहुत पसन्द आया। परसों की मुलाक़ात में आज की शाम तय हुई कि वह ‘तोफ़ी’ के साथ दूर तक मोटर में सैर करने चलेगी और तोफ़ी अपनी आदत से मजबूर होकर अगर कोई शरारत करना चाहेगा तो वह बुरा नहीं मानेगी।”

‘जमील’ फिर गुड़का, “वाह!”

‘रियाज़’ ने उसे टोका, “ख़ामोश रहो ‘जमील’।”

‘नसीर’ ने सिगरेट का एक लम्बा कश लिया, “परसों की मुलाकात में जो कुछ तय हुआ था, मैं आपको बता चुका हूँ। ‘तोफ़ी’ बहुत ख़ुश था। अपने ख़याल के मुताबिक़ वह एक बहुत बड़ा मैदान मारने वाला था। आज दिन भर वह स्कीमें बनाता रहा...पेट्रोल का इन्तज़ाम उसने कर लिया।”

“करम इलाही ने उसे छः कूपन दे दिये थे। उसी के परमिट पर बियर की छः बोतलें भी हासिल कर ली थीं जो शायद अभी तक इम्तियाज़ के रेफ्रिजरेटर में ठंडी हो रही हैं—तोफ़ी की स्कीम यह थी कि चन्योट के पुल तक चलेंगे। हुस्न-ओ-इश्क़ के दरिया चिनाब की लहरें होंगी...मौसम भी खुशगवार होगा। गिलास रास्ते में ख़रीद लेंगे। ठंडी-ठंडी बियर उड़ेगी। खूब सुरूर जमेंगे...लेकिन...”

ये कह कर ‘नसीर’ एकदम ख़ामोश हो गया।

‘जमील’ ने बेचैन होकर पूछा, “सारा मामला ख़राब हो गया?”

‘नसीर’ ने ‘हाँ’ में सर हिलाया, “सारा मामला ख़राब हो गया।”

‘जमील’ ने और ज़्यादा बेचैन होकर पूछा, “कैसे?”

‘नसीर’ ने सिगरेट की गर्दन ऐश-ट्रे में दबायी और कहा, “प्रोग्राम यह था कि वह शाम को छः बजे अस्पताल जायेगा। घंटा-डेढ़ घंटा अपने बाप के पास बैठेगा। इस दौरान में जब मार्गरेट जायेगी तो वह सैर की बात पक्की कर लेगा। बात पक्की हो जायेगी तो वह सीधा

इम्तियाज़ के यहाँ जायेगा...कुछ देर वहाँ बैठेगा। बियर की एक बोतल पियेगा। बाकी पाँच मोटर में रखेगा और जो क्या देखता है...”

‘नसीर’ एकदम रुक गया। ‘जमील’ और ‘रियाज़’ दोनों एक साथ बोले, “क्या देखता है...?”

“देखता है कि...ठहरो,” ‘नसीर’ थोड़ी देर के लिए रुका। “मैं तोफ़ी के अल्फ़ाज़ में बयान करता हूँ...‘मैंने कमरे का दरवाज़ा खोला। क्या देखता हूँ कि मार्गरेट पलँग पर झुकी हुई है और वालिद साहब...और वालिद साहब उसके होंठ चूस रहे हैं’।”

‘जमील’ और ‘रियाज़’ क़रीब-क़रीब उछल पड़े, “सच?”

‘नसीर’ ने जवाब दिया, “दरोग़ बर गर्दन-ए-राबी।”

‘जमील’ जिसके दिल-ओ-दिमाग़ पर हैरत छाई हुई थी बड़बड़ाया, “कमाल कर दिया डी.एस.पी. साहब ने।”

‘रियाज़’ ने ‘नसीर’ से पूछा, “तोफ़ी ने क्या किया?”

‘नसीर’ ने जवाब दिया, “आँखें नीची कर लीं और चला आया।”

‘जमील’, ‘रियाज़’ से मुखातिब हुआ, “मेरे वालिद साहिब क़िबला कभी ऐसे नज़ारे का मौक़ा दें तो मज़ा आ जाये। पता नहीं ‘तोफ़ी’ क्यों इस क़दर परेशान था?”

‘नसीर’ ने कहा, “ ‘तोफ़ी’ की वालिदा साहिबा उसके साथ थीं...‘तोफ़ी’ ने मुझसे कहा, ‘मैं तो नज़रें नीची करके चल दिया। लेकिन अम्मी जान दरवाज़ा खोल कर अन्दर कमरे में चली गयीं’।”

‘जमील’ ने अफ़सोसभरे लहज़े में कहा, “क़िबला वालिद साहिब के साथ ज़्यादती हुई।”

जून, 1950

माहीगीर
(विक्टर ह्यूगो की एक कविता का भावानुवाद)

समंदर रो रहा था।

बंदी लहरें पथरीले साहिल के साथ टकरा-टकराकर विलाप कर रही थीं। दूर, पानी की रक़साँ (नृत्यरत) सतह पर चन्द किश्तियाँ अपने धुँधले और कमज़ोर पर्दों के सहारे बेपनाह सर्दी से ठिठुरी हुई काँप रही थीं। आसमान की नीली क़बा (चादर) में चाँद खिलखिलाकर हँस रहा था। सितारों का खेत अपने पूरे यौवन में लहलहा रहा था।

फ़ज़ा समंदर के नमकीन पानी की तेज़ बू में बसी हुई थी।

साहिल से कुछ फ़ासले पर चन्द जर्जर झोंपड़ियाँ ख़ामोश ज़बान में एक-दूसरे से अपनी ख़स्ताहाली का उल्लेख कर रही थीं—यह माहीगीरों (मछुआरों) के सर छुपाने की जगहें थीं।

एक झोंपड़ी का दरवाज़ा खुला था, जिसमें से चाँद की आवारा शुआएँ (किरणें) ज़मीन पर रेंग-रेंगकर उसकी काजल-जैसी फ़ज़ा को नीम रौशन कर रही थीं—इस अन्धी रौशनी में दीवार पर माहीगीर का जाल नज़र आ रहा था और एक लकड़ी के तख़्ते पर चन्द थालियाँ झिलमिला रही थीं।

झोंपड़ी के एक कोने में एक टूटी हुई चारपाई अँधेरी चादर पहने अँधेरे में सर निकाले हुए थी। उसके पहलू में फटे हुए टाट पर पाँच बच्चे सो रहे थे। नन्ही रूहों का एक घोंसला जो ख़्वाबों से थरथरा रहा था।

पास ही उनकी माँ न मालूम किन ख़यालात में लीन घुटनों के बल बैठी गुनगुना रही थी।

यकायक वह लहरों का शोर सुनकर चौंकी।

बूढ़ा समंदर किसी आनेवाले ख़तरे से आगाह, सियाह चट्टानों और तेज़ हवाओं और निस्फ़ शब (अर्धरात्रि) की तारीकी को मुख़ातिब (सम्बोधित) करके गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा था।

वह उठी और बच्चों के बिल्कुल पास जाकर उसने एक की पेशानी पर अपने सर्द लबों से बोसा (चुंबन) दिया और फिर वहीं टाट के एक कोने में बैठकर दुआ माँगने लगी—लहरों के शोर में उसके अल्फ़ाज़ उभर रहे थे, "ऐ ख़ुदा...ऐ बेकसों और ग़रीबों के ख़ुदा, इन बच्चों का वाहिद (एकमात्र) सहारा रात का तारीक (अंधकारमय) कफ़न ओढ़े समंदर की लहरों के साथ लड़ रहा है...वह मौत के गहरे गढ़े में पाँव लटकाये हुए है...इन बच्चों की ख़ातिर उसे

हर रोज़ इस तूफ़ानी देव के साथ कुश्ती लड़नी पड़ती है...ऐ ख़ुदा, तू उसकी जान हिफ़ाज़त में रखियो...आह, अगर ये बच्चे जवान होते और अपने बाप की मदद कर सकते...!"

ख़ुदा मालूम उसे क्या ख़याल आया कि वह सर से पैरों तक काँप गयी। फिर वह थरथराती हुई आवाज़ में कहने लगी, "आह, बड़ा होने पर इनका भी यही काम होगा...फिर मुझे छः जानों का डर लगा रहेगा...आह, कुछ समझ में नहीं आता...यह ग़ुर्बत...यह ग़ुर्बत...!" यह कहते हुए वह अपनी ग़ुर्बत और तंगदामानी (साधनहीनता) के ख़यालात में ग़र्क़ (लीन) हो गयी।

अचानक वह उस अँधेरे ख़्वाब से बेदार हुई और उसके दिमाग़ में होटलों की विशालकाय इमारतें और अमीरों के राहत-कदों की तस्वीरें खिंच गयीं। उन इमारतों की दिलफ़रेब राहतों और अमीरों की तअय्युशपरस्तियों (विलासिता) का ख़याल आते ही उसके दिल पर एक धुँध-सी छा गयी—कलेजे पर किसी अदृश्य हाथ की गिरफ़्त महसूस करके वह जल्दी से उठी और उसने दरवाज़े में से तारीकी में आवारा नज़रों से देखना शुरू कर दिया।

उसकी यह हरकत ख़यालात की आमद को न रोक सकी—वह सख़्त हैरान थी कि लोग अमीर और ग़रीब क्यों होते हैं, जबकि हर इन्सान एक ही तरह माँ के पेट से पैदा होता है। इस सवाल के हल के लिए उसने अपने दिमाग़ पर बहुत ज़ोर दिया, मगर उसे कोई उचित जवाब न मिल सका।

एक और बात वह समझ नहीं पा रही थी और वह यह कि उसका पति तो अपनी जान पर खेलकर समंदर की गोद से मछलियाँ छीनकर लाता है और मछलियों की मार्किट का मालिक बग़ैर मेहनत किये हर रोज़ सैकड़ों रुपये पैदा कर लेता है। उसे यह बात ख़ासतौर पर अजीब-सी मालूम हुई कि मेहनत तो करें माहीगीर (मछुआरे) और नफ़ा हो मार्केट के मालिक को। रात भर उसका पति अपना ख़ून-पसीना एक करे और सुबह के वक़्त उसकी आधी कमाई मार्किट के मालिक की बड़ी तोंद में चली जाये।

इन तमाम सवालों का कुछ जवाब न पाकर वह हँस पड़ी और बुलन्द आवाज़ में कहने लगी, "मुझ कम अक़्ल को भला यह सब क्या मालूम...ख़ुदा सब कुछ जानता है, मगर..."

वह कुछ और कहने ही वाली थी कि रुक गयी और काँप उठी—फिर वह बोली, "ऐ ख़ुदा, मैं गुनहगार हूँ...तू जो करता है, बेहतर करता है...कुछ और ख़याल करना कुफ़्र (अधर्म) है..." यह कहती हुई वह ख़ामोशी से अपने बच्चों के पास आकर बैठ गयी और उनके मासूम चेहरों की तरफ़ देखकर उसने अनायास रोना शुरू कर दिया।

बाहर आसमान पर काले बादल भीमकाय डायनों की सूरत में अपने सियाह बाल अस्त-व्यस्त किये चक्कर काट रहे थे। कभी-कभी बादल का कोई टुकड़ा चाँद के खुले मुखड़े पर अपनी सियाही मल देता तो फ़ज़ा पर क़ब्र का अँधेरा छा जाता और समंदर की सीमीं (चंचल) लहरें गहरे रंग की चादर ओढ़ लेतीं। तब किश्तियों के मशूलों (ऊपरी भाग) पर टिमटिमाती हुई रोशनियाँ इस अचानक तब्दीली को देखकर आँखें झपकना शुरू कर देतीं।

माहीगीर (मछुआरे) की बीवी ने अपने मैले आँचल से आँसू ख़ुश्क किये और दरवाज़े के पास खड़ी होकर देखने लगी कि दिन निकला है या नहीं—उसका पति सूर्योदय की पहली

किरण के साथ ही घर वापस आ जाया करता था—अभी सुबह की एक साँस भी बेदार न हुई थी। समंदर की तारीक सतह पर रोशनी की एक धारी भी नज़र न आ रही थी। बारिश काजल की तरह तमाम परिवेश पर बरसने लगी थी।

वह बहुत देर तक दरवाज़े के पास खड़ी, अपने पति के ख़याल में लीन रही, जो बारिश में समंदर की तेज़ मौजों के मुक़ाबले में लकड़ी के एक मामूली तख़्ते और कमज़ोर पर्दे से लैस था।

वह अभी अपने ख़ाविंद (पति) के लिए दुआ माँग ही रही थी कि यकायक उसकी निगाहें अँधेरे में सामने खड़ी शिकस्ता (टूटी-फूटी) झोंपड़ी की तरफ़ उठ गयीं। जो तारों से महरूम (वंचित) आसमान की तरफ़ हाथ फैलाये काँप रही थी।

उस झोंपड़ी में रोशनी का नाम तक नहीं था और उसका कमज़ोर दरवाज़ा किसी नामालूम ख़ौफ़ की वजह से काँप रहा था और तिनकों की छत हवा के दबाव तले दोहरी हो रही थी।

"आह, ख़ुदा मालूम बेचारी बेवा (विधवा) का क्या हाल है...उसे कई रोज़ से बुख़ार भी तो आ रहा है..." वह दबे होंठों गुनगुनाई, और यह ख़याल आते ही कि कहीं वह भी अपने पति से महरूम न हो जाये, काँप उठी।

सामने की शिकस्ता झोंपड़ी एक बेवा की थी, जो अपने दो कमसिन बच्चों समेत रोटी के अभाव में मौत की घड़ियाँ काट रही थी। मुसीबत की मचलती हुई धूप में उस पर साया करनेवाला कोई न था—रहा-सहा सहारा दो नन्हे बच्चे थे जो अभी मुश्किल से चल-फिर सकते थे।

उसके दिल में हमदर्दी का जज़्बा उमड़ आया—बारिश से बचाव के लिए उसने सर पर टाट का एक टुकड़ा रखा और हाथ में एक अन्धी लालटेन थामकर वह उस झोंपड़ी के पास पहुँची। उसने धड़कते हुए दिल से दरवाज़े पर दस्तक दी—लहरों का शोर और तेज़ हवा की चीखो-पुकार उसकी दस्तक का जवाब थे।

वह काँपी और उसने ख़याल किया कि शायद उसकी अच्छी हमसाया (पड़ोसन) गहरी नींद सो रही है।

उसने एक बार फिर दरवाज़ा खटखटाया और आवाज़ दी, मगर जवाब फिर ख़ामोशी था। कोई सदा, कोई जवाब झोंपड़ी के जीर्ण लबों से प्रकट न हुआ।

उसने काँपते हुए दरवाज़े पर दबाव डाला—जैसे बेजान दरवाज़े ने लिम्स (आहट) की लहर महसूस की, वह गतिमान हुआ और खुल गया।

वह झोंपड़ी के अन्दर दाख़िल हुई और जैसे वह ख़ामोश क़ब्र उसकी अन्धी लालटेन से रोशन हो गयी, जिसमें लहरों के शोर के सिवा मुकम्मल जड़ता तारी था, जिसकी पतली दोहरी होती हुई छत से बारिश के क़तरे बड़े-बड़े आँसुओं की सूरत में गिरते हुए सियाह ज़मीन को तर कर रहे थे—फ़ज़ा में एक भयावह ख़ौफ़ साँस ले रहा था।

वह ख़ौफ़नाक समाँ, जो झोंपड़ी में सिमटा हुआ था, देखकर वह सर ता पा इर्तिआश (कंपन) बनकर रह गयी। उसकी आँखों में गर्म-गर्म आँसू छलके और फिर अचानक

उछलकर बारिश के टपके हुए क़तरों के साथ आलिंगनबद्ध हो गये—उसने एक सर्द आह भरी और दर्दनाक आवाज़ में कहने लगी, “आह, तो उन बोसों का जो जिस्म को राहत बख़्शते हैं...और माँ की मुहब्बत, गीत, तबस्सुम (मुस्कुराहट), हँसी और नाच का एक ही अंजाम है...क़ब्र...आह मेरे ख़ुदा!”

उसके सामने फूस के बिस्तर पर बेवा (विधवा) की सर्द लाश अकड़ी हुई थी। लाश के पहलू में दो बच्चे सो रहे थे—उसने महसूस किया, लाश के सीने में एक आह कुछ कहने को रुकी हुई है और पथराई हुई आँखें झोंपड़ी की ख़स्ता छत को चीरकर अँधेरे आसमान की तरफ़ टकटकी लगाये देख रही हैं, जैसे उसे कोई पैग़ाम देना हो।

वह उस सुनसान मंज़र को देखकर चिल्ला उठी—थोड़ी देर वह बौखलायी सी इधर-उधर घूमी।

यकायक उसकी गीली आँखों में एक चमक पैदा हुई और उसने लपककर लाश के पहलू से कमसिन बच्चे उठाकर अपनी चादर में लपेट लिये और उस वेदना-स्थल से लड़खड़ाती हुई अपनी झोंपड़ी में चली आयी।

उसके चेहरे का रंग बदल गया था—उसने काँपते हाथों से बच्चों को मैले बिस्तर पर लिटा दिया और उन पर फटी हुई चादर डाल दी।

थोड़ी देर वह मुर्दा बेवा के पहलू से उठाये हुए बच्चों को देखती रही और फिर गुमसुम-सी अपने बच्चों के पास ज़मीन पर बैठ गयी।

गतिशील समंदर क्षितिज पर सफ़ेद हो रहा था। सूरज की धुँधली किरणें अंधकार का पीछा कर रही थीं—वह गुमसुम बैठी अपनी ज़िन्दगी के शिकस्ता तार छेड़ रही थी। उसके बिखरे अल्फ़ाज़ के साथ कनसुरी लहरें अपनी ग़मभरी तानें छेड़ रही थीं।

“आह यह मैंने क्या किया...यह मुझसे क्या हो गया...सात हम और अब दो यह...अब अगर वह मुझे मारे तो मुझे कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए...मैं भी अजीब हूँ। मैं जिससे मुहब्बत करती हूँ, उसी से भयभीत हूँ...क्या इन्हें वापस छोड़ आऊँ...नहीं...मैं उससे मुहब्बत करती हूँ। शायद वह मुझे माफ़ कर दे।”

वह इस किस्म के ख़यालात में लीन बैठी हुई थी कि हवा के ज़ोर से दरवाज़ा हिला—उसका कलेजा धक-से रह गया। वह उठी और किसी को न पाकर वहीं चिन्तित बैठ गयी।

“अभी नहीं...बेचारा...उसे इन बच्चों के लिए कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ती है...अकेले आदमी को सात पेट पालने पड़ते हैं और अब...मगर यह शोर कैसा है?”

वह चीख़ती हुई आवाज़ हवा की थी जो झोंपड़ी के साथ रगड़कर गुज़र रही थी।

“उसके क़दमों की चाप...आह, नहीं, यह तो हवा है...”

वह फिर अपने अन्दरूनी ग़म में डूब गयी—अब उसके कानों में हवाओं और लहरों का शोर बन्द हो गया—सीने में ख़यालात के टकरावों का क्या कम शोर था।

पानी के जानवर साहिल के आस-पास चिल्ला रहे थे। पानी में पड़े हुए पत्थर एक-दूसरे से टकराकर खनखना रहे थे। किश्तियों के चणुओं की आवाज़ ख़ामोश फ़ज़ा को कंपित कर रही थी।

वह किश्ती की आमद से बेख़बर अपने ख़यालात में खोयी हुई थी।

अचानक दरवाज़ा एक शोर के साथ खुला—सुबह की धुँधली शुआएँ झोंपड़ी में तैरती हुई दाख़िल हुईं और साथ ही माहीगीर (मछुआरा) काँधों पर एक बड़ा-सा जाल डाले दहलीज़ पर नमूदार (प्रकट) हुआ।

उसके कपड़े रात की बारिश और समंदर के नमकीन पानी से सराबोर हो रहे थे। आँखें शब बेदारी की वजह से अन्दर को धँसी हुई थीं। जिस्म सर्दी और ग़ैर मामूली मशक़्क़त से अकड़ा हुआ था।

"बच्चों के अब्बा, तुम हो..." माहीगीर की बीवी चौंक उठी। फिर उसने आशिक़ाना बेताबी से अपने पति को छाती से लगा लिया।

"हाँ, मैं हूँ प्यारी!" यह कहते हुए माहीगीर के खुले, मगर शोकाकुल चेहरे पर मसर्रत (खुशी) की एक धुँधली-सी रोशनी छा गयी—वह मुस्कुराया—बीवी की मुहब्बत ने उसके दिल से रात की कुलफ़त (खिन्नता) का ख़याल दूर कर दिया।

"मौसम कैसा था?" बीवी ने मुहब्बत-भरे लह्जे में दरयाफ़्त किया।

"तुंद!"

"मछलियाँ हाथ आयीं?"

"बहुत कम...आज रात तो समंदर डकैतों के गिरोह की तरह था।" यह सुनकर उसकी बीवी के चेहरे पर मुर्दनी छा गयी—माहीगीर ने उसे दुखी देखा और मुस्कुराकर बोला, "तू मेरे पहलू में है, बस मेरा दिल ख़ुश है।"

"हवा तो बहुत तेज़ होगी?"

"बहुत तेज़...मालूम हो रहा था कि दुनिया के तमाम शैतान मिलकर अपने मनहूस 'पर' फड़फड़ा रहे हैं...जाल कट गया, रस्सियाँ कट गयीं और किश्ती का मुँह भी टूटते-टूटते बचा..." फिर अपनी बात का रुख़ बदलते हुए उसने पूछा, "मगर तुम रात-भर क्या करती रही हो प्यारी?"

वह रात की बात का ख़याल करके काँपी—उसने काँपती आवाज़ में जवाब दिया, "आह, कुछ भी तो नहीं...सीती-पिरोती रही, तुम्हारी राह तकती रही...लहरें बिजली की तरह कड़क रही थीं और मुझे सख़्त डर लग रहा था।"

"डर...! हम लोगों को डर किस बात का..."

"और हाँ, हमारी हमसाया बेवा मर गयी है।" उसने अपने ख़ाविंद की बात काटते हुए कहा।

माहीगीर ने दर्दनाक ख़बर सुनी, मगर उसे कुछ ताज्जुब न हुआ, शायद इसलिए कि उसे हर घड़ी उस औरत की मौत की ख़बर सुनने की आशंका थी—उसने आह भरी और सिर्फ़ इतना कहा, "तो बेचारी सिधार गयी!"

"हाँ...और दो कमसिन बच्चे छोड़ गयी है जो लाश के पहलू में लेटे हुए हैं।"

बीवी की बात सुनकर माहीगीर का जिस्म ज़ोर से काँपा और उसकी सूरत संजीदा व चिन्तित हो गयी—एक कोने में अपनी ऊनी टोपी, जो पानी से भीग रही थी, फेंककर उसने

अपना सर खुजलाया और कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद अपने आपसे बोला, “पाँच बच्चे थे, अब सात हो गये...पहले ही इस खराब मौसम में दो वक़्त का खाना नसीब नहीं होता, अब...मगर ख़ैर...इसमें किसी का कोई क़ुसूर नहीं...इस क़िस्म के हादसे बहुत गहरे मानी रखते हैं...”

वह कुछ अर्से तक उसी तरह अपना सर घुटनों में दबाये सोचता रहा—उसकी समझ में न आ रहा था कि ख़ुदा ने उन बच्चों से, जो उसकी मुट्ठी के बराबर भी नहीं हैं, उनकी माँ क्यों छीन ली है; उन बच्चों से जो न काम कर सकते हैं और न किसी चीज़ की ख़्वाहिश कर सकते हैं।

उसका दिमाग़ इन सवालों का कोई हल न पेश कर सका—वह बड़बड़ाता हुआ उठा, “शायद ऐसी बातों को एक पढ़ा-लिखा ही समझ सकता है...” और फिर वह अपनी बीवी से मुख़ातिब (सम्बोधित) होकर बोला, “प्यारी, जाओ और उन्हें यहाँ ले आओ...अगर वे अपनी माँ की लाश के पास जागे तो वे भयभीत हो जायेंगे...जाओ, उन्हें अभी ले आओ।” यह कहकर वह अपने दिल में सोचने लगा कि वह उन बच्चों को अपनी औलाद की तरह पालेगा; वे बड़े होकर उसके घुटनों पर चढ़ना सीख जाएँगे, ख़ुदा इन बच्चों को इस झोंपड़ी में देखकर बहुत ख़ुश होगा और उन्हें, सबको, ज़्यादा खाने को अता करेगा, “प्यारी, तुम्हें फ़िक्र नहीं करनी चाहिए...मैं और ज़्यादा मेहनत से काम करूँगा...”

अपनी बीवी को चारपाई की तरफ़ बढ़ते हुए देखकर माहीगीर बुलन्द आवाज़ में कहने लगा, “तुम सोच क्या रही हो?”

उसकी बीवी ने चारपाई के पास पहुँचकर चादर को उलट दिया, “यह तो रहे बच्चे!”

दो बच्चे सुबह की तरह मुस्कुरा रहे थे।

फरवरी, 1935

इश्क़-ए-हक़ीक़ी

इश्क-ओ-मुहब्बत के बारे में अख़लाक का नज़रिया वही था जो अक्सर आशिकों और मुहब्बत करने वालों का होता है। वह राझे पीर का चेला था। इश्क़ में मर जाना उसके नज़दीक एक बड़ी मौत मरना था।

अख़लाक तीस बरस का हो गया। मगर बावजूद कोशिशों के उसको किसी से इश्क़ न हुआ, लेकिन एक दिन एंगर्ड बर्गमैन की पिक्चर 'फ़ॉर हूम द बेल टोल्ज़' का मेटैनी शो देखने के दौरान उसने महसूस किया कि उसका दिल उस बुर्क़ा पोश लड़की से वाबस्ता हो गया है, जो उसके साथ वाली सीट पर बैठी थी और सारा वक़्त अपनी टाँग हिलाती रही थी।

पर्दे पर जब साये कम और रोशनी ज़्यादा हुई तो अख़लाक ने उस लड़की को एक नज़र देखा। उसके माथे पर पसीने के नन्हे-नन्हे क़तरे थे। नाक की फुँग पर चन्द बूँदें थीं। जब 'अख़लाक' ने उसकी तरफ़ देखा तो उसकी टाँग हिलना बन्द हो गयी। एक अदा के साथ उसने अपने स्याह बुर्के की जाली से अपना चेहरा ढाँप लिया। यह हरकत कुछ ऐसी थी कि अख़लाक को सहज ही हँसी आ गयी।

उस लड़की ने अपनी सहेली के कान में कुछ कहा। दोनों हौले-हौले हँसीं। इसके बाद उस लड़की ने नक़ाब अपने चेहरे से हटा ली। अख़लाक की तरफ़ तीखी-तीखी नज़रों से देखा और टाँग हिलाकर फिल्म देखने में मशगूल हो गयी।

अख़लाक सिगरेट पी रहा था। एंगई बर्गमैन उसकी महबूब एक्ट्रेस थी। 'फ़ॉर हूम द बेल टोल्ज़' में उसके बाल कटे हुए थे। फ़िल्म के आग़ाज में जब अख़लाक ने उसे देखा तो वह बहुत ही प्यारी मालूम हुई। लेकिन साथ वाली सीट पर बैठी हुई लड़की देखने के बाद यह एंगर्ड बर्गमैन को भूल गया। यूँ तो क़रीब-क़रीब सारी फ़िल्म उसकी निगाहों के सामने चली मगर उसने बहुत ही कम देखी।

सारा वक़्त वह लड़की उसके दिल-ओ-दिमाग पर छायी रही।

अख़लाक सिगरेट पर सिगरेट पीता रहा। एक मर्तबा उसने राख झाड़ी तो उसकी सिगरेट उँगलियों से निकलकर उस लड़की की गोद में जा गिरी। लड़की फ़िल्म देखने में मशगूल थी इसलिए उसको सिगरेट गिरने का कुछ पता न था। अख़लाक बहुत घबराया। इसी घबराहट में उसने हाथ बढ़ाकर सिगरेट उसके बुर्के पर से उठायी और फ़र्श पर फेंक दी। लड़की हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। अख़लाक ने फ़ौरन कहा, "माफ़ी चाहता हूँ आप पर सिगरेट गिर गयी थी।"

लड़की ने तीखी-तीखी नज़रों से अख़लाक की तरफ़ देखा और बैठ गयी। बैठकर

उसने अपनी सहेली से सरगोशी (कानाफूसी) में कुछ कहा। दोनों हौले-हौले हँसीं और फ़िल्म देखने में मशगूल हो गयीं।

फ़िल्म के अन्त पर जब कायद-ए-आज़म (मुहम्मद अली जिन्नाह) की तस्वीर प्रकट हुई तो अख़लाक उठा। खुदा मालूम क्या हुआ कि इसका पाँव उस लड़की के पाँव के साथ टकराया। अख़लाक एक बार फिर साक्षात क्षमा बन गया, "माफी चाहता हूँ...जाने आज क्या हो गया है।"

दोनों सहेलियाँ हौले-हौले हँसीं। जब भीड़ के साथ बाहर निकलीं तो अख़लाक उनके पीछे-पीछे हो लिया। वह लड़की जिससे उसको पहली नज़र का इश्क़ हुआ था, मुड़-मुड़कर देखती रही। अख़लाक ने इसकी परवाह न की और उनके पीछे-पीछे चलता रहा। उसने निश्चय कर लिया था कि वह उस लड़की का मकान देख के रहेगा।

माल रोड में फुटपाथ पर वाई.एम.सी.ए. के सामने उस लड़की ने मुड़कर अख़लाक की तरफ़ देखा और अपनी सहेली का हाथ पकड़कर रुक गयी। अख़लाक ने आगे निकलना चाहा तो वह लड़की उससे सम्बोधित हुई, "आप हमारे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हैं?"

अख़लाक ने एक क्षण सोचकर जवाब दिया, "आप मेरे आगे-आगे क्यों जा रही हैं।"

लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी। इसके बाद उसने अपनी सहेली से कुछ कहा फिर दोनों चल पड़ीं। बस स्टैंड के पास उस लड़की ने जब मुड़कर देखा तो अख़लाक ने कहा, "आप पीछे आ जाइये, मैं आगे बढ़ जाता हूँ।"

लड़की ने मुँह मोड़ लिया।

अनारकली का मोड़ आया तो दोनों सहेलियाँ ठहर गयीं। अख़लाक पास से गुज़रने लगा तो उस लड़की ने उससे कहा, "आप हमारे पीछे न आइए, यह बहुत बुरी बात है।"

लहजे में बहुत संजीदगी थी। अख़लाक ने "बहुत बेहतर" कहा और वापस चल दिया। उसने मुड़कर भी उनको न देखा, लेकिन दिल में उसको अफ़सोस था कि वह क्यों उसके पीछे न गया। इतनी देर के बाद उसको इतनी शिद्दत से महसूस हुआ था कि उसको किसी से मुहब्बत हुई है। लेकिन उसने मौक़ा हाथ से जाने दिया। अब खुदा मालूम फिर उस लड़की से मुलाकात हो या न हो।

जब वाई.एम.सी.ए. के पास पहुँचा तो रुककर उसने अनारकली के मोड़ की तरफ़ देखा। मगर अब वहाँ क्या था। वह तो उसी वक़्त अनारकली की तरफ़ चली गयी थी।

लड़की के नक्श बड़े पतले-पतले थे। बारीक नाक, छोटी-सी ठोड़ी, फूल की पत्तियों जैसे होंठ। जब पर्दे पर साये कम और रोशनी ज़्यादा होती थी तो उसने उसके ऊपर के होंठ पर एक तिल देखा था, जो बेहद प्यारा लगता था। अख़लाक ने सोचा था कि अगर यह तिल न होता तो शायद वह लड़की अधूरी रहती। उसका वहाँ पर होना बहुत ज़रूरी था।

छोटे-छोटे क़दम थे। जिनमें कँवारपन था। चूँकि उसको मालूम था कि एक मर्द मेरे पीछे-पीछे आ रहा है। इसलिए उनके इन छोटे-छोटे क़दमों में एक बड़ी प्यारी लड़खड़ाहट-सी पैदा हो गयी थी। उसका मुड़-मुड़कर तो देखना ग़ज़ब था। गर्दन को एक हल्का सा झटका देकर वह पीछे अख़लाक की तरफ़ देखती और तेज़ी से मोड़ लेती।

दूसरे रोज़ वह एगंर्ड बर्गमैन की फ़िल्म फिर देखने गया। शो शुरू हो चुका था। वाल्ट डिज़नी का कार्टून चल रहा था कि वह अन्दर हॉल में दाखिल हुआ। हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था। गेट कीपर की बीड़ी की अन्धी रोशनी के सहारे उसने टटोल-टटोलकर एक ख़ाली सीट तलाश की और उस पर बैठ गया।

डज़नी का कार्टून बहुत व्यंग्य-भरा था। इधर-उधर कई तमाशाई हँस रहे थे। अचानक बहुत ही क़रीब से अख़लाक को ऐसी हँसी सुनायी दी, जिसको वह पहचानता था। मुड़कर उसने पीछे देखा तो वही लड़की बैठी थी।

अख़लाक का दिल धक-धक करने लगा। लड़की के साथ एक नौजवान लड़का बैठा था। शक्ल-ओ-सूरत के एतबार से वह उसका भाई लगता था। उसकी मौज़ूदगी में वह किस तरह बार-बार मुड़कर देख सकता था।

इंटरवल हो गया। अख़लाक कोशिश के बावजूद फ़िल्म अच्छी तरह न देख सका। रोशनी हुई तो वह उठा। लड़की के चेहरे पर नकाब था, मगर उस महीन पर्दे के पीछे उसकी आँखें अख़लाक को नज़र आयीं। जिनमें मुस्कुराहट की चमक थी।

लड़की के भाई ने सिगरेट निकालकर सुलगायी। अख़लाक ने अपनी जेब में हाथ डाला और उससे सम्बोधित हुआ, “ज़रा माचिस दीजिये।”

लड़की के भाई ने उसको माचिस दे दी। अख़लाक ने अपनी सिगरेट सुलगायी और माचिस उसको वापस दे दी, “शुक्रिया।”

लड़की की टाँग हिल रही थी। अख़लाक अपनी सीट पर बैठ गया। फ़िल्म का बकाया हिस्सा शुरू हुआ। एक दो मर्तबा उसने मुड़कर लड़की की तरफ़ देखा। इससे ज़्यादा वह कुछ न कर सका।

फ़िल्म ख़त्म हुई। लोग बाहर निकलने शुरू हुए। लड़की और उसका भाई साथ-साथ थे। अख़लाक उनसे हटकर पीछे-पीछे चलने लगा।

स्टैंडर्ड के पास भाई ने अपनी बहन से कुछ कहा। एक ताँगेवाले को बुलाया लड़की उसमें बैठ गयी। लड़का स्टैंडर्ड में चला गया। लड़की ने नक़ाब में से अख़लाक की तरफ़ देखा। उसका दिल धक-धक करने लगा। ताँगा चल पड़ा। स्टैंडर्ड के बाहर उसके तीन-चार दोस्त खड़े थे। उनमें से एक की साइकिल उसने जल्दी-जल्दी पकड़ी और ताँगे के पीछे रवाना हो गया।

यह पीछा करना बड़ा दिलचस्प रहा। ज़ोर की हवा चल रही थी। लड़की के चेहरे पर से नकाब उठ-उठ जाता। स्याह जार्जट का पर्दा फड़फड़ा-फड़फड़ाकर उसके सफ़ेद चेहरे की झलकियाँ दिखाता था। कानों में सोने के बड़े-बड़े झूमर थे। पतले-पतले होठों पर स्याही गहरी सुर्खी थी...और ऊपरी होंठ पर तिल...वह बहुत ज़रूरी तिल। बड़े ज़ोर का झोंका आया तो अख़लाक के सर पर से हैट उतर गया। और सड़क पर दौड़ने लगा। एक ट्रक गुज़र रहा था। उसके वज़नी पहिए के नीचे आया और वहीं चित हो गया। लड़की हँसी अख़लाक मुस्कुरा दिया। गर्दन मोड़कर हैट की लाश देखी जो बहुत पीछे रह गयी थी और लड़की से मुख़ातिब होकर कहा, “उसको तो शहादत का रुतबा मिल गया।”

लड़की ने मुँह दूसरी तरफ़ मोड़ लिया।

अख़लाक थोड़ी देर के बाद फिर उससे मुखातिब हुआ, “आपको एतराज़ है तो वापस चला जाता हूँ।”

लड़की ने उसकी तरफ़ देखा मगर कोई जवाब न दिया।

अनारकली की एक गली में ताँगा रुका और वह लड़की उतरकर अख़लाक की तरफ़ बार-बार देखती नक़ाब उठाकर एक मकान में दाख़िल हो गयी। अख़लाक एक पाँव साइकिल के पैंडल पर और दूसरा पाँव दुकान के थड़े पर रखे थोड़ी देर खड़ा रहा। साइकिल चलाने ही वाला था कि उस मकान की पहली मंज़िल पर एक खिड़की खुली। लड़की ने झाँककर अख़लाक को देखा, मगर फ़ौरन ही शरमाकर पीछे हट गयी। अख़लाक तक़रीबन आधा घंटा वहाँ खड़ा रहा, मगर वह फिर खिड़की में प्रकट न हुई।

दूसरे रोज़ अख़लाक सुबह-सवेरे अनारकली की उस गली में पहुँचा। पन्द्रह-बीस मिनट तक इधर-उधर घूमता रहा। खिड़की बन्द थी। मायूस होकर लौटने वाला था कि एक फ़ालसे बेचनेवाला आवाज़ लगाता आया। खिड़की खुली, लड़की सर से नंगी प्रकट हुई। उसने फ़ालसेवाले को आवाज़ दी।

“भाई फ़ालसेवाले ज़रा ठहरना”, फिर उसकी निगाहें एकदम अख़लाक पर पड़ीं। चौंक कर वह पीछे हट गयी। फ़ालसेवाले ने सर पर से छाबड़ी उतारी और बैठ गया। थोड़ी देर के बाद वह लड़की सर पर दुपट्टा लिये नीचे आयी। अख़लाक को उसने कनखियों से देखा। शरमायी और फ़ालसे लिये बग़ैर वापस चली गयी।

अख़लाक को ये अदा बहुत पसन्द आयी, थोड़ा-सा तरस भी आया। फ़ालसेवाले ने जब उसको घूर के देखा तो वह वहाँ से चल दिया। “चलो आज इतना ही काफ़ी है।”

चन्द दिन में ही अख़लाक और उस लड़की में इशारे शुरू हो गये। हर रोज़ सुबह नौ बजे वह अनारकली की उस गली में पहुँचता। खिड़की खुलती वह सलाम करता वह जवाब देती, मुस्कुराती। हाथ के इशारों से कुछ बातें होतीं। इसके बाद वह चली जाती।

एक रोज़ उँगलियाँ घुमाकर उसने अख़लाक को बताया कि वह शाम के छः बजे के शो में सिनेमा देखने जा रही है। अख़लाक ने इशारों के ज़रिये से पूछा, “कौन से सिनेमा हाउस में” उसने जवाब में कुछ इशारे किये, मगर अख़लाक न समझा। आख़िर में उसने इशारों में कहा, “काग़ज़ पर लिखकर नीचे फ़ेंक दो।”

लड़की खिड़की से हट गयी। चन्द लम्हात के बाद उसने इधर-उधर देखकर काग़ज़ की एक मड़ोरी-सी नीचे फेंक दी। अख़लाक ने उसे खोला। लिखा था, ‘प्लाज़ा...परवीन।’

शाम को प्लाज़ा में उसकी मुलाकात परवीन से हुई। उसके साथ उसकी सहेली थी। अख़लाक उसके साथ वाली सीट पर बैठ गया। फ़िल्म शुरू हुई तो परवीन ने ऩकाब उठा लिया। अख़लाक सारा वक़्त उसको देखता रहा। उसका दिल धक-धक करता था। इंटरवल से कुछ पहले उसने आहिस्ता से अपना हाथ बढ़ाया और उसके हाथ पर रख दिया। वह काँप उठी। अख़लाक ने फ़ौरन हाथ उठा लिया। दरअसल वह उसको अँगूठी देना चाहता था, बल्कि खुद पहनाना चाहता था। जो उसने उसी रोज़ ख़रीदी थी। इंटरवल ख़त्म हुआ तो

उसने फिर अपना हाथ बढ़ाया और उसके हाथ पर रख दिया। वह काँपी, लेकिन अख़लाक ने हाथ न हटाया। थोड़ी देर के बाद उसने अँगूठी निकाली और उसकी एक उँगली में चढ़ा दी।...वह बिल्कुल ख़ामोश रही। अख़लाक ने उसकी तरफ़ देखा। पेशानी और नाक पर पसीने के नन्हे-नन्हे कतरे थर-थरा रहे थे।

फ़िल्म ख़त्म हुई तो अख़लाक और परवीन की यह मुलाकात भी ख़त्म हो गयी। बाहर निकलकर कोई बात न हो सकी। दोनों सहेलियाँ ताँगे में बैठीं। अख़लाक को दोस्त मिल गये। उन्होंने उसे रोक लिया। लेकिन वह बहुत खुश था। इसलिए कि परवीन ने उसका तोहफ़ा कुबूल कर लिया था।

दूसरे रोज़ निश्चित समय पर जब अख़लाक परवीन के घर के पास पहुँचा तो खिड़की खुली थी। अख़लाक ने सलाम किया। परवीन ने जवाब दिया। उसके दाहिने हाथ की उगँली में उसकी पहनाई हुई अँगूठी चमक रही थी।

थोड़ी देर इशारे होते रहे इसके बाद परवीन ने इधर-उधर देखकर एक लिफ़ाफ़ा नीचे फेंक दिया। अख़लाक ने उठाया। खोला तो उसमें एक ख़त था। अँगूठी के शुक्रिये का।

घर पहुँचकर अख़लाक ने एक लम्बा जवाब लिखा। अपना दिल निकालकर काग़ज़ों पर रख दिया। इस ख़त को उसने फूलदार लिफ़ाफ़े में बन्द किया। उस पर सेंट लगाया और दूसरे रोज़ सुबह नौ बजे परवीन को दिखाकर नीचे लेटरबॉक्स में डाल दिया।

अब उनमें बाक़ायदा पत्र-व्यवहार शुरू हो गया। हर ख़त इश्क-ओ-मुहब्बत का एक दफ़्तर था। एक ख़त अख़लाक ने अपने खून से लिखा। जिसमें उसने क़सम खायी कि वह हमेशा अपनी मुहब्बत में दृढ़ रहेगा। उसके जवाब में खूनी तहरीर ही आयी। परवीन ने भी हलफ उठाया कि वह मर जायेगी लेकिन अख़लाक के सिवा और किसी को जीवन-साथी नहीं बनायेगी।

महीनों गुज़र गये। इस दौरान में कभी-कभी सिनेमा में दोनों की मुलाक़ात हो जाती थी। मिलकर बैठने का मौक़ा उन्हें नहीं मिलता था। परवीन पर घर की तरफ़ से...बहुत कड़ी पाबन्दियाँ आमद थीं। वह बाहर निकलती थी या तो अपने भाई के साथ या अपनी सहेली ‘ज़हरा’ के साथ। इन दो के अलावा उसको और किसी के साथ बाहर जाने की इजाज़त नहीं थी। अख़लाक ने उसे कई मर्तबा लिखा कि ‘ज़हरा’ के साथ वह कभी उसे बारहदरी में या जहाँगीर के मकबरे में मिले। मगर वह न मिली। उसको डर था कि कोई देख लेगा।

इस दौरान अख़लाक के माता-पिता ने उसकी शादी की बातचीत शुरू कर दी। अख़लाक टालता रहा। जब उन्होंने तंग आकर एक जगह बात कर दी तो अख़लाक बिगड़ गया। बहुत हंगामा हुआ। यहाँ तक कि अख़लाक को घर से निकलकर एक रात इस्लामिया कॉलेज के ग्राउंड में सोना पड़ा। इधर परवीन रोती रही। खाने को हाथ तक न लगाया।

अख़लाक धुन का बहुत पक्का था। ज़िद्दी भी परले दर्जे का था। घर से बाहर क़दम निकाला तो फिर उधर रुख़ तक न किया। उसके वालिद ने उसको बहुत समझाया—बुझाया, मगर वह न माना। एक दफ़्तर में सौ रुपये माहवार पर नौकरी कर ली और एक छोटा-सा मकान किराये पर लेकर रहने लगा। जिसमें नल था न बिजली।

उधर परवीन अख़लाक की तकलीफ़ों के दुख में घुल रही थी। घर में जब अचानक उसकी शादी की बातचीत शुरू हुई तो उस पर बिजली-सी गिरी। उसने अख़लाक को लिखा। वह बहुत परेशान हुआ, लेकिन परवीन को उसने तसल्ली दी कि वह घबराये नहीं। दृढ़ रहे। इश्क़ उनका इम्तेहान ले रहा है।

बारह दिन गुज़र गये। अख़लाक कई बार गया। मगर परवीन खिड़की में नज़र न आयी। वह धैर्य खो बैठा। नींद उसकी ग़ायब हो गयी। उसने दफ़्तर जाना छोड़ या। ज़्यादा नागे हुए तो उसको नौकरी से हटा दिया गया। उसको कुछ होश नहीं था। हटाने का नोटिस मिला तो वह सीधा परवीन के मकान की तरफ़ चल पड़ा। पन्द्रह दिनों के लम्बे अर्से के बाद उसे परवीन नज़र आयी। वह भी एक क्षण के लिए। जल्दी से लिफ़ाफ़ा फेंककर वह चली गयी।

ख़त बहुत लम्बा था। परवीन की ग़ैर-हाज़िरी का कारण यह था कि उसका बाप उसको अपने साथ गौचर-अम्बाला ले गया था। जहाँ उसकी बड़ी बहन रहती थी। पन्द्रह दिन वह खून के आँसू रोती रही। उसका दहेज़ तैयार किया जा रहा था, लेकिन उसको महसूस होता था कि उसके लिए रंग-बिरंगे कफ़न बन रहे हैं। ख़त के आख़िर में ये लिखा था, ‘तारीख़ मुक़र्रर हो चुकी है...मेरी मौत की तारीख़ मुकर्रर हो चुकी है। मैं मर जाऊँगी...मैं ज़रूर कुछ खा के मर जाऊँगी। इसके सिवा और कोई रास्ता मुझे दिखाई नहीं देता...नहीं-नहीं एक और रास्ता भी है...लेकिन मैं क्या इतनी हिम्मत कर सकूँगी। तुम भी इतनी हिम्मत कर सकोगे...मैं तुम्हारे पास चली जाऊँगी...मुझे तुम्हारे पास आना ही पड़ेगा। तुमने मेरे लिए घर-बार छोड़ा। मैं तुम्हारे लिए यह घर नहीं छोड़ सकती, जहाँ मेरी मौत के सामान हो रहे हैं...लेकिन मैं बीवी बनकर तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ। तुम शादी का बन्दोबस्त कर लो। मैं सिर्फ़ तीन कपड़ों में आऊँगी। ज़ेवर वग़ैरह सब उतारकर यहाँ फेंक दूँगी।...जवाब जल्दी दो, हमेशा तुम्हारी। परवीन।’

अख़लाक ने कुछ न सोचा। फ़ौरन उसको लिखा, ‘मेरी बाँहें तुम्हें अपने आगोश में लेने के लिए तड़प रही हैं। मैं तुम्हारी इज़्ज़त-ओ-इसमत (मर्यादा) पर कोई हर्फ़ नहीं आने दूँगा। तुम मेरी जीवन-संगिनी बन के रहोगी। ज़िन्दगी भर मैं तुम्हें ख़ुश रखूँगा।’

एक-दो ख़त और लिखे गये इसके बाद तय किया कि परवीन बुद्ध को सुबह-सवेरे घर से निकलेगी। अख़लाक ताँगा लेकर गली के नुक्कड़ पर उसका इन्तज़ार करे।

बुद्ध को मुँह अँधेरे अख़लाक ताँगे में वहाँ पहुँचकर परवीन का इन्तज़ार करने लगा। पन्द्रह-बीस मिनट गुज़र गये। अख़लाक की बेचैनी बढ़ गयी। लेकिन वह आ गयी। छोटे-छोटे कदम उठाती वह गली में प्रकट हुई। चाल में लड़खड़ाहट थी। जब वह ताँगे में अख़लाक के साथ बैठी तो बुरी तरह काँप रही थी। अख़लाक खुद भी काँपने लगा।

घर पहुँचे तो अख़लाक ने बड़े प्यार से उसका बुर्के का नक़ाब उठाया और कहा, “मेरी दुल्हन कब तक मुझसे पर्दा करेगी।”

परवीन ने शरमाकर आँखें झुका लीं। उसका रंग ज़र्द था। जिस्म अभी तक काँप रहा था। अख़लाक ने ऊपरी होंठ के तिल की तरफ़ देखा तो उसके होंठों में एक बोसा तड़पने

लगा। उसके चेहरे को अपने हाथों में थामकर उसने तिल वाली जगह को चूमा। परवीन ने न-न की उसके होंठ खुले। दाँतों में गोश्त ख़ोरा था। मसूढ़े गहरे नीले रंग के थे गले हुये। सड़ाँध का एक भभका अख़लाक की नाक में घुस गया। एक धक्का-सा उसको लगा। एक और भभका परवीन के मुँह से निकला तो वह एकदम पीछे हट गया।

परवीन ने हया-भरी आवाज़ में कहा, “शादी से पहले आपको ऐसी बातों का हक नहीं पहुँचता” यह कहते हुए उसके गले हुए मसूढ़े नज़र आये, अख़लाक के होश-ओ-हवास ग़ायब थे। दिमाग़ सुन्न हो गया था। देर तक वे दोनों पास-पास बैठे रहे। अख़लाक को कोई बात नहीं सूझती थी। परवीन की आँखें झुकी हुई थीं। जब उसने उँगली का नाखून काटने के लिए होंठ खोले तो फिर उन गले हुए मसूढ़ों की नुमाइश हुई। बू का एक भभका निकला। अख़लाक को मतली आने लगी। सोचा। जब कुछ समझ में न आया तो लायलपुर रवाना हो गया, जहाँ उसका एक दोस्त रहता था। अख़लाक ने सारा वाक़या सुनाया तो उसने बहुत भर्त्सना की और उससे कहा, “फ़ौरन वापस जाओ कहीं बेचारी खुदकुशी न कर ले।”

अख़लाक रात को वापस लाहौर आया। घर में दाखिल हुआ तो परवीन मौज़ूद नहीं थी...पलँग पर तकिया पड़ा था। उस पर दो गोल-गोल निशान थे। गीले।

इसके बाद अख़लाक को परवीन कहीं नज़र न आयी।

जून, 1950 ई.

कुत्ते की दुआ

"आप यक़ीन नहीं करेंगे, मगर यह वाक़या जो मैं आपको सुनाने वाला हूँ, बिल्कुल सही है," यह कहकर शेख़ साहब ने बीड़ी सुलगाई। दो-तीन ज़ोर के कश लेकर उसे फेंक दिया और अपनी दास्तान सुनाना शुरू की। शेख़ साहब के मिज़ाज से हम वाकिफ़ थे, इसलिए हम ख़ामोशी से सुनते रहे। इस दरमियान में उनको हमने कहीं भी न टोका। आपने वाक़या यूँ बयान करना शुरू किया, "गोल्डी (पालतू कुत्ते का नाम) मेरे पास पन्द्रह बरस से था। जैसा कि नाम से ज़ाहिर है...उसका रंग सुनहरी भूरा था। बहुत ही हसीन कुत्ता था। जब मैं सुबह उसके साथ बाग की सैर को निकलता तो लोग उसको देखने के लिए खड़े हो जाते थे। लारेंस गार्डन के बाहर मैं उसे खड़ा कर देता। 'गोल्डी खड़े रहना यहाँ, मैं अभी आता हूँ।' यह कहकर बाग के अन्दर चला जाता। घूम-फिरकर आधे घंटे के बाद वापस आता तो गोल्डी वहीं अपने लम्बे-लम्बे बाल लटकाये खड़ा होता।

"स्पेशल जात के कुत्ते आमतौर पर बड़े आज्ञाकारी होते हैं। मगर मेरे गोल्डी में ये गुण सुस्पष्ट थे। जब तक उसको अपने हाथ से खाना न दूँ, नहीं खाता था। दोस्त यारों ने मेरा मान तोड़ने के लिए लाखों जतन किये मगर गोल्डी ने उनके हाथ से एक दाना तक न खाया।

"एक रोज़ इत्तिफ़ाक की बात है। मैं लारेंस के बाहर उसे छोड़कर गया तो एक दोस्त मिल गया। घूमते-घामते काफ़ी देर हो गयी। इसके बाद वह मुझे अपनी कोठी ले गया। मुझे शतरंज खेलने का मर्ज़ था। बाज़ी शुरू हुई तो मैं सारी दुनिया भूल गया। कई घंटे बीत गये। अचानक मुझे गोल्डी का ख़याल आया। बाज़ी छोड़, लारेंस के गेट की तरफ़ भागा। गोल्डी वहीं अपने लम्बे-लम्बे कान लटकाये खड़ा था। मुझे उसने अजीब नज़रों से देखा जैसे कह रहा है, 'दोस्त, तुमने आज अच्छा सुलूक किया मुझसे।'

"मैं बेहद शर्मिन्दा हुआ। चुनांचे आप यक़ीन जानें मैंने शतरंज खेलना छोड़ दिया...माफ कीजियेगा। मैं असल वाकये की तरफ़ अभी तक नहीं आया। दरअसल गोल्डी की बात शुरू हुई तो, मैं चाहता हूँ कि उसके बारे में मुझे जितनी बातें याद हैं आपको सुना दूँ...मुझे उससे बेहद मुहब्बत थी। मेरे अकेले रहने का एक कारण उसकी मुहब्बत भी थी, जब मैंने शादी न करने का निश्चय किया तो उसको ख़सी (जनन-शक्तिहीन) करा दिया।...आप शायद कहें कि मैंने जुल्म किया, लेकिन मैं समझता हूँ मुहब्बत में हर चीज़ जाइज़ है...मैं उसकी ज़ात के सिवा और किसी को देखना नहीं चाहता था।

"कई बार मैंने सोचा, 'अगर मैं मर गया तो यह किसी और के पास चला जायेगा। कुछ देर मेरी मौत का असर उस पर रहेगा। इसके बाद मुझे भूलकर अपने नये आक़ा से मुहब्बत

करना शुरू कर देगा।' जब मैं ये सोचता तो मुझे बहुत दुख होता। लेकिन मैंने यह निश्चय कर लिया था कि अगर मुझे अपनी मौत की आमद का पूरा यकीन हो गया तो मैं गोल्डी को हलाक कर दूँगा। आँखें बन्द करके उसे गोली का निशाना बना दूँगा।

"गोल्डी कभी एक लम्हे के लिए मुझसे जुदा नहीं हुआ था। रात को हमेशा मेरे साथ सोता। मेरी तन्हा ज़िन्दगी में वह एक रोशनी थी। मेरी बेहद फीकी ज़िन्दगी में उसका वजूद एक मधुरता था। उससे मेरी ग़ैर मामूली मुहब्बत देखकर दोस्त मज़ाक उड़ाते थे, 'शेख़ साहब गोल्डी कुतिया होती तो आपने ज़रूर उससे शादी कर ली होती।'

"ऐसे ही कई और भी फ़िकरे कसे जाते, लेकिन मैं मुस्कुरा देता। गोल्डी बड़ा ज़हीन था। उसके बारे में जब कोई बात होती तो फ़ौरन उसके कान खड़े हो जाते थे। मेरे हल्के-से-हल्के इशारे को भी वह समझ लेता था। मेरे मूड के सारे उतार-चढ़ाव उसे मालूम होते। मैं अगर किसी वजह से रंजीदा होता तो वह मेरे साथ चुहलें शुरू कर देता। मुझे खुश करने के लिए हर मुमकिन कोशिश करता।

"अभी उसने टाँग उठाकर पेशाब करना नहीं सीखा था यानी अभी कमसिन था कि उसने एक बर्तन को जोकि ख़ाली था, थूथनी बढ़ाकर सूँघा। मैंने उसे झिड़का तो दुम दबाकर वहीं बैठ गया...पहले उसके चेहरे पर हैरत-सी पैदा हुई थी कि हैं ये मुझसे क्या हो गया। देर तक गर्दन ज्योढ़ाये बैठा रहा, जैसे पश्चाताप के समंदर में डूबा है। मैं उठा। उठाकर उसको अपनी गोद में लिया। प्यारा, पुचकारा। बड़ी देर के बाद जाकर उसकी दुम हिली...मुझे बहुत तरस आया कि मैंने ख़्वामख़्वाह उसे डाँटा। क्योंकि उस रोज़ रात को ग़रीब ने खाने को मुँह न लगाया। वह बड़ा संवेदनशील कुत्ता था।

"मैं बहुत बे-परवाह आदमी हूँ। मेरी लापरवाही से उसको एक बार निमोनिया हो गया। मैं घबरा गया। डॉक्टरों के पास दौड़ा। इलाज शुरू हुआ, मगर असर नदारद। लगातार सात रातें जागता रहा। उसको बहुत तकलीफ़ थी। साँस बड़ी मुश्किल से आती थी। जब सीने में दर्द उठता तो वह मेरी तरफ़ देखता। जैसे यह कह रहा है, 'फ़िक्र की कोई बात नहीं मैं ठीक हो जाऊँगा।'

"कई बार मैंने महसूस किया कि सिर्फ़ मेरे आराम की ख़ातिर उसने यह ज़ाहिर करने की कोशिश की है कि उसकी तकलीफ़ कुछ कम है। वह आँखें मीच लेता ताकि मैं थोड़ी देर आँख लगा लूँ। आठवें रोज़ खुदा-खुदा करके उसका बुख़ार हल्का हुआ और आहिस्ता-आहिस्ता उतर गया। मैंने प्यार से उसके सर पर हाथ फेरा तो मुझे एक थकी-थकी-सी मुस्कुराहट उसकी आँखों में तैरती नज़र आयी।

"निमोनिया के ज़ालिम हमले के बाद देर तक उसको कमज़ोरी रही। लेकिन ताक़तवर दवाओं ने उसे ठीक-ठाक कर दिया। एक लम्बी ग़ैर हाज़िरी के बाद लोगों ने मुझे उसके साथ देखा तो तरह-तरह के सवाल करने शुरू किये, 'आशिक-ओ-माशूक कहाँ ग़ायब थे इतने दिनों।'

" 'आपस में कहीं लड़ाई तो नहीं हो गयी थी।'

" 'किसी और से तो नज़र नहीं लड़ गयी थी गोल्डी की।'

“मैं ख़ामोश रहा। गोल्डी ये बातें सुनता तो एक नज़र मेरी तरफ़ देखकर ख़ामोश हो जाता कि भूँकने दो कुत्तों को।

“वह मिसाल मशहूर है, ‘कुन्द हम जिंस बाहम जिंस परवाज़। कबूतर-ब-कबूतर बाज़-ब-बाज़।’ लेकिन गोल्डी को अपने हम जिंसों (सहलिंगों) में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसकी दुनिया सिर्फ़ मेरी जात थी। इससे बाहर वह कभी निकलता ही नहीं था।

“गोल्डी मेरे पास नहीं था। जब एक दोस्त ने मुझे अख़बार पढ़कर सुनाया। उसमें एक वाक़या लिखा था। आप सुनिए बड़ा दिलचस्प है। अमेरिका या इंगलिस्तान मुझे याद नहीं कहाँ। एक शख़्स के पास कुत्ता था। मालूम नहीं किस ज़ात का। उस शख़्स का ऑपरेशन होना था। उसको अस्पताल ले गये तो कुत्ता भी साथ हो लिया। स्ट्रेचर पर डालकर उसको ऑपरेशन-रूम में ले जाने लगे तो कुत्ते ने अन्दर जाना चाहा। मालिक ने उसको रोका और कहा, ‘बाहर खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ’...कुत्ता हुक्म सुनकर बाहर खड़ा हो गया। अन्दर मालिक का ऑपरेशन हुआ। जो नाकाम साबित हुआ...उसकी लाश दूसरे दरवाज़े से बाहर निकाल दी गयी...कुत्ता बारह बरस तक वहीं खड़ा अपने मालिक का इन्तज़ार करता रहा। पेशाब, पाख़ाने के लिए कुछ देर वहाँ से हटता...फिर वहीं खड़ा हो जाता। आख़िर एक रोज़ मोटर की लपेट में आ गया और बुरी तरह ज़ख्मी हुआ। मगर इस हालत में भी वह खुद को घसीटता हुआ वहाँ पहुँचा। जहाँ उसके मालिक ने उसे इन्तज़ार करने के लिए कहा था। आख़िरी साँस उसने उसी जगह ली।...ये भी लिखा था कि अस्पतालवालों ने उसकी लाश में भुस भरके उसको वहीं रख दिया है जैसे वह अब भी अपने आक़ा के इन्तज़ार में खड़ा है।

“मैंने यह दास्तान सुनी तो मुझ पर कोई ख़ास असर न हुआ। अव्वल तो मुझे उसकी सेहत ही का यक़ीन न आया, लेकिन जब गोल्डी मेरे पास आया और मुझे उसके गुणों का ज्ञान हुआ तो बहुत बरसों के बाद मैंने यह दास्तान कई दोस्तों को सुनायी। सुनाते वक्त मैं भाव-विभोर हो जाता था और मैं सोचने लगता था, ‘मेरे गोल्डी से भी कोई ऐसा कारनामा वाबस्ता होना चाहिए...गोल्डी मामूली हस्ती नहीं है।’

“गोल्डी बहुत मतीन (शालीन) और संजीदा था। बचपन में उसने थोड़ी शरारतें कीं मगर जब उसने देखा कि मुझे पसन्द नहीं तो उनको त्याग दिया। आहिस्ता-आहिस्ता संजीदगी अख़्तियार कर ली जो अन्तिम समय तक क़ायम रही।

“मैंने अन्तिम समय तक कहा है तो मेरी आँखों में आँसू आ गये हैं।”

शेख साहब रुक गये उनकी आँखें भीग गयीं। हम ख़ामोश रहे। थोड़े अर्से के बाद उन्होंने रूमाल निकालकर अपने आँसू पोंछे और कहना शुरू किया, “ये मेरी ज़्यादती है कि मैं ज़िन्दा हूँ...लेकिन शायद इसलिए ज़िन्दा हूँ कि इन्सान हूँ...मर जाता तो शायद गोल्डी की तौहीन होती...जब वह मरा तो रो-रो कर मेरा बुरा हाल था। मैंने उसको मरवा दिया था। इसलिए नहीं कि मुझे अपनी मौत की आमद का यक़ीन हो गया था...वह पागल हो गया था। ऐसा पागल नहीं जैसा कि आम पागल कुत्ते होते हैं। उसके मर्ज़ का कुछ पता ही नहीं चलता था। उसको सख़्त तकलीफ़ थी। अन्तिम समय का-सा आलम उस पर छाया था। डॉक्टरों ने कहा, ‘इसका एकमात्र इलाज यही है कि इसको मरवा दो।’ मैंने पहले सोचा, ‘नहीं’ लेकिन

वो जिस वेदना में गिरफ़्तार था, मुझसे देखी नहीं जाती थी। मैं मान गया। वो उसे एक कमरे में ले गये। जहाँ बिजली का झटका पहुँचाकर मार डालने वाली मशीन थी। मैं अभी अपने दिमाग़ में अच्छी तरह कुछ सोच भी न सका था कि वह उसकी लाश ले आये...मेरे गोल्डी की लाश। जब मैंने उसे अपनी बाज़ुओं में उठाया तो मेरे आँसू टप-टप उसके सुनहरे बालों पर गिरने लगे जो पहले कभी गंदे नहीं हुए थे।...ताँगे में उसे घर लाया। देर तक उसको देखा किया। पन्द्रह साल की रफ़ाक़त (दोस्ती) की लाश मेरे बिस्तर पर पड़ी थी।...क़ुर्बानी का मुजस्समा (प्रतिरूप) टूट गया था। मैंने उसको नहलाया...कफ़न पहनाया। बहुत देर तक सोचता रहा कि अब क्या करूँ...ज़मीन में दफ़न करूँ या जला दूँ।

"ज़मीन में दफ़न करता तो उसकी मौत का एक निशान रह जाता। ये मुझे पसन्द नहीं था, मालूम नहीं क्यों। यह भी मालूम नहीं कि मैंने उसको क्यों नदी में बहाना चाहा। मैंने उसके बारे में अब भी कई बार सोचा है। मगर मुझे कोई जवाब नहीं मिला...ख़ैर मैंने एक नयी बोरी में उसकी कफ़नाई हुई लाश डाली...धो-धा कर बट्टे उसमें डाले और दरिया की तरफ़ रवाना हो गया।

"जब बेड़ी दरिया के दरमियान में पहुँची और मैंने बोरी की तरफ़ देखा तो गोल्डी से पन्द्रह बरस की रफ़ाक़त-ओ-मुहब्बत एक बहुत ही तेज़ तल्ख़ी (कटुता) बनकर मेरे हलक़ में अटक गयी। मैंने अब ज़्यादा देर करना मुनासिब न समझा। काँपते हुए हाथों से बोरी उठायी और दरिया में फेंक दी। बहते हुए पानी की चादर पर कुछ बुलबुले उठे और हवा में हल हो गये।

"बेड़ी वापस साहिल पर आयी। मैं उतरकर देर तक उसकी तरफ़ देखता रहा। जहाँ मैंने गोल्डी को नदी में बहाया था...शाम का धुँधलका छाया हुआ था। पानी बड़ी ख़ामोशी से बह रहा था जैसे वह गोल्डी को अपनी गोद में सुला रहा है।"

ये कहकर शेख़ साहब ख़ामोश हो गये। चन्द लम्हात के बाद हममें से एक ने उनसे पूछा, "लेकिन शेख साहब आप तो ख़ास वाक़या सुनाने वाले थे।"

शेख़ साहब चौंके, "ओह...माफ कीजियेगा। मैं अपनी रौ में जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया...वाक़या यह था कि...मैं अभी अर्ज़ करता हूँ...पन्द्रह बरस हो गये थे हमारी रफ़ाक़त को। उस दौरान में मैं कभी बीमार नहीं हुआ था। मेरी सेहत माशाअल्लाह बहुत अच्छी थी, लेकिन जिस दिन मैंने गोल्डी की पन्द्रहवीं सालगिरह मनायी। उसके दूसरे दिन मैंने आज़ा शिकनी (शिथिलता) महसूस की। शाम को यह आज़ा शिकनी तेज़ बुख़ार में तब्दील हो गयी। रातभर सख़्त बेचैन रहा, गोल्डी जागता रहा। एक आँख बन्द करके दूसरी आँख से मुझे देखता रहा। पलँग पर से उतरकर नीचे जाता। फिर आकर बैठ जाता।

"ज़्यादा उम्र हो जाने के कारण उसकी देखने और सुनने की ताकत कमज़ोर हो गयी थी। लेकिन ज़रा-सी आहट होती तो वो चौंक पड़ता और अपनी धुँधली आँखों से मेरी तरफ़ देखता और जैसे ये पूछता...'यह क्या हो गया है तुम्हें।'

"उसको हैरत थी कि मैं इतनी देर तक पलँग पर क्यों पड़ा हूँ, लेकिन वो जल्दी ही सारी बात समझ गया। जब मुझे बिस्तर पर लेटे कई दिन गुज़र गये तो उसके चेहरे पर

अफ़सुर्दगी (निराशा) छा गयी। मैं उसको अपने हाथ से खिलाया करता था। बीमारी के आगाज़ में तो मैं उसको खाना देता रहा। जब कमज़ोरी बढ़ गयी तो मैंने एक दोस्त से कहा कि वह सुबह-शाम गोल्डी को खाना खिलाने आ जाया करे। वह आता रहा, मगर गोल्डी ने प्लेट की तरफ़ मुँह न किया। मैंने बहुत कहा, लेकिन वो न माना। एक मुझे अपने मर्ज़ की तकलीफ़ थी जो दूर होने ही में नहीं आता था। दूसरे मुझे गोल्डी की फ़िक्र थी। जिसने खाना-पीना बिल्कुल बन्द कर दिया था।

"अब उसने पलँग पर बैठना लेटना भी छोड़ दिया। सामने दीवार के पास सारा दिन और सारी रात ख़ामोश बैठा अपनी धुँधली आँखों से मुझे देखता रहता। इससे मुझे और भी दुख हुआ। वह कभी नंगी ज़मीन पर नहीं बैठा था। मैंने उससे बहुत कहा, लेकिन वो न माना। वह बहुत ज़्यादा ख़ामोश हो गया था। ऐसा मालूम होता था कि शोकाकुल है। कभी-कभी उठकर पलँग के पास आता। अजीब हसरत-भरी नज़रों से मेरी तरफ़ देखता और गर्दन झुकाकर वापस दीवार के पास चला जाता।

"एक रात लैम्प की रोशनी में मैंने देखा कि गोल्डी की धुँधली आँखों में आँसू चमक रहे हैं। उसके चेहरे से दुख और मलाल बरस रहा था। मुझे बहुत दुख पहुँचा। मैंने उसे हाथ के इशारे से बुलाया। लम्बे-लम्बे सुनहरे कान हिलाता वह मेरे पास आया। मैंने बड़े प्यार से कहा, 'गोल्डी मैं अच्छा हो जाऊँगा। तुम दुआ माँगो...तुम्हारी दुआ ज़रूर कुबूल होगी।'

"यह सुनकर उसने बड़ी उदास आँखों से मुझे देखा, फिर सर ऊपर उठाकर छत की तरफ़ देखने लगा। जैसे दुआ माँग रहा है...कुछ देर वह इस तरह खड़ा रहा...मेरे ज़िस्म पर झुरझुरी-सी छा गयी। एक अजीब-ओ-ग़रीब तस्वीर मेरी आँखों के सामने थी। गोल्डी सचमुच दुआ माँग रहा था...मैं सच अर्ज़ करता हूँ वह साक्षात दुआ था। मैं कहना नहीं चाहता। लेकिन उस वक़्त मैंने महसूस किया कि उसकी रूह खुदा के सामने पहुँचकर गिड़गिड़ा रही है।

"मैं चन्द ही दिनों में अच्छा हो गया। लेकिन गोल्डी की हालत ग़ैर हो गयी। जब तक मैं बिस्तर पर था। वो आँखें बन्द किये दीवार के साथ ख़ामोश बैठा रहा। मैं हिलने-डुलने के काबिल हुआ तो मैंने उसको खिलाने-पिलाने की कोशिश की मगर निरर्थक। उसको अब किसी शय से दिलचस्पी नहीं थी। दुआ माँगने के बाद जैसे उसकी सारी ताक़त खत्म हो गयी थी।

"मैं उससे कहता, 'मेरी तरफ़ देखो गोल्डी...मैं अच्छा हो गया हूँ...खुदा ने तुम्हारी दुआ कुबूल कर ली है।' लेकिन वो आँखें न खोलता। मैंने दो-तीन दफ़ा डॉक्टर बुलाया। उसने इंजेक्शन लगाये, पर कुछ न हुआ। एक दिन मैं डॉक्टर लेकर आया तो उसका दिमाग़ चल चुका था।

"मैं उठकर उसे बड़े डॉक्टर के पास ले गया और उसको बिजली के झटके से मरवा दिया।"

"मुझे मालूम नहीं बाबर और हुमायूँ वाला क़िस्सा कहाँ तक सही है...लेकिन ये वाक़या बिल्कुल दुरुस्त है।"

जून, 1950

शेर आया, शेर आया, दौड़ना

ऊँचे टीले पर गडरिये का लड़का खड़ा, दूर जंगलों की तरफ़ मुँह किये चिल्ला रहा था, "शेर आया, शेर आया, दौड़ना!"

बहुत देर तक वह अपना गला फाड़ता रहा। उसकी जवान बुलन्द आवाज़ बहुत देर तक वातावरण में गूँजती रही—जब चिल्ला-चिल्लाकर उसका हलक़ सूख गया तो बस्ती से दो-तीन बूढ़े लाठियाँ टेकते हुए आये और गडरिये के लड़के को कान से पकड़कर ले गये।

पंचायत बुलायी गयी—बस्ती के सारे अक्लमंद जमा हुए और गडरिये के लड़के का मुक़दमा शुरू हुआ।

आरोप यही था कि उसने ग़लत ख़बर दी और बस्ती के अमन में ख़लल डाला।

लड़के ने कहा, "मेरे बुज़ुर्गों, तुम ग़लत समझते हो...शेर आया नहीं था, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आ नहीं सकता।"

जवाब मिला, "वह नहीं आ सकता।"

लड़के ने पूछा, "क्यों?"

जवाब मिला, "वन-विभाग के अफ़सर ने हमें चिट्ठी भेजी थी कि शेर बूढ़ा हो चुका है।"

लड़के ने कहा, "लेकिन तुम्हें यह मालूम नहीं कि उसने, थोड़े ही रोज़ हुए, कायाकल्प करायी है।"

जवाब मिला, "यह अफ़वाह है...हमने वन-विभाग से पूछा था और हमें यह जवाब मिला था कि कायाकल्प कराने की बजाय शेर ने तो अपने सारे दाँत निकलवा दिये हैं, क्योंकि वह अपनी ज़िन्दगी के बकाया दिन अहिंसा में गुज़ारना चाहता है।"

लड़के ने बड़े जोश के साथ कहा, "मेरे बुज़ुर्गो, क्या यह जवाब झूठा नहीं हो सकता?"

सबने एक ज़बान होकर कहा, "हमें वन-विभाग के अफ़सर पर पूरा भरोसा है, इसलिए कि वह सच बोलने की शपथ उठा चुका है।"

लड़के ने पूछा, "क्या यह हलफ़ झूठा नहीं हो सकता?"

जवाब मिला, "हरगिज़ नहीं...तुम साज़िशी हो, फिफ्थ कालमिस्ट हो, कम्युनिस्ट हो, ग़द्दार हो, तरक़्क़ीपसन्द (प्रगतिवादी) हो...सआदत हसन मंटो हो।"

लड़का मुस्कुराया, "ख़ुदा का शुक्र है कि मैं वह शेर नहीं, जो आनेवाला है...मैं वन-विभाग का सच बोलने वाला अफ़सर भी नहीं...मैं..."

पंचायत के एक बूढ़े आदमी ने लड़के की बात काटकर कहा, "तुम उसी गडरिये के लड़के की औलाद हो, जिसकी कहानी वर्षों से स्कूलों की प्रारम्भिक क्लासों में पढ़ाई जा रही है...तुम्हारा हश्र भी वही होगा, जो उसका हुआ था...शेर आयेगा तो तुम्हारी ही बोटी चबा डालेगा।"

गडरिये का लड़का मुस्कुराया, "मैं तो उससे लड़ूँगा। मुझे तो हर घड़ी उसके आने का खटका लगा रहता है...तुम क्यों नहीं समझते हो कि 'शेर आया, शेर आया' वाली कहानी, जो तुम अपने बच्चों को पढ़ा रहे हो, आज की कहानी नहीं...आज की कहानी में तो शेर आया, शेर आया का मतलब यह है कि 'ख़बरदार रहो, होशियार रहो'...बहुत मुमकिन है, शेर की बजाय कोई गीदड़ ही इधर चला आये... इस हैवान को भी रोकना चाहिए।"

सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े, "कितने डरपोक हो तुम...गीदड़ से डरते हो।"

गडरिये के लड़के ने कहा, "मैं शेर और गीदड़, दोनों से नहीं डरता, लेकिन उनकी हैवानियत से अलबत्ता ज़रूर भयभीत रहता हूँ और उस हैवानियत का मुक़ाबला करने के लिए ख़ुद को हमेशा तैयार रखता हूँ...मेरे बुज़ुर्गो, स्कूलों से वह किताब हटा दो, जिसमें 'शेर आया, शेर आया' वाली पुरानी कहानी छपी है...उसकी जगह यह नयी कहानी पढ़ाओ।"

एक बुड्ढे ने खाँसते-खँखारते हुए कहा, "यह लौंडा हमें गुमराह करना चाहता है...यह हमें सीधे रास्ते से हटाना चाहता है।"

लड़के ने मुस्कुराकर कहा, "ज़िन्दगी सीधी लकीर नहीं है मेरे बुज़ुर्गो!"

दूसरे बूढ़े ने आक्रोश में काँपते हुए कहा, "यह नास्तिक है...यह अधर्मी है... उपद्रवियों का एजेंट है...इसको फ़ौरन जेल में डाल दो।"

गडरिये के लड़के को जेल में डाल दिया गया।

उसी रात बस्ती में शेर दाख़िल हुआ।

भगदड़ मच गयी—कुछ बस्ती छोड़कर भाग गये, बाकी शेर ने शिकार कर लिये।

मूँछों के साथ लगा हुआ ख़ून चूसता जब शेर जेल के पास से गुज़रा तो उसने मजबूत लोहे की सलाख़ों के पीछे गडरिये के लड़के को देखा और दाँत पीसकर रह गया।

गडरिये का लड़का मुस्कुराया, "दोस्त, यह मेरे बुज़ुर्गों की ग़लती है, वरना तुम मेरे लहू का ज़ाइक़ा भी चख लेते...!"

भंगन

"परे हटिये..."

"क्यों?"

"मुझे आपसे बू आती है।"

"हर इन्सान के जिस्म की एक ख़ास बू होती है...आज बीस बरसों के बाद तुम्हें इससे नफ़रत क्यों महसूस होने लगी।"

"बीस बरस...अल्लाह ही बेहतर जानता है कि मैंने इतना लम्बा अर्सा कैसे बसर किया।"

"मैंने कभी आपको इस अर्से में तकलीफ़ पहुँचाई?"

"जी, कभी नहीं।"

"तो फिर आज अचानक आपको मुझसे ऐसी बू क्यों आने लगी, जिससे आपकी नाक जो माशा अल्लाह काफ़ी बड़ी है इतनी आक्रोशित हो रही है।"

"आप अपनी नाक तो देखिये...पकौड़ा-सी है।"

"मैं इससे इनकार नहीं करता...पकौड़े, तुम जानती हो मुझे बहुत पसन्द हैं।"

"आपको तो हर वाहियात चीज़ पसन्द होती है...कूड़े-करकट में भी आप दिलचस्पी लेते हैं।"

"कूड़ा-करकट हमारा ही तो फैलाया होता है...उसमें आदमी दिलचस्पी क्यों न ले...और तुम जानती हो आज से दस साल पहले जब तुम्हारी हीरे की अँगूठी गुम हो गयी थी तो उसी कूड़े के ढेर से मैंने तुम्हें तलाश करके दी थी।"

बड़ा करम किया था आपने मुझ पर।"

"भई करम का सवाल नहीं"...फ़ारसी का एक शे'र है—

ख़ाक रां राब हिक़ारत मगर
तू चः दानी कि दरी ग़िर्द सवार-ए-बाशद

"मैं ख़ाक भी नहीं समझी।"

"यही वजह है कि तुमने अभी तक मुझे नहीं समझा...वरना बीस बरस एक आदमी को पहचानने के लिए काफ़ी होते हैं।"

"इन बीस बरसों में आपने कौन-सा सुख पहुँचाया है मुझे?"

"तुम दुख की बात करो...बताओ मैंने कौन-सा दुख तुम्हें इस अर्से में पहुँचाया?"

"एक भी नहीं।"

“तो फिर यह कहने का क्या मतलब था...इन बीस बरसों में आपने कौन-सा सुख पहुँचाया है मुझे?”

“आप मेरे क़रीब न आइये... मैं सोना चाहती हूँ।”

“इस गुस्से में नींद आ जायेगी तुम्हें?”

“ख़ाक आयेगी...बहरहाल...आँखें बन्द करके लेटी रहूँगी और...”

“और क्या करेंगी?”

“लेटी उस रोज़ पर आँसू बहाऊँगी जब मैं आपके पल्ले बाँधी गयी।”

“तुम्हें याद है वह दिन क्या था...सन् क्या था...वक़्त क्या था?”

“मैं कभी वह दिन भूल सकती हूँ...ख़ुदा करे वह किसी लड़की पर न आये।”

“तुम बता तो दो...मैं तुम्हारी याददाश्त का इम्तिहान लेना चाहता हूँ।”

“अब आप मेरा इम्तिहान क्या लेंगे...परे हटिये...मुझे आपसे बू आ रही है।”

“भई हद हो गयी है...तुम्हारी इतनी लम्बी नाक जो कहीं ख़त्म होने ही में नहीं आती इसको आख़िर क्या हो गया है...मुझसे तो इसको बड़ी भीनी-भीनी खुश्बू आनी चाहिए...तुमने मुझसे इन बीस बरसों में हज़ारों मर्तबा कहा कि आप जब किसी कमरे में हों और वहाँ से निकल जायें तो मैं पहचान जाया करती हूँ कि आप वहाँ आये थे।”

“आप झूठ बोल रहे हैं।”

“देखो...मैंने अपनी ज़िन्दगी में आज तक झूठ नहीं बोला...तुम मुझ पर यह इल्ज़ाम न धरो।”

“वाह जी वाह, बड़े आये हैं आप कहीं के सच्चे...मेरा सौ रुपये का नोट आपने चुराया और साफ़ मुकर गये।”

“यह कब की बात है?”

“दो जून सन् उन्नीस सौ बयालीस की...जब सलमा मेरे पेट में थी।”

“यह तारीख़ तुम्हें खूब याद रही।”

“क्यों याद न रहती। जब आपसे मेरी इतनी ज़बर्दस्त लड़ाई हुई थी। मैं अन्दर कमरे में पड़ी थी। आपने चाबी बड़ी सफ़ाई से मेरे तकिये के नीचे से निकाली। दूसरे कमरे में जाकर अलमारी खोली और उसमें जो सात सौ पड़े थे। उनमें से एक नोट उड़ाकर ले गये। मैंने जब दो-ढाई घंटों के बाद उठकर देखा तो आपसे तकरार हुई। मगर आप थे कि ‘परों’ पर पानी ही नहीं लेते थे। आख़िर मैं ख़ामोश हो गयी।”

“यह दो जून सन् उन्नीस सौ बयालीस की बात है...आजकल सन् चव्वन चल रहा है। अब उसके ज़िक्र का क्या फ़ायदा?”

“फ़ायदा तो हर हालत में आप ही का रहता है...मेरी एक नीलम की अँगूठी भी आपने ग़ायब कर दी थी, लेकिन मैंने आपसे कुछ नहीं कहा था।”

“देखो मैं तुम्हारी जान की क़सम खाकर कहता हूँ। उस नीलम की अँगूठी के बारे में मुझे कुछ मालूम नहीं।”

“और उस सौ रुपये के नोट के बारे में।”

“अब तुम्हारी जान की कसम खायी है तो सचमुच बताना ही पड़ेगा...मैंने...मैंने चुराया ज़रूर था, मगर सिर्फ़ इसलिए कि उस महीने मुझे तनख़्वाह देर से मिलने वाली थी और तुम्हारी सालगिरह थी। तुम्हें कोई तोहफ़ा तो देना था। इन बीस बरसों में तुम्हारी हर सालगिरह पर मैं अपनी सामर्थ्य के मुताबिक़ कोई न कोई तोहफ़ा पेश करता रहा हूँ।”

“बड़े तोहफ़े...उपहार दिये हैं आपने मुझे।”

“नाशुक्री तो न बनो।”

“मैं कई दफ़ा कह चुकी हूँ, आप परे हट जाइये...मुझे आपसे बू आती है।”

“किसकी?”

“यह आपको मालूम होना चाहिए।”

“मैंने ख़ुद को कई मर्तबा सूँघा है, मगर मेरी पकौड़ा जैसी नाक में ऐसी कोई बू नहीं घुसी जिस पर किसी बीवी को एतराज़ हो सके।”

“आप बातें बनाना खूब जानते हैं।”

“और बातें बिगाड़ना तुम...मेरी समझ में नहीं आता आज तुम इस क़दर नाराज़ क्यों हो।”

“अपने गरेबान में मुँह डालकर देखिये।”

“मैं इस वक़्त क़मीज़ पहने नहीं हूँ।”

“क्यों?”

“सख़्त गर्मी है।”

“सख़्त गर्मी हो या नर्म...आपको क़मीज़ तो नहीं उतारनी चाहिए थी। यह कोई शराफ़त नहीं।”

“मोहतरमा! आपने भी तो क़मीज़ उतार रखी है...अपने नंगे बदन को देखिये।”

“ओह...यह मैंने क्या वाहियातपन किया है।”

“यह वाहियातपन तो आप गर्मियों में बीस बरस से कर रही हैं।”

“ख़ैर झूठ बोलना तो हर मर्द की आदत होती है।”

“आप मुझ से दूर ही रहें।”

“क्यों?”

“तौबा...लाख बार कह चुकी हूँ कि मुझे आपसे बहुत गन्दी बू आ रही है।”

“पहले सिर्फ़ बू थी...अब गन्दी हो गयी।”

“ख़बरदार, जो आपने मुझे हाथ लगाया।”

“इस क़दर अनासक्ति आख़िर क्यों?”

“मैं अब आपसे बिल्कुल अनासक्त हो चुकी हूँ।”

“इन बीस बरसों में तुमने कभी ऐसी अनासक्ति का इज़हार नहीं किया था।”

“अब तो कर दिया है।”

“लेकिन मुझे मालूम तो हो कि इसकी वजह क्या है।”

“मैं कहती हूँ, मुझे मत छुइये।”

“तुम्हें मुझसे इतनी नफ़रत क्यों हो रही है?”
“आप नापाक हैं...बेहद ज़लील हैं।”
“देखो, तुम बहुत ज़्यादती कर रही हो।”
“आपने कम की है। कोई शरीफ़ आदमी आपकी तरह ऐसी ज़लील हरकत नहीं कर सकता था।”
“कौन सी?”
“आज सुबह क्या हुआ था?”
“आज सुबह?...बारिश हुई थी।”
“बारिश हुई थी...लेकिन उस बारिश में आपने किसको अपनी आगोश में दबाया हुआ था?”
“ओह!”
“बस इसका जवाब अब ओह, ही होगा...मैंने पकड़ जो लिया आपको।”
“देखो मेरी जान...”
“मुझे अपनी जान-वान मत कहिये...आपको शर्म आनी चाहिए।”
“किस बात पर...किस गुनाह पर?”
“मैं कहती हूँ आदमी गुनाह करे...लेकिन ऐसी गन्दगी में न गिरे।”
“मैं किस गन्दगी में गिरा हूँ?”
“आज सुबह आपने उस...उस...”
“क्या?”
“उस भंगन को...जवान भंगन को जो मिठाईवाले के साथ भाग गयी थी।”
“लाहौल वला...तुम भी अजीब औरत हो...वह ग़रीब गर्भवती है बारिश में झाड़ू देते हुए उसको गश आया और गिर पड़ी। मैंने उसको उठाया और उसके क्वार्टर में ले गया।”
“फिर क्या हुआ?”
“तुम्हें मालूम नहीं कि वह मर गयी?”
“ओह...बेचारी...मैं तो ठंडी बर्फ़ हो गयी हूँ।”
“मेरे क़रीब आ जाओ...मैं क़मीज़ पहन लूँ?”
“उसकी क्या ज़रूरत है? तुम्हारी क़मीज़ मैं हूँ।”

फातो

तेज़ बुख़ार की हालत में उसे अपनी छाती पर कोई ठंडी चीज़ रेंगती महसूस हुई। उसके ख़यालात का सिलसिला टूट गया। जब वह मुकम्मल तौर पर बेदार (जागृत) हुआ तो उसका चेहरा बुख़ार की तेज़ी के कारण तमतमा रहा था—उसने आँखें खोलीं और देखा कि फातो फ़र्श पर बैठी, पानी में कपड़ा भिगोकर उसके माथे पर लगा रही है।

जब फातो ने उसके माथे पर से कपड़ा उतारने के लिए हाथ बढ़ाया तो उसने फातो का हाथ पकड़ लिया और अपने सीने पर रखकर हौले-हौले प्यार से अपना हाथ उस पर फेरना शुरू कर दिया।

उसकी सुर्ख़ आँखें दो अँगारे बनकर देर तक फातो को देखती रहीं—फातो उस दहकती हुई टिकटिकी की ताब न ला सकी और हाथ छुड़ाकर अपने काम में व्यस्त हो गयी—वह उठकर बिस्तर में बैठ गया।

फातो से, जिसका असल नाम फ़ातमा था, उसको ग़ैर महसूस तौर पर मुहब्बत हो गयी थी, हालाँकि वह जानता था कि वह चरित्र-आचरण की अच्छी नहीं, मुहल्ले में जितने लौंडे हैं, उससे इश्क़ लड़ा चुके हैं—लेकिन यह सब कुछ जानते हुए भी उसको फातो से मुहब्बत हो गयी थी।

वह अगर बुख़ार से ग्रस्त न होता तो यक़ीनन उसने अपने इस जज़्बे का इज़हार फातो से कभी न किया होता, मगर तेज़ बुख़ार के कारण उसका अपने दिलो-दिमाग़ पर कोई कंट्रोल नहीं रहा था—यही वजह है कि उसने ऊँची आवाज़ में फातो को पुकारना शुरू किया, “इधर आओ, मेरी तरफ़ देखो...जानती हो, मैं तुम्हारी मुहब्बत में गिरफ़्तार हूँ, बहुत बुरी तरह तुम्हारी मुहब्बत में गिरफ़्तार हूँ...उसी तरह तुम्हारी मुहब्बत में फँस गया हूँ, जैसे कोई दलदल में फँस जाये...मैं जानता हूँ, तुम क्या हो। मैं जानता हूँ, तुम इस काबिल नहीं हो कि तुमसे मुहब्बत की जाये, मगर मैं यह सब कुछ जानते-बूझते हुए भी तुमसे मुहब्बत करता हूँ...लानत हो मुझ पर, लेकिन छोड़ो इन बातों को और मेरी तरफ़ देखो...मैं बुख़ार के अलावा तुम्हारी मुहब्बत में भी फुँका जा रहा हूँ...फातो, फातो...मैं, मैं...” उसके ख़यालात का सिलसिला टूट गया और उस पर उन्माद की स्थिति छा गयी, और उसने डॉक्टर मुकंद लाल भाटिया से कुनेन के नुक़सानात पर बहस शुरू कर दी।

चन्द लम्हात के बाद वह अपनी माँ से, जो वहाँ मौजूद नहीं थी, मुख़ातिब हुआ, “बीबी जी, मेरे दिमाग़ में बेशुमार ख़यालात आ रहे हैं...आप हैरान क्यों होती हैं...मुझे फातो से मुहब्बत है, उसी फातो से, जो हमारे पड़ोस में नेचा-बंदो के यहाँ मुलाज़िम थी और जो

अब आपकी मुलाज़िम है...आप नहीं जानतीं, इस लड़की ने मुझे कितना ज़लील करा दिया है...यह मुहब्बत नहीं, खसरा है। नहीं खसरे से भी बढ़-चढ़कर...इसका कोई इलाज नहीं...मुझे तमाम ज़िल्लतें बर्दाश्त करनी होंगी...सारी गली का कूड़ा-करकट अपने सर पर उठाना होगा...यह सब कुछ हो के रहेगा...यह सब कुछ हो के रहेगा...”

आहिस्ता-आहिस्ता उसकी आवाज़ कमज़ोर होती गयी और उस पर नींद छा गयी। उसकी आँखें बोझल थीं। ऐसा लगता था कि उसकी पलकों पर बोझ-सा आन पड़ा है।

फातो पलँग के पास फ़र्श पर बैठी उसकी बेजोड़ विचित्र गुफ़्तुगू सुनती रही, मगर उस पर कुछ असर न हुआ—वह ऐसे बीमारों की कई मर्तबा तीमारदारी कर चुकी थी।

बुख़ार की हालत में जब उसने अपनी मुहब्बत का एतिराफ़ (स्वीकार) किया तो फातो ने महसूस किया, उस एतिराफ़ के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता, इसलिए कि उसका मांसल चेहरा जज़्बात से बिल्कुल खाली था, मुमकिन है, उसके दिल के किसी कोने में हल्की-सी सरसराहट पैदा हुई हो, मगर वह चर्बी की तहों से निकलकर बाहर नहीं आ सकी है।

फातो ने रूमाल निचोड़कर ताज़े पानी में भिगोया और उसके माथे पर रखने के लिए उठी—अबकी बार फातो को इसलिए उठना पड़ा कि उसने करवट बदल ली थी—जब फातो ने आहिस्ता से, ज़रा उधर से मुड़कर उसके माथे पर गीला रूमाल जमाया तो उसकी बोझिल आँखें यूँ खुल गयीं, जैसे लाल-लाल ज़ख़्मों के मुँह टाँके उधड़ जाने पर खुल जाते हैं।

उसने एक लम्हे के लिए फातो के झुके हुए चेहरे की तरफ़ देखा—फातो के गाल थोड़े-से नीचे को झुक आये थे—एकदम जाने उस पर क्या वहशत सवार हुई कि उसने फातो को अपनी दोनों बाज़ुओं में जकड़कर इस ज़ोर से अपनी छाती के साथ भींचा कि फातो की रीढ़ की हड्डी कड़-कड़ बोल उठी। फिर उसने फातो को अपनी रान पर लिटाकर उसके मोटे और गुदगुदे होंठों पर इस ज़ोर से अपने तपते हुए होंठ रख दिये, जैसे वह उन्हें दाग़ना चाहता हो।

उसकी गिरफ़्त इस क़दर ज़बर्दस्त थी कि फातो कोशिश करने के बावजूद ख़ुद को आज़ाद न करा सकी।

उसके होंठ देर तक फातो के होंठों पर इस्तिरी करते रहे—फिर अचानक उसने फातो को एक झटके से अलग कर दिया, और उठकर बिस्तर में यूँ बैठ गया, जैसे उसने कोई बड़ा डरावना ख़्वाब देखा हो।

फातो एक तरफ़ सिमट गयी।

वह सहम गयी थी—वह महसूस कर रही थी, जैसे उसके लबों पर अभी तक उसके पपड़ी जमे होंठ सरक रहे हैं।

जब फातो ने कनखियों से उसकी तरफ़ देखा तो वह उस पर बरस पड़ा, “तुम यहाँ क्या कर रही हो...तुम भूतनी हो...डायन हो...मेरा कलेजा निकालकर चबाना चाहती हो...जाओ, जाओ...” यह कहते-कहते उसने अपने वज़नी सर को दोनों हाथों में थाम लिया, जैसे उसका सर गिर पड़ेगा, और हौले-हौले बड़बड़ाने लगा, “फातो, मुझे माफ़ कर दो...मुझे

कुछ मालूम नहीं कि मैं क्या कह रहा हूँ...मैं बस एक बात अच्छी तरह जानता हूँ कि मुझे दीवानगी की हद तक तुमसे मुहब्बत है, इसलिए कि तुमसे मुहब्बत की जाये...मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ, इसलिए कि तुम नफ़रत के क़ाबिल हो...तुम औरत नहीं हो, एक पूरा मकान हो...एक बहुत बड़ी बिल्डिंग हो...मुझे तुम्हारे सब कमरों से मुहब्बत है, इसलिए कि वे गंदे हैं, जर्जर हैं...क्या यह अजीब बात नहीं..."

फातो ख़ामोश रही। उस पर अभी तक उस बलिष्ठ गिरफ़्त और उसके ख़ौफ़नाक चुंबन का असर मौजूद था—वह उठकर कमरे से बाहर जाने का इरादा कर ही रही थी कि उसने फिर उन्माद की स्थिति में बड़बड़ाना शुरू कर दिया—फातो ने उसकी तरफ़ देखा—वह जैसे किसी अदृश्य आदमी से बातें कर रहा था।

बिस्तर पर उसने बड़ी मुश्किल से करवट बदली, फातो को अपनी सुर्ख़-सुर्ख़ आँखों से देखा और पूछा, "क्या कह रही हो तुम?"

फातो ने कुछ भी नहीं कहा था, इसलिए वह ख़ामोश रही।

फातो की ख़ामोशी से उसे ख़याल आया कि वह उन्माद की स्थिति में बेशुमार बातें कर चुका है—जब उसको इस बात का एहसास हुआ कि वह अपनी मुहब्बत का इज़हार भी उससे कर चुका है तो उसे अपने आप पर बेहद गुस्सा आया—इसी गुस्से में वह फातो से मुख़ातिब हुआ, "मैंने तुमसे जो कुछ कहा था, वह बिल्कुल ग़लत है...मुझे तुमसे नफ़रत है।"

फातो ने सिर्फ़ इतना कहा, "जो ठीक होगा।"

वह कड़का, "सिर्फ़ ठीक ही नहीं, सौ फ़ीसदी हक़ीक़त है...मुझे तुमसे सख़्त नफ़रत है...जाओ, चली जाओ मेरे कमरे से...ख़बरदार जो कभी इधर का रुख़ किया।"

वह जाने लगी तो उसने रोक लिया, "ठहरो...एक बात सुनती जाओ।"

"फ़रमाइये।"

"नहीं, मुझे कुछ नहीं कहना है...तुम जा सकती हो।"

फातो ने कहा, "मैं जा तो रही थी...आपने ख़ुद मुझे रोका है।" यह कहकर उसने बर्तन उठाये और कमरे से निकलने लगी, मगर उसने फिर उसे आवाज़ देकर रोका।

वह रुकी तो उसने कहा, "मैं एक बात तुमसे कहना भूल गया हूँ।"

फातो ने बर्तन तिपाई पर रखे और उससे कहा, "क्या बात है...बता दीजिये...मुझे और बहुत-से काम भी करने हैं।"

वह सोचने लगा कि उसने फातो को रोका क्यों था। उसे फातो से ऐसी कौन-सी अहम बात करनी थी—वह यह सोच ही रहा था कि फातो ने उससे कहा, "मियाँ साहब, मैं खड़ी इंतिज़ार कर रही हूँ...आपको मुझसे क्या कहना है?"

वह बौखला गया, "मुझे क्या कहना था...कुछ भी तो नहीं कहना था...मेरा मतलब है, कहना तो कुछ था, मगर मैं भूल गया हूँ।"

"अच्छा आप याद कर लीजिये...मैं यहाँ खड़ी हूँ।"

उसने आँखें बन्द कर लीं और याद करने लगा कि उसे फातो से क्या कहना था—उसके दिमाग़ में बेशुमार ख़यालात थे। वह दरअसल यह कहना चाहता था कि फातो उसके

घर से चली जाये, इसलिए कि वह उससे इस क़दर नफ़रत करता है कि अब वह नफ़रत बेपनाह मुहब्बत में तब्दील हो गयी है।

उसने थोड़े अर्से के बाद आँखें खोलीं—फातो तिपाई के साथ लगी खड़ी थी। उसने समझा कि शायद यह सब ख़्वाब है, पर जब उसने इधर-उधर का जायज़ा लिया तो उसे मालूम हुआ कि ख़्वाब नहीं, हक़ीक़त है—लेकिन उसकी समझ में न आया कि फातो क्यों बुत की मानिंद तिपाई के साथ लगी खड़ी है।

उसने कहा, "तू यहाँ खड़ी क्या कर रही है?"

फातो ने जवाब दिया, "आप ही ने तो कहा था कि आपको मुझसे कोई ज़रूरी बात कहनी है।"

वह चिढ़ गया—झुँझलाकर बोला, "तुमसे मुझे कौन-सी ज़रूरी बात कहनी थी...जाओ...दूर हट जाओ मेरी नज़रों से।"

फातो ने चिन्ताभरी नज़रों से उसकी तरफ़ देखा, "ऐसा लगता है, आपका बुख़ार तेज़ हो गया है...मैं बीबी जी से कहती हूँ कि डॉक्टर को बुला लें।"

वह और ज़्यादा चिढ़ गया, "डॉक्टर आया तो मैं उसे गोली मार दूँगा...और तुम्हारा तो मैं इन हाथों से गला घोंट दूँगा।"

फातो ने अपने लहज़े को और ज़्यादा नर्म बनाकर कहा, "आप अभी घोंट डालिये...मैं अपनी ज़िन्दगी से उकता चुकी हूँ।"

उसने पूछा, "क्यों?"

"बस, अब जी नहीं चाहता ज़िन्दा रहने को...मियाँ साहब, आपको मालूम नहीं, मैं यह दिन कैसे गुज़ार रही हूँ...अल्लाह क़सम, एक-एक पल ज़हर का घूँट है...ख़ुदा के लिए आप मेरा गला घोंटकर मुझे मार दीजिये..."

वह लिहाफ़ के अन्दर काँपने लगा, "फातो, जाओ...मुझे तुमसे नफ़रत है।"

फातो ने बड़ी मासूमियत से कहा, "मैं जाने लगती हूँ, पर आप मुझे रोक लेते हैं।"

उसने भिन्नाकर कहा, "कौन हरामज़ादा तुझे रोकता है...जा, दूर हो जा।"

फातो जाने लगी तो उसने उसे फिर रोक लिया, "ठहरो।"

वह ठहर गयी, "फ़रमाइये।"

"तुम निहायत वाहियात औरत हो...ख़ुदा तुम्हें ग़ारत (बर्बाद) करे...जाओ अब मेरी नज़रों से ग़ायब हो जाओ।"

फातो बर्तन उठाकर चली गयी।

एक महीने के बाद मुहल्ले में शोर मचा कि फातो किसी के साथ भाग गयी है।

सब उसको बुरा-भला कह रहे थे—औरतें ख़ासतौर पर उसके किरदार में कीड़े डाल रही थीं। और फातो अपने मियाँ साहब के साथ कलकत्ते में वैवाहिक ज़िन्दगी बसर कर रही थी।

उसका शौहर हर रोज़ उससे कहता, "फ़ातिमा, मुझे तुमसे नफ़रत अगर न होती तो मेरी ज़िन्दगी कैसे सँवरती"..."आप मुझसे सारी उम्र नफ़रत ही करते रहिये..."

कर्ज़ की पीते थे

एक जगह महफिल जमी थी। मिर्ज़ा ग़ालिब वहाँ से उकता कर उठे। बाहर हवादार मौजूद था उसमें बैठे और अपने घर का रुख़ किया। हवादार से उतरकर जब दीवानख़ाने में दाख़िल हुए तो क्या देखते हैं कि मथुरादास महाजन बैठा है।

ग़ालिब ने अन्दर दाख़िल होते ही कहा, "ओहो! मथुरा दास। भई तुम आज बड़े वक़्त पर आये...मैं तुम्हें बुलवाने ही वाला था।"

मथुरा दास ने ठेठ महाजनों के अन्दाज़ में कहा, "हुजूर रुपयों को बहुत दिन हो गये। मात्र दो किस्त आपने भिजवाये थे...उसके बाद पाँच महीने हो गये। एक पैसा भी आपने न दिया।"

असद उल्ला खाँ 'ग़ालिब' मुस्कुराये, "भई, मथुरा दास देने को मैं सब दे दूँगा। गले-गले पानी दूँगा...दो-एक जायदाद अभी मेरी बाक़ी हैं।"

"अजी सरकार! इस तरह ब्योहार हो चुका। न असल में से न सूद में से पहला ही ढाई हज़ार वसूल नहीं हुआ। छः सौ छप्पन सूद के हो गये हैं।"

मिर्ज़ा ग़ालिब ने हुक्के की 'ने' पकड़कर एक कश लिया, "लाला, जिस पेड़ का फल खाना मंज़ूर होता है उसको पहले पानी देते हैं...मैं तुम्हारा दरख़्त हूँ पानी दो तो अनाज पैदा हो।"

मथुरा दास ने अपनी धोती की लाँग ठीक की, "जी दीवाली को बारह दिन बाकी रह गये हैं। खाता बन्द किया जायेगा। आप पहले रुपये का असल सूद मिला कर दस्तावेज़ बना दें तो आगे का नाम लें।"

'मिर्ज़ा ग़ालिब' ने हुक्के की 'ने' एक तरफ़ की, "लो, अभी दस्तावेज़ लिखे देता हूँ। पर शर्त यह है कि दो हज़ार अभी-अभी मुझे और दो।"

मथुरा दास ने थोड़ी देर ग़ौर किया, "अच्छा, मैं स्टांप मँगवाता हूँ...बही साथ लाया हूँ। आप मुंशी गुलाम रसूल अर्ज़ीनवीस को बुला लें। पर सूद वही सवा रुपया सैकड़ा होगा।"

"लाला कुछ तो इन्साफ़ करो। बारह आने सूद लिखवाये देता हूँ।"

मथुरा दास ने अपनी धोती की लाँग दूसरी बार दुरुस्त की, "सरकार बारह आने पर बारह बरस भी कोई महाजन क़र्ज़ नहीं देगा...आजकल तो खुद बादशाह सलामत को रुपये की ज़रूरत है।"

उन दिनों वाक़यी बहादुर शाह ज़फ़र की हालत बहुत नाज़ुक थी। उसको अपने खर्चों के लिए रुपये-पैसे की हर वक़्त ज़रूरत रहती थी।

बहादुर शाह तो ख़ैर बादशाह था। लेकिन मिर्ज़ा ग़ालिब महज़ शायर थे। लेकिन वह अपने शे'रों में अपना रिश्ता सिपाह-गरी (सैन्य सेवा) से जोड़ते थे।

यह मिर्ज़ा ग़ालिब की ज़िन्दगी के चालीसवें और पैंतालीसवें साल के दरमियानी अर्से की बात है जब मथुरा दास महाजन ने उन पर कर्ज़े की अदायगी न करने के कारण अदालत-ए-दीवानी में दावा दायर किया...मुक़दमे की सुनवाई मिर्ज़ा साहब के करीबी दोस्त मुफ़्ती सदर उद्दीन आज़रदा को करनी थी। जो खुद बहुत अच्छे शायर और 'ग़ालिब' के प्रशंसक थे।

मुफ़्ती साहब के अर्दली ने अदालत के कमरे से बाहर निकलकर आवाज़ दी, "लाला मथुरादास महाजन मुद्दअयी और मिर्ज़ा असद उल्ला खाँ ग़ालिब मुद्दआ अलैह हाज़िर है?"

मथुरा दास ने 'मिर्ज़ा ग़ालिब' की तरफ़ देखा और अर्दली से कहा, "भई दोनों हाज़िर हैं।"

अर्दली ने रूखेपन से कहा, "तो दोनों हाज़िर-ए-अदालत हों।"

मिर्ज़ा ग़ालिब ने अदालत में हाज़िर होकर मुफ़्ती सदर उद्दीन आज़रदा को सलाम किया...मुफ़्ती साहब मुस्कुराये।

"मिर्ज़ा नौशा, यह आप इस क़दर क़र्ज़ क्यों लिया करते हैं...आख़िर यह मामला क्या है?"

ग़ालिब ने थोड़े विराम के बाद कहा, "क्या अर्ज़ करूँ...मेरी समझ में भी कुछ नहीं आता।"

मुफ़्ती सदर उद्दीन मुस्कुराये, "कुछ तो है, जिसकी पर्दादारी है।"

ग़ालिब ने स्वतःस्फूर्त कहा, "एक शे'र मौजूँ हो गया है मुफ़्ती साहब...हुक्म हो तो जवाब में अर्ज़ करूँ।"

"फ़रमाइये।"

ग़ालिब ने मुफ़्ती साहब और मथुरा दास महाजन को एक लहज़े (क्षण) के लिए देखा और अपने ख़ास अन्दाज़ में यह शे'र पढ़ा।

> क़र्ज़ की पीते थे मय, लेकिन समझते थे कि हाँ
> रंग लाएगी हमारी फाक़ामस्ती, एक दिन

मुफ़्ती साहब अनायास हँस पड़े। "खूब, खूब...क्यों साहब! रस्सी जल गयी, पर बल न गया...आपके इस शे'र की मैं तो ज़रूर दाद दूँगा। मगर चूँकि आपको असल और सूद, सबसे इक़रार है अदालत मुद्दअयी के हक़ में फ़ैसला दिये बग़ैर नहीं रह सकती।"

मिर्ज़ा ग़ालिब ने बड़ी संजीदगी से कहा, "मुद्दअयी सच्चा है, तो क्यों फ़ैसला उसके हक़ में न हो और मैंने भी सच्ची बात गद्य में न कही, नज़्म में कह दी।"

मुफ़्ती सदर उद्दीन आज़रदा ने काग़ज़ात-ए-कानून एक तरफ़ रखे और मिर्ज़ा ग़ालिब से सम्बोधित हुए, "अच्छा तो उधार ली गयी राशि मैं अदा कर दूँगा कि हमारी आप की दोस्ती की लाज रह जाये।"

मिर्ज़ा ग़ालिब बड़े खुद्दार थे। उन्होंने मुफ़्ती साहब से कहा, "हुजूर, ऐसा नहीं

होगा...मुझे मथुरा दास का रुपया देना है। मैं बहुत जल्द अदा कर दूँगा।"

मुफ़्ती साहब मुस्कुराये, "हज़रत, रुपये की अदायगी शायरी नहीं...आप तकल्लुफ़ को एक तरफ़ रखिये...मैं आपका प्रशंसक हूँ...मुझे आज मौका दीजिये कि आपकी कोई ख़िदमत कर सकूँ।"

ग़ालिब बहुत झेंपे, "लाहौल वला...आप मेरे बुज़ुर्ग हैं...मुझे कोई सज़ा दे दीजिये कि आप न्यायविद् हैं।"

"देखो, तुम ऐसी बातें मत करो..."

"तो और कैसी बातें करूँ।"

"कोई शे'र सुनाइये।"

"सोचता हूँ...हाँ, एक शे'र रात को हो गया था...अर्ज़ किये देता हूँ..."

"फ़रमाइये।"

"हम और वह सबब रंज-ए-आशना दुश्मन"

मुफ़्ती साहब ने अपने कानूनी कलम से कानूनी काग़ज पर ये अक्षर लिखे...'हम और वह बे सबब रंज-ए-आशना दुश्मन कि रखता है।'

मुफ़्ती साहब बहुत आनन्दित हुए। यह शे'र आसानी से समझ में आ सकने वाला नहीं। लेकिन वह चूँकि खुद बहुत बड़े शायर थे इसलिए 'ग़ालिब' की सारगर्भिता को फ़ौरन समझ गये।

मुक़दमे की बाक़ायदा सुनवाई हुई। मुफ़्ती सदर उद्दीन आज़रदा ने मिर्ज़ा ग़ालिब से कहा, "आप आयन्दा क़र्ज़ की न पिया करें।"

'ग़ालिब' जो शायद किसी शे'र की फ़िक्र कर रहे थे कहा, "एक शे'र हो गया है अगर आप इजाज़त दें तो अर्ज़ करूँ।"

मुफ़्ती साहब ने कहा, "फ़रमाइये...फ़रमाइये।"

मिर्ज़ा ग़ालिब ने थोड़े विराम के बाद एक शे'र सुनाया।

मिर्ज़ा ग़ालिब कुछ देर ख़ामोश रहे। शायद उनको इस बात से बहुत कोफ़्त हुई थी कि मुफ़्ती साहब उन पर एक एहसान कर रहे हैं।

मुफ़्ती साहब ने उनसे पूछा, "हज़रत आप ख़ामोश क्यों हो गये?"

"जी कोई खास बात नहीं है, कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ वरना क्या बात करनी नहीं आती।"

"आपको बातें करना तो माशा अल्लाह आती हैं।"

'ग़ालिब' ने जवाब दिया, "जी हाँ...लेकिन बनानी नहीं आती।"

मुफ़्ती सदर उद्दीन मुस्कुराये, "अब आप जा सकते हैं...उधार ली गई राशि मैं अदा कर दूँगा।"

मिर्ज़ा ग़ालिब ने मुफ़्ती साहब का शुक्रिया अदा किया, "आज आपने दोस्ती के रिश्ते पर मुहर लगा दी...जब तक ज़िन्दा हूँ बन्दा हूँ।"

मुफ़्ती सदर उद्दीन आज़रदा ने उनसे कहा, "अब आप तशरीफ़ ले जाइये...

पर ख़याल रहे कि रोज़-रोज़ उधार ली गई राशि मैं अदा नहीं कर सकता। आइन्दा सतर्क रहें।”

मिर्ज़ा ग़ालिब थोड़ी देर के लिए सोच में डूब गये।

मुफ़्ती साहब ने उनसे पूछा, “क्या सोच रहे हैं आप?”

मिर्ज़ा ग़ालिब चौंक कर बोले, “जी, मैं कुछ भी नहीं सोच रहा था...शायद कुछ सोचने की कोशिश कर रहा था—

मौत का एक दिन मुअय्यन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती”

मुफ़्ती साहब ने उनसे पूछा, “क्या आपको रात भर नींद नहीं आती?”

मिर्ज़ा ग़ालिब ने मुस्कुराकर कहा, “किसी खुशनसीब ही को आती होगी।”

मुफ़्ती साहब ने कहा, “आप शायरी छोड़िये...बस आयन्दा एहतियात रहे।”

मिर्ज़ा ग़ालिब अपने अंगरखे की शिकनें दुरुस्त करते हुए बोले, “आपकी नसीहत पर चलकर साबित कदम रहने की ख़ुदा से दुआ करूँगा...मुफ़्ती साहब! मुफ़्त-मुफ़्त की ज़हमत आपको हुई। नक़दन सिवाये ‘शुक्र है’ के और क्या अदा कर सकता हूँ। ख़ैर खुदा आपको दस गुना दुनिया में और सत्तर गुना परलोक में देगा।”

यह सुनकर मुफ़्ती सदर उद्दीन आज़रदा ज़ेर-ए-लब मुस्कुराये, “आख़िरत वाले में तो आपको शरीक करना मुहाल है...दुनिया के दस गुने में भी आपको एक कौड़ी नहीं दूँगा कि आप मदिरा-पान कीजिये।”

मिर्ज़ा ग़ालिब हँसे...मदिरा-पान कैसा, मुफ़्ती साहब!

मय से ग़र्ज़-ए-निशात है किस रू स्याह को
इक गु न बेखुदी मुझे दिन रात चाहिए

और यह शे’र सुनाकर ‘मिर्ज़ा ग़ालिब’ अदालत के कमरे से बाहर चले गये।

बादशाहत का ख़ात्मा

टेलीफ़ोन की घंटी बजी। मनमोहन पास ही बैठा था। उसने रिसीवर उठाया और कहा, “हैलो...फ़ोर-फ़ोर-फ़ोर फ़ाइव सेवेन।”

दूसरी तरफ़ से पतली-सी ज़नाना आवाज़ आयी, “सॉरी...रॉंग नम्बर।”

मनमोहन ने रिसीवर रख दिया और किताब पढ़ने में मशगूल हो गया।

यह किताब वह तकरीबन बीस मर्तबा पढ़ चुका था। इसलिए नहीं कि उसमें कोई ख़ास बात थी। दफ़्तर में जो वीरान पड़ा था। एक सिर्फ़ यही किताब थी जिसके आख़िरी पृष्ठ नहीं थे।

एक हफ़्ते से दफ़्तर मनमोहन के अधीन था। क्योंकि उसका मालिक जो कि उसका दोस्त था। कुछ रुपया कर्ज़ लेने के लिए कहीं बाहर गया हुआ था। मनमोहन के पास चूँकि रहने के लिए कोई जगह नहीं थी, इसलिए फुटपाथ से आरज़ी तौर पर वह इस दफ़्तर में आ गया था। और उस एक हफ़्ते में वह दफ़्तर की इकलौती किताब तकरीबन बीस मर्तबा पढ़ चुका था।

दफ़्तर में वह अकेला पड़ा रहता। नौकरी से उसे नफ़रत थी। अगर वह चाहता तो किसी भी फ़िल्म कम्पनी में बतौर फ़िल्म डायरेक्टर के मुलाज़िम हो सकता था। मगर वह गुलामी नहीं चाहता था। निहायत ही उन्मुक्त और मुख़लिस (निष्ठावान) आदमी था। इसलिए दोस्त-यार उसके रोज़ाना खर्च का बन्दोबस्त कर देते थे। यह ख़र्चे बहुत ही कम थे। सुबह को चाय की प्याली और दो तोस। दोपहर को दो फुल्के और थोड़ा-सा सालन। सारे दिन में एक पैकेट सिगरेट और बस।

मनमोहन का कोई अज़ीज़ या रिश्तेदार नहीं था। बेहद ख़ामोशी पसन्द था। मेहनती था। कई-कई दिन फाके से रह सकता था। इसके बारे में उसके दोस्त और तो कुछ नहीं लेकिन इतना जानते थे कि वह बचपन ही से घर छोड़-छाड़ के निकल आया था। और एक मुद्दत से बम्बई के फुटपाथों पर आबाद था। ज़िन्दगी में उसको सिर्फ़ एक चीज़ की हसरत थी औरत की मुहब्बत की। वह कहा करता था, “अगर मुझे किसी औरत की मुहब्बत मिल गयी तो मेरी सारी ज़िन्दगी बदल जायेगी।”

दोस्त उससे कहते, “तुम काम फिर भी न करोगे।”

मनमोहन आह भर कर जवाब देता, “काम?...मैं साक्षात काम बन जाऊँगा।”

दोस्त उससे कहते, “तो शुरू कर दो किसी से इश्क़।”

मनमोहन जवाब देता, “नहीं...मैं ऐसे इश्क़ का क़ायल नहीं जो मर्द की तरफ़ से शुरू

हो।”

दोपहर के खाने का वक़्त करीब आ रहा था। मनमोहन ने सामने दीवार पर क्लॉक की तरफ़ देखा। टेलीफ़ोन की घंटी बजनी शुरू हुई। उसने रिसीवर उठाया और कहा, “हैलो...फ़ोर, फ़ोर, फ़ोर फ़ाइव सेवेन।”

दूसरी तरफ़ से पतली सी आवाज़ आयी, “फ़ोर, फ़ोर, फ़ोर, फ़ाइव सेवेन?”

मनमोहन ने जवाब दिया, “जी हाँ।”

जनाना आवाज़ ने सवाल पूछा, “आप कौन हैं?”

“मैं मनमोहन।... फ़रमाइये!”

दूसरी तरफ़ से आवाज़ न आयी तो मनमोहन ने कहा, “फ़रमाइये किससे बात करना चाहती हैं आप?”

आवाज़ ने जवाब दिया, “आपसे।”

मनमोहन ने ज़रा हैरत से पूछा, “मुझसे?” “जी हाँ...आपसे...क्या आपको कोई एतराज़ है।”

मनमोहन सटपटा-सा गया, “जी?...जी नहीं।”

आवाज़ मुस्कुरायी, “आपने अपना नाम मदन मोहन बताया था।”

“जी नहीं...मनमोहन।”

“मनमोहन।”

चन्द लम्हात ख़ामोशी में गुज़र गये तो मनमोहन ने कहा, “आप बातें करना चाहती थीं मुझसे?”

आवाज़ आयी, “जी हाँ।”

“तो कीजिये।”

थोड़े विराम के बाद आवाज़ आयी, “समझ में नहीं आता क्या बात करूँ...आप ही शुरू कीजिये न कोई बात।”

“बहुत बेहतर,” यह कहकर मनमोहन ने थोड़ी देर सोचा, ‘नाम अपना बता चुका हूँ। आरज़ी तौर पर ठिकाना मेरा यह दफ़्तर है...पहले फ़ुटपाथ पर सोता था। अब एक हफ़्ते से इस दफ़्तर की बड़ी मेज़ पर सोता हूँ।’

आवाज़ मुस्कुरायी, “फ़ुटपाथ पर आप मसहरी लगाकर सोते थे?”

मनमोहन हँसा, “इससे पहले कि मैं आपसे और गुफ़्तगू करूँ, मैं ये बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैंने कभी झूठ नहीं बोला। फ़ुटपाथों पर सोते मुझे एक ज़माना हो गया है। यह दफ़्तर तकरीबन एक हफ़्ते से मेरे कब्ज़े में है। आजकल ऐश कर रहा हूँ।”

आवाज़ मुस्कुरायी, “कैसे ऐश?”

मनमोहन ने जवाब दिया, “एक किताब मिल गयी थी यहाँ से...आख़िरी पृष्ठ गुम हैं, लेकिन इसे बीस मर्तबा पढ़ चुका हूँ...पूरी किताब कभी हाथ लगी तो मालूम होगा हीरो-हीरोइन के इश्क़ का अंज़ाम क्या हुआ।”

आवाज़ हँसी, “आप बड़े दिलचस्प आदमी हैं।”

मनमोहन ने तकल्लुफ़ से कहा, “आपकी कृपा है।”
आवाज़ ने थोड़े विराम के बाद पूछा, “आपकी व्यस्तता क्या है?”
“व्यस्तता।”
“मेरा मतलब है आप करते क्या हैं?”
“क्या करता हूँ?...कुछ भी नहीं। एक बेकार इन्सान क्या कर सकता है। सारा दिन आवारागर्दी करता है। रात को सो जाता हूँ।”
आवाज़ ने पूछा, “यह ज़िन्दगी आपको अच्छी लगती है।”
मनमोहन सोचने लगा, “ठहरिये...बात दरअसल यह है कि मैंने इस पर कभी ग़ौर ही नहीं किया। अब आपने पूछा है तो मैं अपने आपसे पूछ रहा हूँ कि यह ज़िन्दगी तुम्हें अच्छी लगती है या नहीं?”
“कोई जवाब मिला?”
थोड़े वक़्त के बाद मनमोहन ने जवाब दिया, “जी नहीं...लेकिन मेरा ख़याल है कि ऐसी ज़िन्दगी मुझे अच्छी लगती ही होगी। जबकि एक अर्से से बसर कर रहा हूँ।”
आवाज़ हँसी। मनमोहन ने कहा, “आपकी हँसी बड़ी सुरीली है।”
आवाज़ शरमा गयी, “शुक्रिया।” और सिलसिला-ए-गुफ़्तगू ख़त्म कर दिया।
मनमोहन थोड़ी देर रिसीवर हाथ में लिये खड़ा रहा। फिर मुस्कुराकर उसे रख दिया और दफ़्तर बन्द करके चला गया।
दूसरे रोज़ सुबह आठ बजे जबकि मनमोहन दफ़्तर की बड़ी मेज़ पर सो रहा था। टेलीफ़ोन की घंटी बजनी शुरू हुई। जम्हाई लेते हुए उसने रिसीवर उठाया और कहा, “हैलो फ़ोर, फ़ोर, फ़ोर फ़ाइव सेवेन।”
दूसरी तरफ़ से आवाज़ आयी, “आदाब अर्ज़ मनमोहन साहब!”
“आदाब अर्ज़!” मनमोहन एकदम चौंका, “आह, आप...आदाब अर्ज़”
“तसलीमात!”
आवाज़ आयी, “आप ग़ालिबन (सम्भवतः) सो रहे थे?”
“जी हाँ...यहाँ आकर मेरी आदत कुछ बिगड़ रही है। वापस फ़ुटपाथ पर गया तो बड़ी मुसीबत हो जायेगी।”
आवाज़ मुस्कुरायी, “क्यों?”
“वहाँ सुबह पाँच बजे से पहले-पहले उठना पड़ता है।”
आवाज़ हँसी। मनमोहन ने पूछा, “कल आपने एकदम टेलीफ़ोन बन्द कर दिया।”
आवाज़ शरमायी, “आपने मेरी हँसी की तारीफ़ क्यों की थी?”
मनमोहन ने कहा, “लो साहब, ये भी अजीब बात कही आपने...कोई चीज़ ख़ूबसूरत हो तो उसकी तारीफ़ नहीं करनी चाहिए?”
“बिल्कुल नहीं।”
“यह शर्त आप मुझ पर लागू नहीं कर सकतीं...मैंने आज तक कोई शर्त अपने ऊपर लागू नहीं होने दी। आप हँसेंगी तो मैं ज़रूर तारीफ़ करूँगा।”

"मैं टेलीफ़ोन बन्द कर दूँगी।"

"बड़े शौक़ से।"

"आपको मेरी नाराज़गी का कोई ख़याल नहीं।"

"मैं सबसे पहले अपने आपको नाराज़ नहीं करना चाहता...अगर मैं आपकी हँसी की तारीफ़ न करूँ तो मेरी अभिरुचि मुझसे नाराज़ हो जायेगी...यह अभिरुचि मुझे बहुत अज़ीज़ है।"

थोड़ी देर ख़ामोशी रही। इसके बाद दूसरी तरफ़ से आवाज़ आयी, "माफ़ कीजियेगा। मैं मुलाज़िम से कुछ कह रही थी...आपकी अभिरुचि आपको बहुत अज़ीज़। ...हाँ यह तो बताइये आपको शौक़ किस चीज़ का है?"

"क्या मतलब?"

"यानी...कोई शग़ल...कोई काम...मेरा मतलब है आपको आता क्या है?"

मनमोहन हँसा, "कोई काम नहीं आता...फ़ोटोग्राफ़ी का थोड़ा-सा शौक़ है।"

"बहुत अच्छा शौक़ है।"

"इसकी अच्छाई या बुराई का मैंने कभी नहीं सोचा।"

आवाज़ ने पूछा, "कैमरा तो आपके पास बहुत अच्छा होगा?"

मनमोहन हँसा, "मेरे पास अपना कोई कैमरा नहीं। दोस्तों से माँगकर शौक़ पूरा कर लेता हूँ। अगर मैंने कभी कुछ कमाया तो एक कैमरा मेरी नज़र में है। वह ख़रीदूँगा।"

आवाज़ ने पूछा, "कौन-सा कैमरा?"

मनमोहन ने जवाब दिया, "एग्ज़क्टा रिफ़लैक्स कैमरा है। मुझे बहुत पसन्द है।"

थोड़ी देर ख़ामोशी रही। इसके बाद आवाज़ आयी, "मैं कुछ सोच रही थी।"

"क्या?"

"आपने मेरा नाम पूछा, न टेलीफ़ोन नम्बर पूछा।"

"मुझे इसकी ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई?"

"क्यों?"

"नाम आपका कुछ भी हो क्या फ़र्क पड़ता है...आपको मेरा नम्बर मालूम है। बस ठीक है...आप अगर चाहेंगी कि मैं आपको टेलीफ़ोन करूँ तो नाम और नम्बर बता दीजियेगा।"

"मैं नहीं बताऊँगी।"

"लो साहब, यह भी ख़ूब रहा...मैं जब आपसे पूछूँगा ही नहीं तो बताने न बताने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है।"

आवाज़ मुस्कुरायी, "आप अजीब-ओ-ग़रीब आदमी हैं।"

मनमोहन मुस्कुराया, "जी हाँ कुछ ऐसा ही आदमी हूँ।"

चन्द सेकेंड ख़ामोशी रही, "आप फिर सोचने लगीं।"

"जी हाँ, कोई और बात इस वक़्त सोच नहीं रही थी।"

"तो टेलीफ़ोन बन्द कर दीजिये...फिर सही।"

आवाज़ किसी क़दर तीखी हो गयी, “आप बहुत रूखे आदमी हैं...टेलीफ़ोन बन्द कर दीजिये। लीजिये मैं बन्द करती हूँ।”

मनमोहन ने रिसीवर रख दिया और मुस्कुराने लगा।

आधे घंटे के बाद जब मनमोहन मुँह-हाथ धोकर कपड़े पहनकर बाहर निकलने के लिए तैयार हुआ तो टेलीफ़ोन की घंटी बजी। उसने रिसीवर उठाया और कहा, “फ़ोर, फ़ोर, फ़ोर फ़ाइव सेवेन।”

आवाज़ आयी, “मिस्टर मनमोहन?”

मनमोहन ने ज़वाब दिया, “जी हाँ मनमोहन। इरशाद?”

आवाज़ मुस्कुरायी, “इरशाद यह है कि मेरी नाराज़गी दूर हो गयी है।”

मनमोहन ने बड़ी प्रसन्नता से कहा, “मुझे बड़ी खुशी हुई है।”

“नाश्ता करते हुए मुझे ख़याल आया कि आपके साथ बिगाड़नी नहीं चाहिए... हाँ आपने नाश्ता कर लिया।”

“जी नहीं बाहर निकलने ही वाला था कि आपने टेलीफ़ोन किया।”

“ओह...तो आप जाइये।”

“जी नहीं। मुझे कोई जल्दी नहीं। मेरे पास आज पैसे नहीं हैं। इसलिए मेरा ख़याल है कि आज नाश्ता नहीं होगा।”

“आपकी बातें सुनकर...आप ऐसी बातें क्यों करते हैं...मेरा मतलब है ऐसी बातें आप इसलिए करते हैं कि आपको दुख होता है?”

मनमोहन ने एक लम्हा सोचा, “जी नहीं...मेरा अगर कोई दुख-दर्द है तो मैं उसका आदी हो चुका हूँ।”

आवाज़ ने पूछा, “मैं कुछ रुपये आपको भेज दूँ।”

मनमोहन ने जवाब दिया, “भेज दीजिये। मेरे कर्जदाताओं में एक आपका भी इज़ाफ़ा हो जायेगा?”

“नहीं, मैं नहीं भेजूँगी।”

“आपकी मर्ज़ी।”

“मैं टेलीफ़ोन बन्द करती हूँ।”

“बेहतर।”

मनमोहन ने रिसीवर रख दिया और मुस्कुराता हुआ दफ़्तर से निकल गया। रात को दस बजे के करीब वापस आया और कपड़े बदलकर मेज़ पर लेटकर सोचने लगा कि यह कौन है जो उसे फ़ोन करती है, आवाज़ से सिर्फ़ इतना पता चलता था कि जवान है। हँसी बहुत मधुर थी। गुफ़्तगू से यह साफ़ ज़ाहिर है कि शिक्षित और सभ्य है। बहुत देर तक वह उसके बारे में सोचता रहा। इधर क्लॉक ने ग्यारह बजाये, उधर टेलीफ़ोन की घंटी बजी। मनमोहन ने रिसीवर उठाया, “हैलो”।

दूसरी तरफ़ से वही आवाज़ आयी, “मिस्टर मनमोहन”

“जी हाँ...मनमोहन...इरशाद”

“इरशाद यह है कि मैंने आज दिन में कई मर्तबा रिंग किया। आप कहाँ ग़ायब थे?”

“साहब बेकार हूँ, लेकिन फिर भी काम पर जाता हूँ।”

“किस काम पर?”

“आवारागर्दी”

“वापस कब आये?”

“दस बजे”

“अब क्या कर रहे थे?”

“मेज़ पर लेटा आपकी आवाज़ से आपकी तस्वीर बना रहा था।”

“बनी?”

“जी नहीं”

“बनाने की कोशिश न कीजिये...मैं बड़ी बदसूरत हूँ।”

“माफ़ कीजियेगा, अगर आप वाक़ई बदसूरत हैं तो टेलीफ़ोन बन्द कर दीजिये, बदसूरती से मुझे नफ़रत है।”

आवाज़ मुस्कुरायी, “ऐसा है तो चलिये मैं ख़ूबसूरत हूँ। मैं आपके दिल में नफ़रत नहीं पैदा करना चाहती।”

थोड़ी देर ख़ामोशी रही मनमोहन ने पूछा, “कुछ सोचने लगीं?”

आवाज़ चौंकी, “जी नहीं...मैं आपसे पूछने वाली थी कि...”

“सोच लीजिये अच्छी तरह”

आवाज़ हँस पड़ी, “आपको गाना सुनाऊँ?”

“ज़रूर”

“ठहरिये”

गला साफ़ करने की आवाज़ आयी। फिर ‘ग़ालिब’ की यह ग़ज़ल शुरू हुई

नुक्तह चीं है ग़म-ए-दिल...

सहगल वाली नयी धुन थी। आवाज़ में दर्द और निष्ठा भाव था। जब ग़ज़ल ख़त्म हुई तो मनमोहन ने दाद दी, “बहुत ख़ूब...ज़िन्दा रहो।”

आवाज़ शरमा गयी, “शुक्रिया” और टेलीफ़ोन बन्द कर दिया।

दफ़्तर की बड़ी मेज़ पर मनमोहन के दिल-ए-दिमाग़ में सारी रात ग़ालिब की ग़ज़ल गूँजती रही। सुबह जल्दी उठा और टेलीफ़ोन का इन्तज़ार करने लगा। तक़रीबन ढाई घंटे कुर्सी पर बैठा रहा मगर टेलीफ़ोन की घंटी न बजी। जब मायूस हो गया तो एक अजीब-सी तल्ख़ी उसने अपने हलक़ में महसूस की। उठकर टहलने लगा। इसके बाद मेज़ पर लेट गया और कुढ़ने लगा। वही किताब जिसको वह कई बार पढ़ चुका था उठायी और पन्ने उलटने शुरू कर दिये। यूँ ही लेटे-लेटे शाम हो गयी। तक़रीबन सात बजे टेलीफ़ोन की घंटी बजी। मनमोहन ने रिसीवर उठाया और तेज़ी से पूछा, “कौन है?”

वही आवाज़ आयी, “मैं।”

मनमोहन का लहज़ा तेज़ रहा, “इतनी देर तुम कहाँ थीं?”

आवाज़ लरज़ी, “क्यों?”

“मैं सुबह से यहाँ झक मार रहा हूँ...नाश्ता किया है न दोपहर का खाना खाया है हालाँकि मेरे पास पैसे मौजूद थे।”

आवाज़ आयी, “मेरी जब मर्ज़ी होगी टेलीफ़ोन करूँगी...आप...”

मनमोहन ने बात काटकर कहा, “देखो जी यह सिलसिला बन्द करो। टेलीफ़ोन करना है तो एक वक़्त मुक़र्रर करो। मुझसे इन्तज़ार बर्दाश्त नहीं होता।”

आवाज़ मुस्कुरायी, “आज की माफ़ी चाहती हूँ। कल से बाक़ायदा सुबह और शाम फ़ोन आया करेगा आपको।”

“यह ठीक है!”

आवाज़ हँसी, “मुझे मालूम नहीं था आप इस क़दर बिगड़े दिल हैं।”

मनमोहन मुस्कुराया, “माफ़ करना। इन्तज़ार से मुझे बहुत कोफ़्त होती है और जब मुझे किसी बात से कोफ़्त होती है तो अपने आपको सज़ा देना शुरू कर देता हूँ।”

“वह कैसे?”

“सुबह तुम्हारा टेलीफ़ोन न आया...चाहिए तो यह था कि मैं चला जाता...लेकिन बैठा दिन भर अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ता रहा। बचपना है साफ़।”

आवाज़ हमदर्दी में डूब गयी, “काश मुझसे यह ग़लती न होती...मैंने जानबूझ कर सुबह टेलीफ़ोन न किया।”

“क्यों?”

“यह मालूम करने के लिए कि आप इन्तज़ार करेंगे या नहीं?”

मनमोहन हँसा, “बहुत चंचल हो तुम...अच्छा अब टेलीफ़ोन बन्द करो। मैं खाना खाने जा रहा हूँ।”

“बेहतर, कब तक लौटियेगा?”

“आधे घंटे तक”

मनमोहन आधे घंटे के बाद खाना खाकर लौटा तो उसने फ़ोन किया। देर तक दोनों बातें करते रहे। इसके बाद उसने ‘ग़ालिब’ की एक ग़ज़ल सुनायी। मनमोहन ने दिल से दाद दी। फिर टेलीफ़ोन का सिलसिला टूट गया।

अब हर रोज़ सुबह और शाम मनमोहन को उसका टेलीफ़ोन आता। घंटी की आवाज़ सुनते ही वह टेलीफ़ोन की तरफ़ लपकता। कभी-कभी घंटों बातें जारी रहतीं। इस दौरान में मनमोहन ने उससे टेलीफ़ोन का नम्बर पूछा न उसका नाम। शुरू-शुरू में उसने उसकी आवाज़ की मदद से कल्पना के पर्दे पर उसकी तस्वीर खींचने की कोशिश की थी। मगर अब वह जैसे आवाज़ ही से सन्तुष्ट हो गया था। आवाज़ ही शक्ल थी। आवाज़ ही सूरत थी। आवाज़ ही ज़िस्म था। आवाज़ ही रूह थी। एक दिन उसने पूछा, “मनमोहन तुम मेरा नाम क्यों नहीं पूछते?”

मनमोहन ने मुस्कुराकर कहा, “तुम्हारा नाम तुम्हारी आवाज़ है।”

“जो कि बहुत मधुर है।”

“इसमें क्या शक़ है?”

एक दिन वह बड़ा टेढ़ा सवाल कर बैठी, “मनमोहन तुमने कभी किसी लड़की से मुहब्बत की है?”

मनमोहन ने जवाब दिया, “नहीं।”

“क्यों?”

मोहन एकदम उदास हो गया, “इस क्यों का जवाब चन्द लफ़्ज़ों में नहीं दे सकता। मुझे अपनी ज़िन्दगी का सारा भार उठाना पड़ेगा...अगर कोई जवाब न मिले तो बड़ी कोफ़्त होगी।”

“जाने दीजिये”

टेलीफ़ोन का रिश्ता क़ायम हुए तक़रीबन एक महीना हो गया। बिना नागा दिन में दो मर्तबा उसका फ़ोन आता। मनमोहन को अपने दोस्त का ख़त आया कि क़र्ज़े का बन्दोबस्त हो गया है, सात-आठ रोज़ में वह बम्बई पहुँचने वाला है। मनमोहन यह ख़त पढ़कर उदास हो गया। उसका टेलीफ़ोन आया तो मनमोहन ने उससे कहा, “मेरी दफ़्तर की बादशाही अब चन्द दिनों की मेहमान है।”

उसने पूछा, “क्यों?”

मनमोहन ने जवाब दिया, “क़र्ज़े का बन्दोबस्त हो गया है...दफ़्तर आबाद होने वाला है।”

“तुम्हारे किसी और दोस्त के घर में टेलीफ़ोन नहीं।”

“कई दोस्त हैं जिनके टेलीफ़ोन हैं। मगर मैं तुम्हें उनका नम्बर नहीं दे सकता।”

“क्यों?”

“मैं नहीं चाहता तुम्हारी आवाज़ कोई और सुने।”

“वजह?”

“मैं बहुत ईर्ष्यालु हूँ।”

वह मुस्कुरायी, “यह तो बड़ी मुसीबत हुई”

“क्या किया जाये?”

“आख़िरी दिन जब तुम्हारी बादशाहत ख़त्म होने वाली होगी। मैं तुम्हें अपना नम्बर बता दूँगी।”

“यह ठीक है।”

मनमोहन की सारी उदासी दूर हो गयी। वह उस दिन का इन्तज़ार करने लगा कि दफ़्तर में उसकी बादशाहत ख़त्म हो। अब फिर उसने उसकी आवाज़ की मदद से अपनी कल्पना के पर्दे पर उसकी तस्वीर खींचने की कोशिश शुरू की। कई तस्वीरें बनीं। मगर वह संतुष्ट न हुआ। उसने सोचा कि चन्द दिनों की बात है। उसने टेलीफ़ोन नम्बर बता दिया तो वह उसे देख भी सकेगा। इसका ख़याल आते ही उसका दिल-ओ-दिमाग़ सुन्न हो जाता, “मेरी ज़िन्दगी का वह लम्हा कितना बड़ा लम्हा होगा, जब मैं उसको देखूँगा।”

दूसरे रोज़ जब उसका टेलीफ़ोन आया तो मनमोहन ने उससे कहा, “तुम्हें देखने की

चाहत पैदा हो गयी है।”

“क्यों?”

“तुमने कहा था कि आख़िरी दिन जब यहाँ मेरी बादशाहत ख़त्म होने वाली होगी तो तुम मुझे अपना नम्बर बता दोगी।”

“कहा था”

“इसका यह मतलब है कि तुम मुझे अपना एडरेस दे दोगी...मैं तुम्हें देख सकूँगा।”

“तुम मुझे जब चाहो देख सकते हो...आज ही देख लो।”

“नहीं-नहीं”...फिर कुछ सोचकर कहा, “मैं ज़रा अच्छे लिबास में तुमसे मिलना चाहता हूँ...आज ही एक दोस्त से कह रहा हूँ। वह मुझे सूट सिलवा देगा।”

वह हँस पड़ी, “बिल्कुल बच्चे हो तुम...सुनो, जब तुम मुझसे मिलोगे तो मैं तुम्हें एक तोहफ़ा दूँगी।”

मनमोहन ने जज़्बाती अन्दाज़ में कहा, “तुम्हारी मुलाकात से बढ़कर और क्या तोहफ़ा हो सकता है?”

“मैंने तुम्हारे लिए एग्ज़क्टा रिफ़लेक्स कैमरा खरीद लिया है।”

“ओह।”

“इस शर्त पर दूँगी कि पहले मेरी फोटो उतारो।”

मनमोहन मुस्कुराया, “इस शर्त का फ़ैसला मुलाकात पर करूँगा।”

थोड़ी देर और गुफ़्तगू हुई इसके बाद उधर से वह बोली, “मैं कल और परसों तुम्हें टेलीफ़ोन नहीं कर सकूँगी।”

मनमोहन ने चिन्ता भरे लहज़े में पूछा, “क्यों?”

“मैं अपने अज़ीज़ों के साथ कहीं बाहर जा रही हूँ। सिर्फ़ दो दिन ग़ैर हाज़िर रहूँगी। मुझे माफ़ कर देना।”

यह सुनने के बाद मनमोहन सारा दिन दफ़्तर ही में रहा। दूसरे दिन सुबह उठा तो उसने हरारत महसूस की। सोचा कि यह कमज़ोरी शायद इसलिए है कि उसका टेलीफोन नहीं आयेगा लेकिन दोपहर तक हरारत तेज़ हो गयी। बदन तपने लगा। आँखों से शरारे फूटने लगे। मनमोहन मेज़ पर लेट गया। प्यास बार-बार सताती थी। उठता और नल से मुँह लगाकर पानी पीता। शाम के करीब उसे अपने सीने पर बोझ महसूस होने लगा। दूसरे रोज़ वह बिल्कुल निढाल था। साँस बड़ी दिक्क़त से आती थी। सीने की दुखन बहुत बढ़ गयी थी।

कई बार उस पर बेहोशी-सी छा गयी। बुख़ार की शिद्दत में वह घंटों टेलीफ़ोन पर अपनी महबूब की आवाज़ के साथ बातें करता रहा। शाम को उसकी हालत बहुत ज़्यादा बिगड़ गयी। धुँधलायी हुई आँखों से उसने क्लॉक की तरफ़ देखा। उसके कानों में अजीब-ओ-ग़रीब आवाज़ें ही आवाज़ें थीं। चुनांचे जब टेलीफ़ोन की घंटी बजी तो उसके कानों तक उसकी आवाज़ न पहुँची। बहुत देर तक घंटी बजती रही। एकदम मनमोहन चौंका। उसके कान अब सुन रहे थे। लड़खड़ाता हुआ उठा और टेलीफ़ोन तक गया। दीवार का सहारा लेकर उसने काँपते हुए हाथों से रिसीवर उठाया और ख़ुश्क होंठों पर लकड़ी जैसी ज़बान

फेरकर कहा, “हैलो”

दूसरी तरफ़ से वह लड़की बोली, “हैलो...मोहन?”

मनमोहन की आवाज़ लड़खड़ायी, “हाँ मोहन।”

“ज़रा ऊँचा बोलो...”

मनमोहन ने कुछ कहना चाहा। मगर वह उसके हलक़ ही में ख़ुश्क हो गया।

आवाज़ आयी, “मैं जल्दी आ गयी...बड़ी देर से तुम्हें रिंग कर रही हूँ...कहाँ थे तुम?”

मनमोहन का सर घूमने लगा।

आवाज़ आयी, “क्या हो गया है तुम्हें?”

मनमोहन ने बड़ी मुश्किल से इतना कहा, “मेरी बादशाहत ख़त्म हो गयी है आज”

उसके मुँह से खून निकला और एक पतली लकीर की सूरत में गर्दन तक दौड़ता चला गया।

आवाज़ आयी, “मेरा नम्बर नोट कर लो...फाइव नाट थ्री वन फ़ोर, फ़ाइव नाट थ्री वन फ़ोर...सुबह फ़ोन करना” यह कहकर उसने रिसीवर रख दिया। मनमोहन औंधे मुँह टेलीफ़ोन पर गिरा...उसके मुँह से खून के बुलबुले फूटने लगे।

जून, 1950

राजो और मिस फ़रिया

एक

आये दिन सईद को जुकाम होता था। एक दिन जब इस जुकाम ने ताज़ा हमला किया, तो उसने सोचा, 'मुझे प्रेम क्यों नहीं होता।' सईद के जितने मित्र थे, सब-के-सब प्रेम कर चुके थे। उनमें से कुछ अभी तक इसी में डूबे थे। परन्तु प्रेम को वह जितना ही अपने पास देखना चाहता, उतना ही वह उसे अपने से दूर पाता। यह बड़ी अजीब बात थी। परन्तु उसको अभी तक किसी से प्रेम नहीं हुआ था। जब कभी वह सोचता कि सचमुच उसका मन प्रेम-मुहब्बत से खाली है तो वह जैसे लज्जित-सा हो जाता और उसके अहं को चोट पहुँचती।

बीस वर्ष का समय, जिसमें कई वर्ष उसके बचपन की अल्हड़ता की धुँध में लिपटे हुए थे, कभी-कभी उसके सामने लाश की तरह अकड़ जाता था। और वह सोचता कि उसका अस्तित्व अब तक बिल्कुल बेकार रहा है। प्रेम के बिना आदमी कैसे सम्पूर्ण हो सकता है?

सईद को इस बात का एहसास था कि उसका दिल खूबसूरत है, और इस योग्य है कि प्रेम उसमें रहे, परन्तु वह सुन्दर महल किस काम का, जिसमें रहने वाला कोई न हो। क्योंकि उसका दिल प्रेम करने के योग्य था, यही कारण है कि उसे इस विचार से बहुत दुख होता कि उसकी धड़कनें व्यर्थ में ही नष्ट हो रही हैं।

उसने लोगों से सुना था कि जीवन में एक बार प्रेम का अवसर अवश्य आता है। स्वयं उसे भी इस बात का हल्का-सा विश्वास था कि मृत्यु की तरह प्रेम का अवसर भी एक बार अवश्य आयेगा! परन्तु कब?

काश कि उसके जीवन की पुस्तक उसकी अपनी जेब में होती, जिसे खोल कर वह तुरन्त इसका उत्तर पा लेता। परन्तु इस पुस्तक को तो घटनायें लिखती हैं। जब प्रेम का अवसर आयेगा, तो अपने-आप इस पुस्तक में नये पृष्ठ जुड़ जायेंगे। वह इन नये पृष्ठों के जुड़ने के लिए कितना बेचैन था।

वह जब चाहे उठकर रेडियो पर गीत सुन सकता था। जब चाहे खाना खा सकता था। अपनी इच्छा के अनुसार हर समय व्हिस्की भी पी सकता था, जिसकी उसके धर्म में मनाही थी। वह यदि चाहता तो उस्तरे से अपने गाल भी जख्मी कर लेता, परन्तु जैसा कि वह चाहता

था वह किसी से प्रेम नहीं कर सकता था।

एक बार उसने बाज़ार में एक नौजवान लड़की देखी। उसके उरोज देखकर उसे ऐसा लगा कि दो बड़े-बड़े शलजम ढीले कुरते में छिपे हुए हैं। शलजम उसे बहुत पसन्द थे। जाड़े के मौसम में कोठे पर जब उसकी माँ लाल-लाल शलजम काट कर सुखाने के लिए हार पिरोया करती थी, तो वह कई कच्चे शलजम खा जाया करता था। इस लड़की को देखकर उसके मुँह में फिर वही स्वाद भर गया, जो शलजम का गूदा चबाते समय होता है परन्तु उसके दिल में इस लड़की से प्रेम करने का विचार न उभरा।...वह उसकी चाल को ध्यान से देखता रहा, जिसमें टेढ़ापन था, वैसा ही टेढ़ापन जैसा कि बरसात के दिनों चारपाई के पायों में पैदा हो जाता है। वह उसके प्रेम में स्वयं को बाँध न सका।

प्रेम करने के विचार से वह अक्सर अपनी गली के नुक्कड़ पर दरियों की दुकान पर जा बैठता था। यह दुकान सईद के एक मित्र की थी जो हाईस्कूल की एक लड़की से प्रेम कर रहा था। उस लड़की से उसका प्रेम लुधियाना की एक दरी के कारण हुआ था। दरी के पैसे, जैसा कि उस लड़की ने बताया, उसके दुपट्टे के पल्लू से खुलकर कहीं गिर पड़े थे। लतीफ क्योंकि उसके घर के पास रहता था, इसलिए उस लड़की ने अपने चाचा की झिड़कियों और गालियों से बचने के लिए उससे दरी उधार माँग ली, और...। दोनों में प्रेम हो गया। शाम को बाज़ार में चहल-पहल अधिक हो जाती थी, और क्योंकि सिनेमा को जाने के लिए रास्ता वही था, इसलिए काफ़ी औरतें उसकी नज़रों के सामने से गुज़रती थीं। परन्तु पता नहीं क्यों, उसे ऐसा महसूस होता कि जितने लोग बाज़ार में चलते-फिरते हैं सब-के-सब जैसे सफ़ेद चादर की तरह हैं। उसकी नज़रें किसी औरत या किसी पुरुष पर न रुकती थीं। लोगों की भीड़-भाड़ को उसकी आँखें जैसे कुछ समझती और महसूस ही न करती थीं...

तब? उसकी आँखें किधर देखती थीं! यह न आँखों को पता था, न सईद को। उसकी नज़रें दूर बहुत दूर, सामने चूने और मिट्टी के बने हुए पक्के मकानों को छेदती हुई निकल जातीं, न जाने कहाँ और खुद ही कहीं घूम-घामकर उसके दिल के अन्दर आ जातीं। बिल्कुल उन बच्चों की तरह, जो अपनी माँ की छाती पर औंधे मुँह लेटे नाक, कान और बालों से खेल-खालकर अपने ही हाथों को आश्चर्य और दिलचस्पी से देखते-देखते नींद की नर्म-नर्म गोद में धँस जाते हैं।

लतीफ़ की दुकान पर ग्राहक बहुत कम आते थे। इसलिए वह उसकी उपस्थिति को अच्छा ही मानते हुए उससे तरह-तरह की बातें किया करता था। परन्तु वह सामने लटकी हुई दरी की तरफ़ देखता रहता, जिसमें कई रंगों के अनगिनत धागों के उलझाव ने एक डिजाइन पैदा कर दिया था। लतीफ़ के होंठ हिलते रहते, और वह सोचता रहता कि उसके दिमाग का नक्शा दरी के डिजाइन से कितना मिलता-जुलता है। किसी समय तो वह यही सोचता कि उसके अपने ही विचार बाहर निकलकर इस दरी पर रेंग रहे हैं।

इस दरी में और सईद की दिमागी हालत में काफ़ी साम्य था। अन्तर केवल इतना था कि रंग-बिरंगे धागों के उलझाव ने उसके सामने दरी की शक्ल बना ली थी, और उसके रंग-बिरंगे विचारों का उलझाव ऐसी शक्ल नहीं बना पाता था, जिसको दरी की तरह अपने सामने

बिछाकर या लटकाकर देख सकता।

लतीफ पक्का भोंदू था। उसे बात तक न करना आता था। किसी चीज़ में सुन्दरता तलाश करने के लिए यदि उससे कहा जाता, तो बगले झाँकने लगता। उसके अन्दर वह बात ही पैदा न हुई थी, जो एक कलाकार में होती है। परन्तु इस सब के बावजूद एक लड़की उससे प्रेम करती थी, उसको प्रेम-पत्र लिखती थी, जिसको लतीफ इस तरह से पढ़ता था, जैसे किसी समाचारपत्र में युद्ध की खबरें पढ़ रहा हो। इन पत्रों में उसे वह कँपकँपाहट नज़र न आती थी, जो हर शब्द में गुँथी होती है। वह शब्दों के गूढ़ अर्थों से बिल्कुल अनभिज्ञ था। उससे यदि यह कहा जाता, “देखो लतीफ, यह पढ़ो...लिखती है, ‘मेरी फूफी ने कल मुझसे कहा क्या हुआ है तेरी भूख को, तूने खाना-पीना क्यों छोड़ दिया है? जब मैंने सुना, तो पता चला कि सचमुच मैं आजकल बहुत कम खाती हूँ। देखो, मेरे लिए कल शहाबुद्दीन की दुकान से खीर लेते आना...जितनी लाओगे, सब चट कर जाऊँगी, अगली-पिछली कसर निकाल दूँगी...।’ कुछ समझ में आया कि इन शब्दों के पीछे क्या है...तुम शहाबुद्दीन की दुकान से खीर का एक बहुत बड़ा दोना लेकर जाओगे, परन्तु लोगों की नज़रों से बच-बचाकर ड्योढ़ी में जब तुम उसे यह तोहफ़ा दोगे, तो इस ख़याल से खुश न होना कि सारी खीर वह खा जायेगी! वह कभी नहीं खा सकेगी...पेट भर कर वह कुछ खा ही नहीं सकती। जब दिमाग में अनेकों ख़याल जमा हो जायें, तो पेट अपने ही आप भर जाया करता है।” परन्तु यह बात उसकी समझ में कैसे आती? वह तो समझने-समझाने से बिल्कुल कोरा था। जहाँ तक शहाबुद्दीन की दुकान से चार आने की खीर और एक आने की खुशबूदार रबड़ी खरीदने की बात थी, लतीफ ठीक था, परन्तु खीर की इच्छा क्यों की गयी और ऐसा ख़याल उसकी प्रेमिका के दिमाग में क्यों आया है, इससे लतीफ को कोई मतलब नहीं था। वह इस योग्य ही नहीं था कि इन बारीकियों को समझ सके। वह मोटी बुद्धि का आदमी था, जो लोहे के ज़ंग लगे गज से भद्दे तरीके से दरियाँ नापता था, और शायद इसी तरह के गज से अपने विचारों को भी नापता रहता था।

परन्तु यह सच्चाई है कि एक लड़की उसके प्रेम-जाल में फँसी थी, जो हर लिहाज से उससे बहुत अच्छी थी। लतीफ और उसमें इतना ही अन्तर था, जितना लुधियाना की दरी और कश्मीर के गुदगुदे कालीन में।

सईद की समझ में नहीं आता था कि प्रेम कैसे पैदा हो जाता है, बल्कि यह कहिये कि पैदा हो सकता है। वह जिस भी समय चाहे, उदास और क्रुद्ध हो सकता है, और अपने आप को खुश भी कर सकता है, परन्तु वह प्रेम नहीं कर सकता, प्रेम जिसके लिए वह इतना बेचैन रहता था।

उसका एक और मित्र, जो इतना सुस्त था कि मूँगफली या चने केवल उसी स्थिति में खा सकता था, यदि उनके छिलके उतरे हुए हों, वह भी अपनी गली की एक खूबसूरत लड़की से प्रेम कर रहा था। वह हर समय उसकी खूबसूरती की प्रशंसा किया करता। परन्तु यदि उससे पूछा जाता, “यह खूबसूरती तुम्हारी प्रेमिका में कहाँ से शुरू होती है” तो निश्चित रूप से वह बौखला जाता। खूबसूरती का मतलब वह बिल्कुल न समझता था। कॉलेज में

शिक्षा पाने के बावजूद उसके दिमाग का विकास अच्छे ढंग से नहीं हुआ था। परन्तु उसकी प्रेम-कहानी इतनी लम्बी थी कि लिखने बैठते, तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो जाती। आख़िर इन लोगों को...इन मूर्खों को प्रेम करने का क्या अधिकार है? कई बार यह प्रश्न सईद के मस्तिष्क में उभरा और उसकी परेशानी बढ़ गयी। परन्तु काफ़ी सोच-विचार के बाद वह इस परिणाम पर पहुँचा कि प्रेम करने का अधिकार हर व्यक्ति को प्राप्त है, चाहे वह मूर्ख हो या समझदार...

दूसरों को प्रेम करते देखकर उसके दिल में ईर्ष्या का भाव पैदा होता था। वह जानता था कि यह एक बहुत बड़ा कमीनापन है, परन्तु वह विवश था। प्रेम करने की इच्छा उस पर इस तरह से छायी रहती कि किसी-किसी समय तो वह प्रेम करने वालों को गालियाँ तक दे डालता। मगर गालियाँ देने के बाद अपने आप को भी कोसता कि व्यर्थ में ही उसने दूसरों को बुरा-भला कहा। यदि दुनिया के सारे लोग प्रेम करने लग जायें तो इसमें मेरे बाप का क्या जाता है। मुझे केवल अपने से मतलब रखना चाहिए। यदि मैं किसी के प्रेम में नहीं फँस सकता, तो इसमें दूसरों की क्या गलती है। बहुत सम्भव है कि मैं किसी कारणवश इस योग्य ही न होऊँ। क्या पता कि मूर्ख और कम बुद्धि होना ही प्रेम करने के लिए आवश्यक हो।

सोचते-सोचते एक दिन वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रेम एकदम से पैदा नहीं होता। वे लोग झूठे हैं, जो कहते हैं कि प्रेम चुटकियाँ बजाते हो जाता है। यदि ऐसा होता, तो प्रकट है कि उसके दिल में भी यह बहुत पहले पैदा हो गया होता। कई लड़कियाँ उसकी नज़रों से अब तक गुज़र चुकी हैं। यदि प्रेम एकदम पैदा हो सकता, तो वह स्वयं को किसी एक के साथ बड़ी आसानी से जोड़ सकता था। किसी लड़की को मात्र एक-दो बार देख लेने से प्रेम कैसे पैदा हो सकता है, यह उसकी समझ में नहीं आता था।

कुछ दिन पहले एक मित्र ने जब उससे कहा—"कम्पनी बाग में आज मैंने एक लड़की देखी, एक ही नज़र में उसने मुझे घायल कर दिया"—तो यह सुनकर उसको मितली-सी होने लगी। ऐसे वाक्य उसे बहुत गिरे हुए मालूम होते थे। 'एक ही नज़र में उसने मुझे घायल कर दिया'...क्या खूब, विचारों का कितना बड़ा घटियापन है यह!

जब वह इस तरह के घटिया और तीसरे दर्जे के वाक्य किसी के मुँह से सुनता, तो उसे ऐसा लगता कि उसके कानों में किसी ने पिघलता हुआ सीसा डाल दिया हो।

परन्तु इस तरह के घटिया और गिरे हुए लोग उसकी तुलना में कहीं अधिक खुश थे। वे लोग बड़ा शान्त और आराम का जीवन बिता रहे थे।

प्रेम और जीवन को एम. असलम की नज़रों से देखने वाले लोग बहुत खुश थे। परन्तु सईद, जो प्रेम और जीवन को बड़ी साफ़ आँखों से देखता था, उदास था...बेहद उदास...

एम. असलम से उसे अत्यधिक घृणा थी। इतना भद्दा और छिछोरा प्रेम-कहानियाँ लिखने वाला उसकी नज़रों से कभी न गुज़रा था। उसकी कहानियाँ पढ़कर हमेशा उसका ख़याल बट्टी और कटरा घन्नियाँ की खिड़कियों की तरफ़ दौड़ जाता, जिनमें से रात को वेश्याओं के पाउडर सने गाल नज़र आते हैं परन्तु आश्चर्य है कि अक्सर लड़कियों और लड़कों में उसी की कहानियाँ पढ़कर प्रेम-सम्बन्ध बनते-जुड़ते हैं।

जो प्रेम एम. असलम की कहानियों में होता है, वह किस तरह का प्रेम होगा—जब वह इस बात पर थोड़ी देर ध्यान देकर सोचता, तो उसे यह प्रेम एक ऐसे सर-फिरे आदमी की शक्ल में दिखायी देता जिसने दिखावे की खातिर अपने अच्छे-अच्छे कपड़े एक के ऊपर एक पहन रखे हों।

एम. असलम की कहानियों के बारे में उसका मत कुछ भी हो, परन्तु सच्चाई यह थी कि नौजवान लड़कियाँ उन्हें छिप-छिपकर पढ़ती थीं, और जब उनकी कल्पना उड़ान भरती थी, तो वे उसी आदमी से प्रेम करना शुरू कर देती थीं, जो उनको सबसे पहले नज़र आ जाये। इसी तरह बहज़ाद, जिसकी ग़ज़लें हिन्दुस्तान की हर जान और बाई रात को कोठों पर गाती है, नौजवान लड़कों और लड़कियों में बहुत प्रिय था। क्यों, यह उसकी समझ में न आता था।

बहज़ाद की वह ग़ज़ल जिसकी पहली पंक्ति—'दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे'—है, लगभग हर व्यक्ति गाता था। उसके अपने घर में उसकी चपटी नाक वाली नौकरानी, जो अपनी जवानी की मंज़िलें किसी तरह से पार कर चुकी थी, बर्तन माँजते समय हमेशा धीमे सुरों में गुनगुनाया करती थी...'दीवाना बनाना है, तो दीवाना बना दे...'

इस ग़ज़ल ने उसे दीवाना बना दिया था। जहाँ जाओ...'दीवाना बनाना है, तो दीवाना बना दे' अलापा जा रहा है। आख़िर क्या मुसीबत है। कोठे पर चढ़ो, तो काना इस्माइल एक आँख से अपने उड़ते हुए कबूतरों की तरफ़ देखकर ऊँचे सुरों में गा रहा है..."दीवाना बनाना है, तो दीवाना बना दे।" दरियों की दुकान पर बैठो, तो बगल की दुकान में लाला किशोरी बजाज अपने बड़े-बड़े चूतड़ों की गद्दियों पर आराम से बैठकर निहायत भौंडे तरीके से गाना शुरू कर देता है..."दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे।" दरियों की दुकान से उठो और बैठक में जाकर रेडियो खोलो तो अख्तरी बाई फैजाबादी गा रही है..."दीवाना बनाना है, तो दीवाना बना दे", क्या मुसीबत है। वह हर समय यही सोचता रहता। परन्तु एक दिन जब वह ऐसे बैठा था और पान बनाने के लिए सुपारी काट रहा था, उसने खुद बिना चाहते हुए भी गाना शुरू कर दिया..."दीवाना बनाना है, तो दीवाना बना दे..."

वह अपने आप पर बहुत नाराज़ हुआ। उसे अपने पर बहुत क्रोध आया, परन्तु फिर एकदम से ज़ोर से हँसने के बाद उसने जान-बूझकर ऊँचे सुरों में गाना शुरू कर दिया..."दीवाना बनाना है, तो दीवाना बना दे।" इस तरह से गाते हुए उसने ख़याल में बहज़ाद की सारी शायरी एक ठहाके में गुम कर दी, और वह मन-ही-मन खुश हो गया।

एक-दो बार उसके मन में विचार उठा कि वह भी एम. असलम की कहानियों और बहज़ाद की शायरी का भक्त हो जाये, और इस तरह किसी से प्रेम करने में सफलता प्राप्त कर ले। परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी वह एम. असलम का उपन्यास पूरा न पढ़ सका, और न ही बहज़ाद की ग़ज़ल में कोई विशेष बात देख सका। एक दिन उसने अपने दिल में निश्चय कर लिया कि जो हो सो हो, एम. असलम और बहज़ाद के बिना ही अपनी इच्छा पूरी करूँगा। जो विचार मेरे दिमाग में हैं, उन सबके साथ मैं किसी लड़की से प्रेम करूँगा। अधिक-से-अधिक यही होगा कि मैं असफल रहूँगा, तो भी यह असफलता इन दो डुगडुगी

बजाने वालों से अच्छी है। उस दिन से उसके अन्दर प्रेम करने की इच्छा और भी तेज़ हो गयी और उसने हर रोज़ सुबह नाश्ता किये बिना रेल के फाटक पर जाना शुरू कर दिया, जहाँ से कई लड़कियाँ हाईस्कूल की तरफ़ जाती थीं।

फाटक के दोनों तरफ़ लोहे का एक बहुत बड़ा तवा, जिस पर लाल रंग पेंट किया गया था, जुड़ा था। दूर से जब वह इन दो लाल-लाल तवों को एक-दूसरे के पीछे देखता तो उसे पता लग जाता कि फ्रंटियर-मेल आ रही है। फाटक के पास पहुँचते ही फ्रंटियर-मेल मुसाफिरों से लदी हुई आती और दनदनाती हुई स्टेशन की तरफ़ भाग जाती।

फाटक खुलता और वह लड़कियों की प्रतीक्षा में एक तरफ़ खड़ा हो जाता। उधर से पच्चीस नहीं छब्बीस (पहले दिन उसने गिनने में गलती की थी) लड़कियाँ समय पर गुज़रतीं और लोहे की पटरियों को पार करके कम्पनी बाग के साथ वाली सड़क की तरफ़ हो जातीं जिधर उनका स्कूल था। उन छब्बीस लड़कियों में से दस लड़कियों को जो कि हिन्दू थीं, वह इसलिए ध्यान से नहीं देख सका कि शेष सोलह मुसलमान लड़कियों के चेहरे बुर्कों में छिपे रहते थे।

वह दस दिनों तक लगातार फाटक पर जाता रहा। शुरू-शुरू में दो-तीन दिन वह इन सब लड़कियों की तरफ़ ध्यान देता रहा, मगर दसवें दिन जब सुबह की ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी, जिसमें कम्पनी बाग के तमाम फूलों की खुशबू बसी हुई थी, उसने अचानक अपने आपको इन लड़कियों की बजाय पेड़ों को बड़े ध्यान से देखते पाया, जिनमें अनगिनत चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। सुबह की खामोशी में चिड़ियों का चहचहाना कितना अच्छा लगता था। इसलिए जब उसने ध्यान दिया तो पता चला कि वह एक सप्ताह से लड़कियों की बजाय इन चिड़ियों, पेड़ों और फ्रंटियर-मेल में दिलचस्पी लेता रहा है।

प्रेम शुरू करने के लिए उसने और भी बहुत सी चेष्टाएँ कीं परन्तु असफल रहा। आख़िर उसने सोचा, 'क्यों न अपनी गली में ही कोशिश की जाये।' इसलिए उसने अपने कमरे में बैठकर गली की उन तमाम लड़कियों की सूची बनायी, जिनसे प्रेम किया जा सकता था। जब सूची तैयार हो गयी, तो नौ लड़कियाँ उसके सामने थीं।

नम्बर एक हमीदा, नम्बर दो सगरा, नम्बर तीन नईमा, नम्बर चार पुष्पा, नम्बर पाँच विमला, नम्बर छः राजकुमारी, नम्बर सात फातिमा उर्फ फातो, नम्बर आठ जुबेदा उर्फ बैदी।

नम्बर नौ...इसका नाम उसे मालूम नहीं था। यह लड़की पशमीने के सौदागरों के घर नौकर थी।

अब उसने क्रमानुसार गौर करना शुरू किया।

हमीदा सुन्दर थी, बड़ी भोली लड़की, आयु लगभग पन्द्रह वर्ष होगी। हमेशा प्रसन्न नज़र आती थी। बड़ी नाजुक। उसे देखकर ऐसा लगता था कि सफ़ेद चीनी की पुतली है। यदि उसके शरीर के किसी भाग को हाथ लगाया तो कुछ टूटकर गिर जायेगा। नन्हे से सीने पर छातियों का उभार ऐसा था, जैसे किसी मद्धम राग में दो सुर अनचाहे ही ऊँचे हो गये हों।

यदि उससे वह कभी यह कहता, "हमीदा, मैं तुमसे प्रेम करना चाहता हूँ," तो निश्चित रूप से उसके दिल की धड़कनें बन्द हो जातीं। वह उसे सीढ़ियों ही में ऐसी बातें कह सकता

था। कल्पना में वह हमीदा से इसी जगह मिला...वह ऊपर से तेज़ी के साथ नीचे उतर रही थी। उसने उसे रोका और उसकी तरफ़ ध्यान से देखा। उसका छोटा-सा दिल सीने में यूँ फड़फड़ाया, जैसे तेज़ हवा के झोंके से दीपक की लौ। वह कुछ न कह सका।

हमीदा से वह कुछ नहीं कह सकता था। वह इस योग्य ही नहीं थी कि उससे प्रेम किया जाता। वह केवल शादी के योग्य थी। कोई भी पति उसके लिए ठीक था, क्योंकि उसके शरीर का हर कण पत्नी था। उसकी गिनती उन लड़कियों में हो सकती थी जिनका सारा जीवन शादी के बाद घर के अन्दर सिमटकर रह जाता है, जो बच्चे पैदा करती रहती हैं कुछ ही वर्षों में अपना सारा रंग-रूप खो देती हैं। और रंग-रूप खोकर भी जिनको अपने में कोई विशेष फर्क महसूस नहीं होता।

ऐसी लड़कियों से जो प्रेम का नाम सुनकर यह समझें कि एक बहुत बड़ा पाप उनसे हो गया है, वह प्रेम नहीं कर सकता था। उसे विश्वास था कि यदि वह किसी दिन ग़ालिब का एक शे'र उसे सुना देता तो कई दिनों तक नमाज़ के साथ बख़्शिश की दुआएँ माँगकर भी वह यह समझती कि उसकी गलती माफ नहीं हुई...अपनी माँ से उसने तुरन्त ही सारी बात कह सुनायी होती और इस पर जो शोर होता, उसके ख़याल ही से सईद काँप-काँप उठता। स्पष्ट है कि सब उसे अपराधी ही कहते और सारी उम्र के लिए उसके चरित्र पर एक धब्बा भी लग जाता। कोई इस बात की तरफ़ ध्यान न देता कि वह साफ़ और पवित्र मन से उससे प्रेम करने का इच्छुक था।

नम्बर दो सगरा और नम्बर तीन नईमा के बारे में सोचना ही बेकार था। इसलिए कि वे एक कट्टर मौलवी की लड़कियाँ थीं। उनकी कल्पना करते ही सईद की आँखों के सामने उस मस्जिद की चटाइयाँ आ गयीं, जिन पर मौलवी कुदरतल्लाह साहब लोगों को नमाज पढ़ाने और अज़ान देने में मसरूफ रहते थे। ये लड़कियाँ जवान और खूबसूरत थीं, मगर अजीब बात है कि चेहरे लटके हुए थे। जब सईद अपने घर में बैठा उनकी आवाज़ सुनता, तो उसे ऐसा लगता कि आदत के कारण कोई धीमे-धीमे सुरों में दुआ माँग रहा है। ऐसी दुआ, जिसका मतलब वह खुद भी नहीं समझता। उनको केवल खुदा से प्रेम करना सिखाया गया था, इसीलिए सईद उनसे प्रेम करना नहीं चाहता था।

वह इन्सान था और इन्सान को अपना दिल देना चाहता था। सगरा और नईमा की इस दुनिया में इस तरह से शिक्षा हो रही थी कि वह दूसरी दुनिया में नेक मर्दों के काम आ सकें।

जब सईद ने उनके सम्बन्ध में सोचा, तो अपने आप से कहा, "भई नहीं, इनसे मैं प्रेम नहीं कर सकता, जो आख़िरकार दूसरे आदमियों के हवाले कर दी जायेंगी। मुझे तो इस दुनिया में पाप भी करने हैं। इसलिए मैं यह जुआ खेलना नहीं चाहता। मुझसे यह देखा न जायेगा कि इस दुनिया में जिससे मैं प्रेम करता हूँ, वह बाद में किसी दूसरे को सौंप दी जाये।"

इसलिए उसने सूची में से सगरा और नईमा का नाम काट दिया।

नम्बर चार पुष्पा, नम्बर पाँच विमला और नम्बर छः राजकुमारी। ये तीन लड़कियाँ जिनका आपस में न जाने क्या रिश्ता था, सामने वाले मकान में रहती थीं। पुष्पा के बारे में

विचार करना व्यर्थ था, क्योंकि उसकी शादी होने वाली थी एक बजाज से, जिसका नाम उतना ही भद्दा था जितना पुष्पा का खूबसूरत चेहरा। वह अक्सर उसे छेड़ा करता था और खिड़की में से उसको अपनी काली अचकन दिखा कर कहा करता था, "पुष्पा, बताओ तो मेरी अचकन का रंग कैसा है?" पुष्पा के गालों पर एक सेकेंड के लिए गुलाब की पत्तियाँ-सी थरथरा जातीं और वह बहादुरी से उत्तर दिया करती, "नीला।"

उसके होने वाले पति का नाम कालूमल था। न जाने उसका नाम रखते हुए उसके माँ-बाप ने क्या सोचा था।

वह जब पुष्पा और कालूमल के बारे में सोचता, तो अपने दिल से कहा करता, "यदि और किसी कारण से इनकी शादी रुक नहीं सकती, तो मात्र इसी कारण रोक दी जानी चाहिए कि इसके होने वाले पति का नाम निहायत ही भद्दा है...कालूमल...एक 'कालू' और फिर उस पर 'मल'...लानत है...आख़िर इसका मतलब क्या हुआ?"

परन्तु फिर सोचता कि यदि पुष्पा की शादी कालूमल बजाज से न हुई, तो किसी घसीटाराम हलवाई या किसी किरोड़ीमल सर्राफ से हो जायेगी। फिर भी, वह उससे प्रेम नहीं कर सकता था, और यदि करता तो उसे हिन्दू-मुस्लिम फसाद का डर था। मुसलमान और हिन्दू लड़की से प्रेम करे...प्रेम करना तो वैसे ही बहुत बड़ा अपराध है...और फिर मुसलमान लड़के और हिन्दू लड़की का प्रेम...नीम पर करेला चढ़ाने वाली बात थी।

शहर में कई हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो चुके थे। परन्तु जिस गली में सईद रहता था, यह अभी तक सुरक्षित थी। यदि वह पुष्पा, विमला या राजकुमारी से प्रेम करने का इरादा कर लेता तो मुसीबत ही हो जाती। हिन्दू-मुस्लिम दंगों से सईद को सख्त घृणा थी।

राजकुमारी, जो इन दोनों से छोटी थी, उसे पसन्द थी। उसके होंठ, जो साँस की कमी के कारण थोड़े-से खुले रहते थे, उसे बेहद पसन्द थे। उनको देखकर उसे हमेशा ख़याल आता था कि शायद एक चुम्बन उनके साथ छूकर आगे निकल गया है। एक बार उसने राजकुमारी को, जो अभी अपनी उम्र की चौदहवीं मंज़िल तय कर रही थी, अपने मकान की तीसरी मंज़िल पर स्नानघर में नहाते देखा था। अपने मकान की झिर्रियों से जब सईद ने उसकी तरफ़ देखा, तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि उसका कोई बेहद अछूता विचार दिमाग में से उतर कर सामने आ खड़ा हुआ है। सूर्य की किरणें उसके नंगे शरीर पर फिसल रही थीं। इन किरणों ने उसके गोरे शरीर को सोने के रंग में बदल दिया था। बाल्टी में से जब उसने लोटा निकाला और खड़ी होकर अपने शरीर पर पानी डाला, तो वह सोने की पुतली दिखायी दी। पानी की मोटी-मोटी बूँदें उसके शरीर पर से गिर रही थीं, जैसे सोना पिघल-पिघल कर गिर रहा था।

राजकुमारी पुष्पा और विमला की तुलना में बहुत होशियार थी। उसकी पतली-पतली उँगलियाँ, जो हर समय हिलती रहतीं, जैसे मोजे बुन रही हैं, उसे बहुत पसन्द थीं। उन उँगलियों में चमक थी। और इस चमक की गवाही क्रोशिये और सूई के उन कामों से मिलती थी, जिन्हें वह कई बार देख चुका था।

एक बार राजकुमारी के हाथ का बना हुआ मेज़पोश देखकर उसे ख़याल आया कि

उसने अपने दिल की बहुत-सी धड़कनें भी अनजाने में उसके छोटे-छोटे खानों में गूँथ दी हैं। एक बार जब वह उसके बिल्कुल पास खड़ी थी, उसके दिल में प्रेम करने की इच्छा उभरी। परन्तु जब उसने राजकुमारी की तरफ़ देखा, तो वह उसे मन्दिर की शक्ल में दिखायी दी, जिसके निकट ही वह खुद मस्जिद की शक्ल में खड़ा था...

गली की तमाम लड़कियों की तुलना में यह हिन्दू लड़की अधिक योग्य नज़र आती थी। उसके माथे पर हर समय पड़ी एक त्यौरी उसे बहुत अच्छी लगती थी। उसका माथा देखकर वह दिल-ही-दिल में कहा करता, “जब भूमिका इतनी दिलचस्प है, तो पता नहीं पुस्तक कितनी दिलचस्प होगी”...मगर...आह...यह मगर?...उसके जीवन में यह मगर सचमुच का मगर बनकर रह गया था, जो उसे डुबकी लगाने से हमेशा रोक लेता था।

नम्बर सात फातिमा उर्फ फातो खाली नहीं थी। उसके दोनों हाथ प्रेम में डूबे हुए थे। एक अमजद से, जो वर्कशॉप में लोहे का काम करता था, और दूसरा उसके चचेरे भाई से, जो दो बच्चों का बाप था। फातिमा उर्फ फातो इन दोनों भाइयों से प्रेम कर रही थी, जैसे एक पतंग से दो पेंच लड़ा रही हो। एक पतंग में जब दो और पतंग उलझ जायें, तो काफ़ी दिलचस्पी पैदा हो जाती है। परन्तु यदि इस तिगड्डे में एक और पेंच बढ़ जाये, तो प्रकट है कि यह उलझाव एक भूल-भुलैया बन जायेगा। इस तरह का उलझाव सईद को पसन्द नहीं था। इसके अतिरिक्त फातो जिस तरह के प्रेम में उलझी थी, वह गिरावट वाला था। जब सईद इस तरह के प्रेम की कल्पना करता तो पुरानी प्रेम-कहानियों की बूढ़ी कुटनी पीले कागज़ों के ढेर में से उसकी आँखों के सामने लाठी टेकती हुई आ जाती और उसकी तरफ़ ऐसे देखती, जैसे कहना चाहती हो कि मैं आकाश से तारे तोड़कर ला सकती हूँ, बता, तेरी नज़र किस लड़की पर है, यूँ चुटकियों में तुमसे मिला दूँगी।

नम्बर आठ ज़ुबेदा उर्फ बेदी भरे-भरे हाथ-पाँव वाली लड़की थी। दूर से देखने पर गुँधे हुए मैदे का एक ढेर दिखायी देती थी। गली के एक लड़के ने उसको एक बार आँख मारी। बेचारे ने इस तरह से अपने प्रेम का प्रारम्भ किया था, परन्तु उसको लेने के देने पड़ गये। लड़की ने अपनी माँ को सारी रामकहानी कह सुनायी। माँ ने अपने बड़े लड़के से कान में बात की और अपनी इज़्ज़त की दुहाई दी। इसका परिणाम यह हुआ कि एक आँख मारने के दूसरे दिन शाम को जब अब्दुल गनी साहब घर आये, तो उनकी दोनों आँखें सूजी हुई थीं। कहते हैं कि जुबेदा उर्फ बेदी चिक में से यह तमाशा देखकर बहुत खुश हुई। सईद को अपनी आँखें बहुत प्यारी थीं, इसलिए वह जुबेदा के बारे में एक क्षण के लिए भी सोचना नहीं चाहता था। अब्दुल गनी ने आँख मारकर अपने प्रेम को प्रकट करना चाहा था। सईद को यह तरीका बाज़ारू लगता था। वह यदि उसको अपने प्रेम का संदेश देना चाहता, तो अपनी ज़बान से काम लेता, जो दूसरे दिन ही काट ली जाती। काटने से पहले जुबेदा का भाई कभी न पूछता कि बात क्या है, बस, वह इज़्ज़त के नाम पर छुरी चला देता। उसको इसका ख़याल कभी न आता कि वह खुद छः लड़कियों की इज़्ज़त लूट चुका है, जिनकी बातें वह बड़े मज़े से अपने मित्रों को सुनाया करता था।

नम्बर नौ, जिसका नाम उसे पता नहीं, पशमीने के व्यापारियों के यहाँ नौकर थी। एक

बहुत बड़ा घर था, जिसमें चार भाई रहते थे। यह लड़की, जो कश्मीर में पैदा हुई थी, इन चारों भाइयों के लिए जाड़े में शॉल का काम देती थी। गर्मी के मौसम में वे सब-के-सब कश्मीर चले जाते थे और वह अपनी किसी दूर की रिश्तेदार औरत के पास चली जाती थी। यह लड़की जो औरत बन चुकी थी, दिन में एक-दो बार उसकी नज़रों के सामने से अवश्य गुज़रती थी। और इसको देखकर वह हमेशा यही ख़याल किया करता था कि उसने एक औरत नहीं बल्कि तीन-चार औरतें इकट्ठी देखी हैं। इस लड़की की शादी के बारे में अब चारों भाई चिन्तित थे। वह इस लड़की को बहुत हिम्मती मानता था। वह घर का सारा काम अकेली सँभालती थी और इन चार व्यापारी भाइयों की सेवा में भी लगी रहती थी।

इन चार व्यापारी भाइयों को, जिनके साथ उसका शरीर सम्बन्धित था, वह एक ही नज़र से देखती थी। उसका जीवन, जैसा कि प्रकट है एक अजीब खेल था जिसमें चार आदमी भाग ले रहे थे। उनमें से प्रत्येक को यह समझना पड़ता था कि शेष तीनों मूर्ख हैं। और जब इस लड़की के साथ उनमें से कोई मिल जाता, तो वे दोनों मिलकर यह समझते होंगे कि घर में जितने आदमी रहते हैं, सबके सब अंधे हैं। परन्तु क्या वह खुद अंधी नहीं थी? इस प्रश्न का उत्तर सईद को नहीं मिलता था। यदि वह अंधी होती, तो एक समय में चार आदमियों से सम्बन्ध न जोड़ती। बहुत सम्भव है, वह उन चारों को एक ही समझती हो, क्योंकि स्त्री और पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध एक जैसा ही होता है।

वह अपने जीवन के दिन बड़े मज़े से बिता रही थी। चारों व्यापारी भाई उसे छिप-छिपकर कुछ-न-कुछ अवश्य देते होंगे। क्योंकि पुरुष जब स्त्री के साथ कुछ समय अकेले में बिताता है, तो उसके दिल में उसका मूल्य चुकाने की इच्छा अवश्य पैदा होती है।

सईद उसको अक्सर बाज़ार में शहाबुद्दीन हलवाई की दुकान पर खीर खाते या भाई केसर सिंह फलवाले की दुकान के पास फल खाते देखता था। उसे इन चीज़ों की ज़रूरत थी। और फिर जिस आज़ादी से वह फल और खीर खाती थी, उससे पता चलता था कि वह इनका एक-एक कण हजम करने का इरादा रखती है।

एक बार सईद शहाबुद्दीन की दुकान पर फालूदा पी रहा था और सोच रहा था कि इसे कैसे हजम कर सकेगा कि इतने में वह आयी और चार आने की खीर में एक आने की रबड़ी डलवाकर दो मिनटों में सारी प्लेट चट कर गयी। यह देखकर सईद को ईर्ष्या हुई। जब वह चली गयी, तो शहाबुद्दीन के मैले होंठों पर एक मैली-सी मुस्कान उभर आयी, और उसने किसी को भी, जो सुन ले, कहा—"साली मज़े कर रही है।"

यह सुनकर उसने उस लड़की की तरफ़ देखा, जो कूल्हे मटकाती फलों की दुकान के पास पहुँच चुकी थी और शायद भाई केसर सिंह की दाढ़ी का मज़ाक उड़ा रही थी...वह हर समय खुश रहती थी। परन्तु उसको देखकर सईद को बहुत दुख होता था। जाने उसके दिल में यह इच्छा क्यों पैदा होती थी कि वह खुश न रहे।

सन् 1930 के शुरू तक वह इस लड़की के सम्बन्ध में यही निर्णय लेता रहा कि इससे प्रेम नहीं किया जा सकता।

दो

सन् इकतीस के शुरू होने में रात के कुछ ठंडे घण्टे शेष थे। सईद ठंड अधिक होने के कारण अपनी रजाई में काँप-सा रहा था। वह पैंट और कोट पहने हुए ही लेटा हुआ था। परन्तु इसके बावजूद ठंड की लहरें उसकी हड्डियों तक पहुँच रही थीं। वह उठ खड़ा हुआ और अपने कमरे की हरी रोशनी में, जो ठंड को बढ़ा-सी रही थी, उसने ज़ोर-ज़ोर से टहलना शुरू कर दिया, ताकि खून कुछ गर्म हो जाये।

थोड़ी देर यूँ चलने-फिरने के बाद जब उसके अन्दर गर्मी पैदा हुई, तो वह आरामकुर्सी पर बैठ गया और सिगरेट सुलगाकर अपना दिमाग टटोलने लगा। उसका दिमाग क्योंकि बिल्कुल खाली था, इसलिए उसकी सुनने की शक्ति इस समय बढ़ गयी थी। कमरे की सारी खिड़कियाँ बन्द थीं, परन्तु वह बाहर गली में हवा की मद्धम गुनगुनाहट बड़ी आसानी से सुन रहा था। इसी गुनगुनाहट में उसे लोगों की आवाज़े सुनायी दीं। एक दबी-दबी चीख दिसम्बर की अन्तिम रात की चुप्पी में उभरी। फिर किसी की मिन्नतें करने जैसी काँपती-सी आवाज़ आयी। वह उठ खड़ा हुआ और उसने खिड़की की दराज में से बाहर की तरफ़ देखा।

वही...वही लड़की यानी व्यापारियों की नौकरानी बिजली के लैम्प के नीचे खड़ी थी, केवल एक सफ़ेद बनियान में। बिजली की सफ़ेद रोशनी में ऐसा मालूम होता था कि उसके शरीर पर बर्फ़ की एक पतली-सी तह जम गयी है। उस बनियान के नीचे उसकी छातियाँ नारियलों की तरह लटकी हुई थीं। वह इस तरह से खड़ी हुई थी, जैसे अभी-अभी कुश्ती खत्म की हो। इस हालत में उसे देखकर सईद के साफ़ विचारों को धक्का-सा लगा।

इतने में किसी पुरुष की भिंची हुई आवाज़ आयी—"खुदा के लिए अन्दर चली आओ...कोई देख लेगा तो आफत ही आ जायेगी।"

जंगली बिल्ली की तरह गुर्रा कर लड़की ने कहा—"नहीं आऊँगी...बस एक बार जो कह दिया, नहीं आऊँगी।"

सबसे छोटे व्यापारी की आवाज़ आयी—"खुदा के लिए ऊँचा न बोलो...कोई सुन लेगा राजो..."

तो इसका नाम राजो था।

राजो ने अपनी चुटिया को झटका देकर कहा—"सुन ले, खुदा करे कोई सुन ले...और अगर तुम ऐसे ही मुझे अन्दर आने के लिए कहते रहे, तो मैं खुद मुहल्ले भर को जमा कर सब कुछ कह दूँगी...समझे..."

राजो सईद को नज़र आ रही थी। परन्तु जिससे वह यह सब कह रही थी, वह नज़रों से ओझल था। उसने बड़े छेद में से राजो की तरफ़ देखा तो उसके शरीर में झुरझुरी-सी उठ आयी। यदि वह सारी की सारी नंगी होती तो तब भी उसके विचारों को इतना धक्का न लगता। उसके शरीर के कई भाग नंगे थे, जो दूसरे भागों को भी बेपरदा कर रहे थे। राजो बिजली के खम्भे के नीचे खड़ी थी। सईद को ऐसा महसूस हुआ कि औरत के सम्बन्ध में उसके तमाम भाव अपने कपड़े उतार रहे हैं।

राजो की मांसल बाँहें, जो कन्धों तक नंगी थीं, अजीब तरह से लटकी हुई थीं, मरदाना बनियान के खुले और गोल गले में से उसकी डबलरोटी जैसी मोटी और नर्म छातियाँ कुछ इस तरह से बाहर झाँक रही थीं, जैसे सब्ज़ी की टूटी हुई टोकरी में से गोश्त के टुकड़े दिखायी दे रहे हों। अधिक पहनने से घिसी हुई पतली बनियान का निचला घेरा अपने आप ऊपर को सिमट गया था और उसकी नाभि का गड्ढा उसके खमीरे आटे जैसे फूले हुए पेट पर यूँ दिखलायी देता था, जैसे किसी ने वहाँ उँगली से दबा दिया हो।

यह दृश्य देखकर सईद का मूड खराब हो गया। उसने चाहा कि खिड़की से हटकर अपने बिस्तर की तरफ़ चला आये और सब कुछ भूल-भालकर सो जाये, परन्तु न जाने क्यों वह उस छेद पर आँख जमाये खड़ा रहा। राजो को इस हालत में देखकर उसके दिल में काफ़ी घृणा पैदा हो गयी थी, शायद इसी घृणा के कारण वह दिलचस्पी ले रहा था।

व्यापारी के सबसे छोटे लड़के ने, जिसकी आयु तीस वर्ष के लगभग होगी एक बार फिर मिन्नत के ढंग से कहा, "राजो, खुदा के लिए अन्दर चली आओ। मैं तुमसे वादा करता हूँ कि फिर कभी नहीं सताऊँगा...लो, अब मान जाओ...देखो, खुदा के लिए अब मान लो। यह तुम्हारे बगल में वकीलों का मकान है, उनमें से किसी ने देख लिया, तो बड़ी बदनामी होगी।"

राजो चुप रही। परन्तु थोड़ी देर के बाद बोली, "मुझे मेरे कपड़े ला दो। बस, अब मैं तुम्हारे यहाँ नहीं रहूँगी। मैं तंग आ गयी हूँ। मैं कल से वकीलों के घर नौकरी कर लूंगी...समझे!...अब अगर तुमने मुझसे कुछ कहा, तो खुदा की कसम शोर मचाना शुरू कर दूँगी...मेरे कपड़े चुपचाप लाकर दे दो..."

व्यापारी के लड़के की आवाज़ आयी, "लेकिन तुम रात कहाँ काटोगी?"

राजो ने कहा, "जहन्नुम में, तुम्हें इससे क्या? जाओ, तुम अपनी बीवी की बगल गर्म करो। मैं कहीं-न-कहीं सो जाऊँगी।" उसकी आँखों में आँसू थे...आँसू...वह सचमुच रो रही थी।

छेद पर से आँख हटाकर सईद पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया और सोचने लगा। राजो की आँखों में आँसू देखकर उसे एक अजीब तरह का धक्का लगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस धक्के के साथ वह घृणा भी लिपटी हुई थी, जो राजो को इस हालत में देखकर सईद के दिल में पैदा हुई थी। परन्तु नर्म-दिल होने के कारण वह पिघल-सा गया। राजो की आँखों में आँसू देखकर उसका मन चाहा कि उठकर उसे दिलासा दे।

राजो की जवानी के चार मूल्यवान वर्ष व्यापारी भाइयों ने मामूली चटाई की तरह इस्तेमाल किये थे। इन वर्षों में चारों भाइयों के पैरों के निशान कुछ इस तरह आपस में मिल-जुल गये थे कि उनमें से अब किसी को इस बात का डर ही नहीं रहा था कि कोई उनके पैरों के निशान पहचान लेगा। और राजो के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह न अपने पैरों के निशान देखती थी, न दूसरों के। उसे बस चलते जाने की धुन थी, किसी भी तरफ़। मगर अब शायद उसने मुड़ कर देखा था...मुड़ कर उसने क्या देखा था जो उसकी आँखों में आँसू आ गये...यह सईद को मालूम नहीं था।

जो चीज़ मालूम न हो, उसको मालूम करने की इच्छा शायद हर व्यक्ति के दिल में पैदा

होती है। कुर्सी पर बैठा सईद देर तक अपनी जानकारियों को उलट-पलट करके सोचता रहा। और जब उठकर उसने कुछ और देखने के लिए छेद पर आँख जमायी, तो राजो वहाँ नहीं थी। देर तक वह उधर ही देखता रहा। परन्तु उसे लैम्प की ठंडी रोशनी, गली के ऊँचे-नीचे फ़र्श, और गन्दी नाली के सिवा, जिसमें पालक के ढेर सारे डंठल पड़े थे और कुछ नज़र नहीं आया।

बाहर सन् तीस की अन्तिम रात दम तोड़ रही थी, और उसका दिल धक-धक कर रहा था।

राजो कहाँ है...क्या अन्दर चली गयी है...क्या मान गयी है? परन्तु सवाल है कि वह किस बात पर झगड़ी थी।

राजो के काँपते हुए नथुने अभी तक सईद को नज़र आ रहे थे। निश्चय ही उसके और व्यापारी के छोटे लड़के के बीच, जिसका नाम महमूद था, किसी बहुत बड़ी बात पर झगड़ा हुआ था। तभी तो वह दिसम्बर की खून जमा देने वाली रात में सिर्फ़ एक बनियान और सलवार के साथ बाहर निकल आयी थी और अन्दर जाने का नाम तक न लेती थी।

जब सईद सोचता कि उनके बीच झगड़े का कारण...परन्तु वह इस कारण पर गौर नहीं करना चाहता था। कितना भयानक दृश्य उसकी आँखों के सामने आ जाता। परन्तु वह सोचता कि यह बात झगड़े का कारण नहीं होगी, क्योंकि उन दोनों को तो इसकी आदत थी। एक ज़माने से राजो इन व्यापारी भाइयों को बड़े ढंग से एक ही मेज़ पर खाना खिला रही थी। परन्तु अब अचानक क्या हो गया था? राजो के ये शब्द उसके कानों में मक्खी की तरह भनभना रहे थे...“जहन्नुम में...तुम्हें इससे क्या? जाओ, तुम अपनी बीवी की बगल गर्म करो...मैं कहीं-न-कहीं सो जाऊँगी” इन शब्दों में दर्द था।

उसको दुःखी देखकर सईद के एक अनजाने भाव को शान्ति ज़रूर पहुँची थी, परन्तु उसके साथ ही उसके दिल में दया का भाव भी जन्मा था। किसी औरत से उसने आज तक सहानुभूति प्रकट नहीं की थी। वह उसको दुःखी देखना चाहता था ताकि वह उससे सहानुभूति प्रकट कर सके...। वह उससे सहानुभूति प्रकट कर सकता था, इसलिए कि वह उसको सह लेती। यदि वह गली की किसी और लड़की से सहानुभूति प्रकट करता, तो अनिवार्यतः बहुत बड़ी मुसीबत हो जाती, क्योंकि उस सहानुभूति का मतलब कुछ और ही लिया जाता।

राजो के सिवा गली की तमाम लड़कियाँ ऐसा जीवन बिता रही थीं, जिसमें ऐसे क्षण बहुत ही कम आते हैं, जब उनसे विशेष तरह की सहानुभूति की जा सकती है और यदि ऐसे क्षण आते हैं, तो वे तुरन्त ही उनके सीनों में दफन हो जाते हैं। अगर मुहब्बत की कोई चिता तैयार होती है, तो आस-पास के लोग उस पर राख डाल देते हैं कि चिंगारियाँ न उठें।

सईद सोचता कि यह कितना कष्टदायी जीवन है। किसी को अनुमति नहीं कि वह अपने जीवन के गड्ढे दूसरों को दिखाये। वे लोग, जिनके कदम मजबूत नहीं उनको अपनी लड़खड़ाहटें छिपानी पड़ती हैं क्योंकि इसका रिवाज़ है। हर व्यक्ति को एक ज़िन्दगी अपने लिए और एक दूसरों के लिए गुज़ारनी होती है। आँसू भी दो तरह के होते हैं, ठहाके भी दो

तरह के। एक वह आँसू, जो ज़बर्दस्ती आँखों से निकालने पड़ते हैं और एक वह, जो अपने आप निकलते हैं। एक ठहाका वह है जो अकेले में ही छोड़ा जा सकता है, दूसरा वह है, जो विशेष तरीके पर पाबंदी से गले से निकालना पड़ता है।

सईद ठीक ही सोचता था कि राजो की सदा मुस्कुराती आँखों में आँसू नज़र आयें और वह इन आँसुओं को सभ्यता की दीवारें तोड़कर अपनी उँगलियों से छुए। वह अपने आँसुओं का स्वाद अच्छी तरह जानता था, परन्तु वह दूसरों की आँखों के आँसू भी चखना चाहता था। विशेष रूप से किसी औरत के आँसू। उसकी यह इच्छा तेज़ हो गयी थी।

सईद को विश्वास था कि यदि वह राजो के निकट होना चाहेगा तो वह जंगली घोड़ी की तरह बिदकेगी नहीं। राजो गिलाफ-चढ़ी औरत नहीं थी। वह जैसी भी थी, दूर से नज़र आ जाती थी। वह बिल्कुल साफ़ थी। उसकी भद्दी और मोटी हँसी, जो अक्सर उसके मटमैले होंठों पर बच्चों के टूटे हुए घरौंदे की तरह नज़र आती थी, असली हँसी थी। उसकी उन्हीं स्वस्थ और हमेशा हिलती रहने वाली आँखों ने अब जो आँसू उगले थे तो उनमें कोई बनावट नहीं थी।

राजो को सईद एक अर्से से जानता था। उसकी आँखों के सामने उसके चेहरे की रेखाएँ बदली थीं और वह देखते ही देखते लड़की से औरत बन गयी थी। क्योंकि उसके अन्दर एक की बजाय तीन-चार औरतें थीं, यही कारण है कि चार व्यापारी भाइयों को वह भीड़ नहीं समझती थी। यह...यह भीड़ सईद को पसन्द नहीं थी, इसलिए कि एक औरत के साथ उसको एक पुरुष देखने की ही आदत थी। परन्तु यहाँ राजो के मामले में उसे अपनी पसन्द और नापसन्द के बीच रुक जाना पड़ता था, क्योंकि भिन्न प्रकार के विचार उसके दिमाग में जमा हो जाते और किसी समय उसे न चाहते हुए भी राजो को शाबाशी देनी पड़ती। यह शाबाशी किस बात की थी, इसके सम्बन्ध में वह निश्चित रूप में कुछ नहीं कह सकता। इसलिए कि विचारों की भीड़-भाड़ में वह इस भाव को पहचानने में हमेशा असफल रहा था जो इस दर्द का कारण हुआ करता है।

गली के सब समझदार लोग राजो के बारे में जानते थे। मौसी मख्तो गली की सबसे बूढ़ी औरत थी। उसका चेहरा ऐसा था कि जैसे पीले रंग के सूत की अँटियाँ बड़ी असावधानी से नोंचकर एक-दूसरे में उलझा दी गयी हों। यह बुढ़िया भी जिसकी आँखों को बहुत कम दिखायी देता था और जिसके कान लगभग बहरे थे, राजो से चिलम भरवाकर उसकी पीठ पीछे अपनी बहू से या जो कोई उसके पास बैठा हो, कहा करती थी, “इस लौंडिया को इस घर में ज़्यादा न आने दिया करो, वरना किसी दिन अपने खसमों से हाथ धो बैठोगी।” यह कहते समय शायद उस बुढ़िया की तमाम झुर्रियों में उसकी जवानी की याद रेंग जाती थी।

राजो की अनुपस्थिति में सब उसको बुरा कहते थे, और उन गुनाहों के लिए खुदा से माफी माँगते थे जो शायद आगे चलकर उनसे हो जायें। औरतें जब राजो की चर्चा करती थीं, तो अपने को बहुत ऊँचा सिद्ध करती थीं, और दिल-ही-दिल में यह सोचकर फख्र महसूस करती थीं कि उन्हीं के कारण औरत की इज़्ज़त बची हुई है।

सब राजो को बुरा समझते थे। परन्तु अजीब बात है कि उसके सामने आज तक

किसी ने घृणा प्रकट नहीं की। बल्कि सब प्यार-मुहब्बत से उसके साथ पेश आते। परन्तु इस अच्छे व्यवहार का कारण उसका सदा खुश रहना और दूसरों को प्रभावित कर लेने का तरीका ही था। व्यापारियों के घर के काम-काज से छुट्टी पाकर जब कभी किसी पड़ोसी के यहाँ जाती, तो वहाँ बेकार गप नहीं लगाती थी। कभी किसी के बच्चे के पोतड़े बदल दिये। कभी किसी की चोटी गूँथ दी। कभी किसी के सर में से जुएँ निकाल दीं। वह बिना काम के कहीं बैठ ही नहीं सकती थी। उसके मोटे और भद्दे हाथों में बेहद फुर्ती थी और उसका दिल हर समय इस ताक में रहता था कि किसी को खुश करने की कोशिश कर सके।

राजो दूसरों की सेवा में कई-कई घंटे लगा देती थी। परन्तु शाबाश या धन्यवाद सुनने के लिए एक मिनट भी प्रतीक्षा नहीं करती थी। मौसी मख्तो की चिलम भरती, सलाम किया और चल दी। मुसन्नफ़ साहब को बाज़ार से फालूदा लाकर दिया, उसके बच्चे को थोड़ी देर गोद में खिलाया और चली गयी। गुलाम मुहम्मद की बुढ़िया दादी की पिंडलियाँ सहलायीं और उसकी दुआएँ लिये बिना चल दी।

यह गठिया की मारी बुढ़िया, जो अपनी उम्र की ऐसी मंज़िल पर पहुँच गयी थी, जहाँ उसका अस्तित्व होने या न होने के बराबर था और जिसे गुलाम मुहम्मद हुक्के का बेकार नेचा समझता था, वह राजो के हाथों एक अजीब तरह का आराम पाती थी। उसकी अपनी बेटियाँ उसके पाँव दाबती थीं, मगर उनकी मुट्ठियों में वह रस नहीं था जो राजो के हाथों में था। जब राजो उसकी पिंडलियाँ सहलाती तो वह उसे फरिश्ता ही मानती। परन्तु उसके चले जाने के बाद तुरन्त ही कहा करती—"हरामजादी ने इसी तरह पैर दबा-दबाकर उन सौदागर बच्चों को फाँसा होगा।"

विचार जाने सईद को कहाँ-से-कहाँ ले गये। अचानक वह चौंका, और छेद पर आँख जमाकर उसने फिर बाहर की तरफ़ देखा। बिजली की रोशनी गली में ठिठुर रही थी। रात की खामोश गुनगुनाहट सुनायी दे रही थी परन्तु राजो वहाँ नहीं थी।

उसने खिड़की का दरवाज़ा खोला और बाहर झाँककर देखा। इस सिरे से उस सिरे तक रात की ठंडी चुप्पी छायी थी। ऐसा लगता था कि लालटेन के नीचे कभी कोई खड़ा ही नहीं हुआ था। पीली रोशनी में अजीब तरह की उदासी घुली हुई थी। उसका दिल भर आया।

सईद ने खिड़की का दरवाज़ा बन्द कर दिया। सोने के लिए उसने रजाई अपने ऊपर की तो एक बार ठंड उसकी हड्डियों तक पहुँचने लगी।

तीन

नया साल धूप सेंक रहा था।

सईद अभी तक बिस्तर में ही लेटा था। लेटा ही नहीं था, बल्कि गहरी नींद सो रहा था। वह रात भर जागता रहा था। कहीं सात बजे के आस-पास उसकी आँख लगी थी। यही कारण है कि ग्यारह बजने पर भी उसने जागने का नाम नहीं लिया था।

सिरहाने पड़ी हुई घड़ी ने बारह बार टन-टन की। परन्तु धातु की सी आवाज़ की

बजाय उसके कानों ने राजो की आवाज़ सुनी, जैसे बड़ी दूर से आ रही हो। वह एकदम जाग गया। अचानक नींद से उठने पर उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे वह घबराकर उठा है और उसका रेशमी पाजामा सँभालने के बावजूद नीचे फिसल गया है। उसकी हल्की-फुल्की नींद इसी तरीके से फिसल गयी थी। इस बौखलाइट में और भी बढ़ोतरी हो गयी, जब उसने राजो को अपने सामने देखा...एकदम उसकी नज़रें खिड़की की तरफ़ उठीं, राजो की तरफ़ मुड़ीं...वहाँ से दरवाज़े की तरफ़ घूमीं और फिर-फिराकर राजो पर जम गयीं।

राजो ने घड़ी की तरफ़ देखा और कहा..."मियाँ जी, बारह बज गये हैं। बीबी जी आपको बुलाती हैं। चाय तैयार है..."

यह कहकर राजो ने घड़ी उठायी और उसमें कूक भरना शुरू कर दी। कूक भरने के बाद उसने तिपाई पर से पानी का गिलास उठाया और चली गयी।

इसका मतलब क्या है? क्या राजो व्यापारियों की नौकरी छोड़कर यहाँ आ गयी है? सईद की समझ में न आता था कि बात क्या है। उसकी माँ बड़ी कृपालु थी। वह जानती थी कि राजो का चरित्र अच्छा नहीं परन्तु इसके बावजूद वह उसे बुरा नहीं कहती थी। दिल का हाल खुदा बेहतर जानता है। परन्तु जो सामने था, उससे सईद ने यही परिणाम निकाला कि उसकी माँ एक दयालु औरत है। उसकी माँ किसी को बुरा नहीं कहा करती थी। जब कभी वह सुनती कि फलाँ-फलाँ आदमी ने चोरी की है, तो कहा करती, "बेचारे को ज़रूरत ने मजबूर किया होगा।"

राजो की बुराइयाँ सुनकर उसने कई बार कहा, "किसी ने आँख से तो उसकी बुराइयाँ नहीं देखीं। क्या पता कि यह सब झूठ ही हो। अल्लाह से हर वक़्त डरना चाहिए। हम खुद बहुत गुनाहगार हैं।"

सईद की माँ अपने को दुनिया की सबसे बड़ी गुनाहगार औरत समझती थी। एक बार सईद ने मज़ाक में अपनी माँ से कहा था, "बीबी जी, आप हर वक़्त कहती रहती हैं, मैं गुनाहगार हूँ...मैं गुनाहगार हूँ, कहीं ऐसा न हो कि फरिश्ते आपको सचमुच गुनाहगार समझकर दोजख में धकेल दें। हाँ, यह तो बताइये, क्या उस वक़्त भी आप यही कहे जायेंगी, मैं गुनाहगार हूँ...मैं गुनाहगार हूँ।"

सईद बहुत देर तक सोच-विचार के बाद इस परिणाम पर पहुँचा, क्योंकि मेरी माँ नमाज पढ़ने और रोज़े रखना पसन्द करती है, इसलिए अकारण उसे अपने आप को गुनाहगार समझना पड़ता है। और क्योंकि अब उसे नमाज़ और रोज़े की आदत हो गयी है, इसलिए हर समय गुनाह का ख़याल करना भी उसकी आदत में शामिल हो गया है।

सईद गुनाह और पुण्य के झगड़े में अपने दिमाग को फँसाने ही वाला था कि उसे राजो का ख़याल आया, जो अभी-अभी उसके कमरे से बाहर गयी थी—'दो बातें हो सकती हैं...या तो वह व्यापारियों की नौकरी छोड़कर हमारे यहाँ चली आयी है और मेरी माँ ने कृपा करके उसे अपने पास रख लिया है, या फिर व्यापारियों ही के पास है और वैसे ही इधर निकल आयी है और जैसा कि उसकी आदत है, शीशे का गिलास उठाकर ले गयी है, जो तिपाई पर पड़ा था, परन्तु रात वाली घटना...।' उसने राजो के चेहरे पर उस घटना के चिह्न देखने की

चेष्टा की थी, परन्तु वह कोरी स्लेट की तरह साफ़ था।

बिना किसी कारण के एकदम सईद का दिल घृणा से भर गया। उसे राजो से घृणा थी! अपनी कल्पना में वह राजो का चित्र खींचता था, मगर यह सोचकर उसे धक्का-सा लगता था, जब वह देखता कि राजो का पल्लू चार पुरुषों से बँधा है। इससे पहले भी बड़े सोच-विचार के बाद वह इसी परिणाम पर पहुँचा था कि उसे राजो से घृणा है। परन्तु यह चीज़ उसे बहुत सताती थी कि राजो को अपने आप से घृणा नहीं है, वह अपने आपसे बहुत खुश थी।

एक बार सईद से ऐसी हरकत हो गयी, जो कमीनेपन की सीमा तक बुरी थी। उसके जमीर ने जब उसको खरी-खरी सुनायी, तो वह कई दिनों नहीं, कई महीनों तक अपने आपसे नाराज़ रहा। उसका ख़याल था कि जिस तरह लोग बुरी हरकतों पर दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, इसी तरह ऐसे अवसरों पर वे अपने आप से भी ऐसा ही सलूक करते हैं। परन्तु राजो या तो अपने आप से बेखबर थी, या उसके अन्दर वह भाव ही नहीं था, जो तुला का काम देता है।

इस लड़की के बारे में सईद ने इतना सोचा कि अब और सोचने से ही उसे क्रोध आता था। वह उसके बारे में बिल्कुल सोचना नहीं चाहता था, इसलिए कि उसमें ऐसी कोई अनोखी बात ही नहीं थी, जिस पर ध्यान दिया जाये। वह एक बहुत ही गिरी हुई औरत थी। सईद उठ खड़ा हुआ और उसने इस तरह से राजो को अपने दिमाग से झटका, जैसे किसी घोड़े ने अपने शरीर से एक ही झुरझुरी से सारी मक्खियाँ उड़ा दी हों। उसने रात भर जागते रहने के बावजूद अब अपने को ताज़ा महसूस किया।

सूर्य की किरणें खिड़कियों के छेदों में से फँस-फँसकर कमरे के अन्दर प्रवेश कर ऐसी रोशनी पैदा कर रही थीं, जो बनावटी-सी लगती थी। उसने खिड़कियाँ न खोलीं और मेज़ के पास आरामकुर्सी पर बैठ गया। अभी वह अपने को कुर्सी में फैलाने की कोशिश ही कर रहा था कि राजो आ गयी। कुछ कहे बिना उसने एक-एक करके सब खिड़कियाँ खोलीं और झाड़-पोंछ कर दी। सईद उसकी इन हरकतों को ध्यान से देखता रहा। राजो के मोटे-मोटे हाथों की हरकत में कोई खूबसूरती नहीं थी। शीशे के फूलदान को उसने उसी ढंग से साफ़ किया, जिस तरह से लोहे के कलमदान को किया था। झाड़न से उसने तस्वीरों की धूल पोंछी, आतिशदान पर रखी हुई तमाम चीज़ें साफ़ कीं, परन्तु कोई आवाज़ न पैदा होती थी। वह चलती थी, तो उसके कदमों की थाप सुनायी नहीं देती थी और जब बातें करती थी, तो ऐसा मालूम होता था कि हर बोल रुई के नर्म-नर्म गालों में लिपटा है। कान के परदों से उसकी आवाज़ टकराती नहीं थी, केवल छू-सी जाती थी। उसकी हर हरकत, उसकी हर आवाज़ ने रबड़सोल जूते पहन रखे थे। सईद उसे देखता रहा...नहीं, उसे सुनने की कोशिश करता रहा।

राजो ने गहरे हरे रंग का ऊनी पुलोवर पहन रखा था, जो कुहनियों पर से फट रहा था। यह पुलोवर शायद उसे व्यापारी के सबसे बड़े बेटे ने दिया था। उसके नीचे गर्म कपड़े का कुर्ता था, जिस पर जगह-जगह मैल के गोल-गोल दाग थे। खादी की सलवार अधिक इस्तेमाल होने के कारण सलवार लगती ही नहीं थी। यह मालूम होता था कि उसने अपनी

टाँगों पर एक गहरे रंग की चादर लपेट रखी थी। बहुत अधिक ध्यान से देखने पर इस सलवार के पायंचे नज़र आते थे, जो इतने खुले थे कि पैर गुम हो गये थे।

सईद उसके पायंचों की तरफ़ देख रहा था कि राजो मुड़ी और यह कहकर अपने काम में लग गयी—"आपकी चाय तैयार है। बीबी जी आपकी राह देख रही हैं।"

सईद का मन नहीं चाहता था कि उससे बोले, परन्तु जाने क्यों उसने पूछ लिया—"चाय बनाने के लिए उनसे किसने कहा था?"

राजो ने पलटकर आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखा, "आपने...अभी-अभी तो आपने कहा था कि हाँ, तैयार की जाये..."

सईद कुर्सी पर से बिना किसी झिझक के उठ खड़ा हुआ। उसने कभी ऐसा नहीं कहा था, "सुबह की चाय साढ़े बारह बजे कौन पीता है। अब नाश्ता करूँगा, तो दोपहर का खाना रात ही को खाऊँगा...और रात का खाना..."

राजो हँस पड़ी..."रात का खाना...सुबह को..."

सईद तुरन्त गम्भीर हो गया, "इसमें हँसने की कौन-सी बात है? जाओ, बीबी जी से कह दो, मैं चाय नहीं पिऊँगा। खाना खाऊँगा। खाना तैयार है क्या?"

राजो अपने चेहरे से चाहते हुए भी हँसी को पूरी तरह से दूर न कर पायी। उसने धीरे से उत्तर दिया, "जी हाँ, तैयार है...मैं अभी बीबी जी से कह देती हूँ कि आप नाश्ता नहीं करेंगे, खाना खायेंगे," यह कहकर वह तेज़ी से दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी।

"देखो", सईद ने उसे रोका, "बीबी जी से कहना कि...मैं नाश्ता नहीं करूँगा, खाना खाऊँगा...मैं रात भर जागता रहा हूँ। समझ में नहीं आता, मेरी नींद को क्या हो गया था। गली में शोर हो, तो मुझे बिल्कुल नींद नहीं आती। रात बाहर खुदा जाने, क्या गड़बड़ हो रही थी...हाँ, तो मैं नाश्ता नहीं करूँगा, मगर चाय का एक प्याला पी लूँगा...और उसके बाद खाना खाऊँगा...यानी ठीक खाने के समय पर...बीबी जी कहाँ हैं? रसोईघर में हैं या ऊपर धूप सेंक रही हैं। लेकिन ठहरो, मैं मालूम कर लूँगा। लेकिन तुम...तुम यहाँ क्या कर रही हो? मेरा मतलब यह है कि मेरे कमरे की चीज़ें साफ़ करने के लिए तुमसे किसने कहा था? यानी तुम यहाँ कैसे आ गयी हो...तुम तो सौदागरों के यहाँ थीं...।"

एक ही साँस में सईद इतनी बातें कह गया और चोर नज़रों से उसके चेहरे की तरफ़ देखता रहा। सुर्खी की एक हल्की-सी झलक उसको नज़र आयी थी, जब उसने बाहर गली में गड़बड़ की तरफ़ संकेत किया था। परन्तु उसके बाद वह उसके चेहरे पर कोई परिवर्तन न देख सका। राजो ने कोई उत्तर न दिया और कमरे से बाहर चली गयी। जैसे उससे कुछ पूछा ही नहीं गया था। इस पर सईद को बहुत क्रोध आया, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैंने कुछ पूछने के लिए उससे बातें नहीं कीं, बल्कि ऐसे ही कुछ कहता चला गया हूँ। परन्तु मेरी इच्छा थी, इच्छा क्या, मुझे पूरा विश्वास था कि वह घबरा जायेगी और रात की घटना उसके चेहरे पर फूट निकलेगी। मगर यह औरत है या...या क्या है?"

सईद उसके सम्बन्ध में ग़ौर करना नहीं चाहता था परन्तु कोई-न-कोई बात ऐसी अवश्य हो जाती थी कि उसे सोच-विचार करना पड़ जाता था। यह औरत उसके जीवन में

अकारण दाखिल होती चली जा रही थी। यह बात सईद को पसन्द नहीं थी। इसलिए उसने निर्णय किया कि वह उसे अपने मकान में नहीं रहने देगा।

जब वह अपनी माँ से रसोई में मिला, तो वह चाहते हुए भी राजो के बारे में कोई बात न कर सका। उसकी माँ ने, जो सईद से बहुत प्यार करती थी, चाय का प्याला बनाकर कहा, “बेटा, रात तेरे दुश्मनों को नींद क्यों नहीं आयी? मुझे राजो ने अभी कहा है कि गली में कुछ गड़बड़ थी इसलिए तू सो नहीं सका...मैंने तो कुछ भी नहीं सुना...मैं कहती हूँ, अगर तू इधर मेरे कमरे में सो जाया करे तो क्या हरज है, मुझे कई-कई बार रात में उधर तेरी तरफ़ आना पड़ता है। मेरे पास सोयेगा, तो यह मेरी बेचैनी तो दूर हो जायेगी...ले बाबा मैं कुछ नहीं कहती, जहाँ चाहे सो, अल्लाह तेरा निगहबान रहे...ले, चाय पी...मैं तुझसे कुछ नहीं कहती...”

सईद दरअसल राजो के बारे में कुछ कहने वाला था। और उसकी माँ ने समझा कि वह हमेशा की तरह यह कहेगा—“बीबी जी, आप तो ख़ामख़्वाह परेशान होती रहती हैं। मैं अकेला ही सोने का आदी हूँ”—इसलिए वह चुप ही रहा। और उधर उसकी माँ ने उसकी ज़िद पर अधिक बहस न की। राजो चूल्हे के पास खामोश बैठी रही।

चार

सईद के घर में राजो को नौकरी करते एक महीना बीत गया, मगर इस समय में चाहते हुए भी वह अपनी माँ से नहीं कह सका कि इसे निकाल दिया जाये। अब फरवरी के शुरू के दिन थे। ठंड धीरे-धीरे कम हो रही थी। पंजाब में फरवरी का महीना बहुत सुहाना होता है। सुबह जब वह सैर के लिए निकलता, तो हल्की-फुल्की ठंडी हवा बहुत देर तक पीता रहता...उसे हर चीज़ खूबसूरत लग रही थी।

इन्हीं दिनों की बात है। एक दिन जब वह कम्पनी बाग की सैर से घर वापस आया, तो उसे कुछ थकान महसूस हुई। बिस्तर में लेटते ही उसे बुखार आ गया। और फिर इतने ज़ोर का जुकाम हुआ कि नाक मुर्दा सी हो गयी। दूसरे दिन खाँसी शुरू हुई। तीसरे दिन सीने में दर्द और धीरे-धीरे बुखार 105 डिग्री तक पहुँच गया। उसकी माँ ने पहले दिन ही डॉक्टर को बुलवाया था, मगर उसकी दवा से कोई लाभ नहीं हुआ।

यह अजीब बात है कि जब सईद को तेज़ बुखार चढ़ता, तो उसका दिमाग असाधारण रूप में तेज़ हो जाता। ऐसी-ऐसी बातें उसके दिमाग में आतीं जो वैसे कभी सोच ही नहीं सकता था। उसके दिल और दिमाग में एक नया कोण पैदा हो जाता। जिसकी कल्पना वह साधारण स्थिति में नहीं कर सकता था। उसे ऐसा मालूम होता कि उसके तमाम विचार सान पर चढ़कर नुकीले और तीखे हो गये हैं।

बुखार की हालत में वह दुनिया की तमाम समस्याओं पर ग़ौर करता, एक नयी रोशनी में, एक नये अनोखे अन्दाज़ में। वह दुनिया की निकम्मी से निकम्मी चीज़ पर गौर करता। च्यूंटियों को उठाकर वह आसमान के तारों के साथ चिपका देता। आसमान के तारों को

तोड़कर ज़मीन पर बिखेर देता।

बुखार 105 डिग्री से कुछ ऊपर हुआ, तो सईद का दिमाग इतिहास में उलझ गया। सैकड़ों पृष्ठ देखते-देखते ही उलट गये। तमाम प्रसिद्ध घटनाएँ ऊपर तले उसके खट-खट करते दिमाग में से गुज़र गयीं। बुखार कुछ और ऊपर चढ़ा, तो पानीपत की लड़ाइयाँ ताजमहल की चिकनी इमारत में गड्डमड्ड हो गयीं और कुतुब साहब की लाट कटी हुई बाँह में बदल गयी। फिर धीरे-धीरे चारों ओर धुँध ही धुँध छा गयी।

एकदम ज़ोर का धमाका हुआ, और उस धुँध में से महमूद गज़नवी बिजली की तेज़ी वाले घोड़े पर सवार अपने लश्कर समेत बाहर निकला...और महमूद गज़नवी का घोड़ा सोमनाथ के जगमग-जगमग करते मन्दिर के सुनहरे फाटक के सामने रुका।

महमूद गज़नवी ने पहले लूटे हुए हीरों के ढेर की तरफ़ देखा। उसकी आँखें तमतमा उठीं। फिर उसने सोने की मूर्ति की तरफ़ देखा, और उसका दिल धड़कने लगा...'राजो'...महमूद गज़नवी ने सोचा...'यह कम्बख़्त राजो कहाँ से आ गयी? उसकी सल्तनत में इस नाम की औरत कौन थी? क्या वह उसे जानता है, क्या वह उससे मुहब्बत करता है?' मुहब्बत का ख़याल आते ही महमूद गजनवी ने ज़ोरदार ठहाका लगाया। महमूद गज़नवी और मुहब्बत! महमूद गज़नवी को अपने गुलाम अयाज़ से मुहब्बत है, और अयाज़ राजो कैसे हो सकता है?

महमूद गज़नवी ने उस सोने की मूर्ति पर चोटें लगानी शुरू कर दीं। गरज़ जब पेट पर लगा तो वह फट गया, और उसमें से शहाबुद्दीन की खीर और फालूदा निकलने लगा। महमूद गज़नवी ने जब यह देखा तो गरज़ उठाकर अपने सर पर दे मारा।

सईद का सर फट रहा था। महमूद गज़नवी के सर पर जो गरज़ पड़ा था उसका धमाका उसके सर में गूँज रहा था। जब उसने करवट बदली तो छाती पर कोई ठंडी-ठंडी चीज़ रेंगती महसूस हुई। सोमनाथ और सोने की मूर्ति उसके दिमाग़ से निकल गयी। धीरे-धीरे उसने अपनी गर्म-गर्म आँखें खोलीं। राजो फ़र्श पर बैठी पानी में कपड़ा भिगो-भिगोकर उसके माथे पर लगा रही थी।

जब राजो ने माथे पर से कपड़ा उतारने के लिए हाथ बढ़ाया तो सईद ने उसको पकड़ लिया और अपने सीने पर रखकर धीरे-धीरे प्यार से अपना हाथ उस पर फेरना शुरू कर दिया। उसकी सुर्ख आँखें दो अंगारे बनकर देर तक राजो की तरफ़ देखती रहीं। राजो इस टकटकी को सहन न कर सकी और हाथ छुड़ाकर अपने काम में व्यस्त हो गयी।

तब वह बिस्तर में बैठ गया और कहने लगा—"राजो, राजो, इधर मेरी तरफ़ देख! महमूद गज़नवी..." उसका दिमाग बहकने ही वाला था कि उसने आत्मविश्वास से काम लिया और महमूद गज़नवी का ख़याल झटककर कहने लगा, "इधर मेरी तरफ़ देखो! जानती हो, मैं तुम्हारी मुहब्बत में गिरफ्तार हूँ। बहुत बुरी तरह तुम्हारी मुहब्बत में फँस गया हूँ, जिस तरह कोई दल-दल में फँस जाये। मैं जानता हूँ, तुम मुहब्बत के क़ाबिल नहीं हो, मगर मैं यह जानते-बूझते तुमसे मुहब्बत करता हूँ। लानत है मुझ पर...लेकिन छोड़ो इन बातों को...इधर मेरी तरफ़ देखो। खुदा के लिए मुझ को तकलीफ़ न दो। मैं बुखार में उतना नहीं फुँक

रहा...राजो...राजो...मैं...मैं...।" उसके विचारों का सिलसिला टूट गया और उसने डॉक्टर मुकन्दलाल भाटिया से कोनीन ही हानियों पर बहस शुरू कर दी।

"डॉक्टर भाटिया! मैं आपको कैसे समझाऊँ, यह कोनीन बहुत ज़्यादा नुक़सानदेह चीज़ है। मैं मानता हूँ कि कुछ अर्से के लिए मलेरिया के जरासीम मार देती है, मगर नेचुरल तौर पर बीमारी दूर नहीं कर सकती। इसके अलावा इसकी तासीर बेहद खुश्क और गर्म है। मेरे कान बन्द हो गये हैं और मेरा दिमाग बन्द हो गया है। ऐसा मालूम होता है कि दिमाग़ में और कानों में स्याहीचूस कागज़ ठूँस दिये गये हैं। मैं अब कोनीन का टीका नहीं लगवाऊँगा। और गज़नवी...सोमनाथ...राजो...तुम सोमनाथ नहीं जाओगी...मेरे माथे पर हाथ रखो...उफ...उफ...यह क्या बेहूदगी है...मैं...मैं...मेरे दिमाग में बेशुमार ख़याल आ रहे हैं। बीबी जी, आप हैरान क्यों होती हैं। मुझे राजो से मुहब्बत है। हाँ-हाँ, इस राजो से जो सौदागरों के यहाँ नौकर थी, और जो अब आपके पास मुलाज़िम है। आप नहीं जानतीं कि इस औरत ने मुझे कितना ज़लील बना दिया है। इसलिए कि मैं इसके इश्क में गिरफ्तार हूँ। मुझे तमाम जिल्लतें बर्दाश्त करनी होंगी, सारी गली का कूड़ा अपने सर पर उठाना होगा, गन्दी नाली में हाथ डालने होंगे...यह सब कुछ होकर रहेगा...यह सब कुछ होकर रहेगा..."

धीरे-धीरे सईद की आवाज़ कमज़ोर होती गयी और उस पर बेहोशी छा गयी। उसकी आँखें आधी खुली थीं, परन्तु ऐसा लगता था कि पलकों पर बोझ-सा आ पड़ा है। राजो पलँग के पास बैठकर उसकी ऊटपटाँग बातचीत सुनती रही...ऐसे बीमारों की वह कई बार सेवा कर चुकी थी।

बुखार की हालत में जब उसने अपने प्रेम को स्वीकार किया तो राजो ने क्या महसूस किया इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए कि उसके भरे-भरे चेहरे पर कोई भाव नहीं थे। बहुत सम्भव है कि उसके दिल के किसी कोने में सरसराहट पैदा हुई हो।

उसने रूमाल निचोड़कर ताज़े पानी में भिगोया और उसके माथे पर रखने के लिए उठी। अब की बार उसे इसलिए उठना पड़ा कि सईद ने करवट बदल ली थी। जब उसने धीरे से सईद का सर इधर मोड़कर उसके माथे पर गीला रूमाल जमाया तो उसकी आँखें ऐसे खुलीं जिस तरह लाल-लाल जख्मों के मुँह टाँके उधड़ जाने पर खुल जाते हैं। उसने एक क्षण के लिए राजो के झुके हुए चेहरे की तरफ़ देखा, जिस पर गाल थोड़े से नीचे लटक आये थे, और एकदम उसे अपनी दोनों बाँहों में कसकर सईद ने इस ज़ोर से अपनी छाती से भींचा कि उसकी रीढ़ की हड्डी कड़-कड़ बोल उठी। उठकर उसने राजो को अपनी जाँघों पर लिटा दिया और उसके मोटे-मोटे और गुदगुदे होंठों पर इस ज़ोर से अपने तपते हुए होंठ रख दिये, जैसे वह गर्म-गर्म लोहे से उसे दागना चाहता है।

सईद की पकड़ इतनी ज़बर्दस्त थी कि राजो कोशिश करने पर भी अपने को स्वतन्त्र न करा सकी। उसके होंठ देर तक उसके होंठों पर इस्तरी करते रहे। फिर हाँफते हुए अचानक उसने राजो को एक झटके से अलग कर दिया और उठकर यूँ बैठ गया, जैसे उसने कोई बहुत डरावना सपना देखा हो। राजो एक तरफ़ सिमट गयी। वह सहम गयी थी। उसके होंठों पर अभी तक उसके पपड़ी जमे होंठ महसूस हो रहे थे।

राजो ने उसकी तरफ़ कनखियों से देखा, तो वह उस पर बरस पड़ा, “तुम यहाँ क्या कर रही हो...जाओ...जाओ...” यह कहते-कहते सईद ने अपने सर को दोनों हाथों से थाम लिया, जैसे वह गिर पड़ेगा। उसके बाद वह लेट गया और धीरे-धीरे बड़बड़ाने लगा, “राजो...मुझे माफ कर दो...मुझे कुछ पता नहीं, मैं क्या कह रहा हूँ, और क्या कर रहा हूँ। बस सिर्फ़ एक बात अच्छी तरह से जानता हूँ कि मुझे तुझसे बहुत मुहब्बत है...ओ मेरे अल्लाह...हाँ, मुझे तुझसे मुहब्बत है, इसलिए नहीं कि तुम मुहब्बत करने के काबिल हो, इसलिए नहीं कि तुम मुझसे मुहब्बत करती हो...फिर किसलिए...काश कि मैं इसका जवाब दे सकता। मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ, इसलिए कि तुम नफ़रत के काबिल हो। तुम औरत नहीं हो, एक पूरा मकान हो, एक बहुत बड़ी बिल्डिंग हो, मगर मुझे तुम्हारे सब कमरों से मुहब्बत है, इसलिए कि वह ग़लीज़ हैं, टूटे हुए हैं...मुझे तुमसे मुहब्बत है, क्या यह अजीब बात नहीं?” यह कहकर सईद ने हँसना शुरू कर दिया।

राजो ख़ामोश रही। उस पर अभी तक सईद की पकड़ और उसके चुम्बन का असर था। वह उठकर कमरे से बाहर जाने का इरादा ही कर रही थी कि उसने फिर बड़बड़ाना शुरू कर दिया। राजो ने उसकी तरफ़ धड़कते हुए दिल से देखा। उसकी आँखें आधी खुली थीं और वह जैसे किसी अनुपस्थित आदमी से बातें कर रहा था...“तुम जालिम हो, इन्सान नहीं, हैवान हो। मान लिया कि वह भी तुम्हारी तरह हैवान है, मगर फिर भी औरत है...औरत अगर टुकड़े-टुकड़े भी हो जाये, तब भी औरत रहती है...लेकिन तुम यह बातें कभी नहीं समझोगे, भैंस और औरत में तुम कोई फर्क नहीं समझते। लेकिन खुदा के लिए जाओ और उसे अन्दर ले आओ। बाहर सर्दी में कपड़ों के बगैर उसका सारा खून जम गया होगा। मैं पूछता हूँ, आख़िर उसके साथ तुम्हारी लड़ाई किस बात पर हुई...लालटेन के नीचे वह सिर्फ़ तुम्हारी बनियान पहने खड़ी है, और तुम...तुम...लानत है तुम पर...तुम समझते क्यों नहीं हो, राजो औरत है...पशमीने का थान नहीं...”

पहली बार राजो को मालूम हुआ कि उस रात वाली घटना से बीबी जी का लड़का परिचित है, इसलिए वह बहुत डर-सी गयी। लोग उसके और चार व्यापारी भाइयों के बारे में तरह-तरह की बातें करते थे। मगर वह जानती थी कि किसी ने भी अपनी आँखों से कुछ नहीं देखा। इसलिए वह कभी भयभीत नहीं हुई थी। परन्तु अब यहाँ उसके सामने बिस्तर पर वह आदमी लेटा था, जो सब कुछ देख और सुन चुका था। इस आदमी के बारे में आज तक उसने गौर नहीं किया था। वह केवल इतना जानती थी कि मियाँ गुलाम रसूल मरहूम का यह लड़का किसी से भी अधिक बातें नहीं करता और सारा दिन बैठक में मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ता रहता है। गली के दूसरे लड़कों के बारे में वह तरह-तरह की बातें सुनती थी, परन्तु उसके सम्बन्ध में उसने केवल यही सुना था कि मिज़ाज का अच्छा नहीं है। और मियाँ गुलाम रसूल मरहूम से भी अधिक इसे अपने खानदानी होने पर गर्व है। इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं जानती थी। मगर आज उसे मालूम हुआ कि वह उसके बारे में सब कुछ जानता है और उससे प्रेम भी करता है।

उसके प्रेम का स्पष्टीकरण राजो के लिए कष्टप्रद न था। उसको दरअसल यह बात

बड़ा कष्ट पहुँचा रही थी कि उस रात जब वह क्रोध के कारण दीवानी हो रही थी, उसने सब कुछ देख लिया। यह बड़ी शर्म की बात थी, इसलिए उसके दिल में यह इच्छा पैदा हुई कि बीबी जी का लड़का वह सब घटना भूल जाये। उसने थोड़ी देर अपने दिमाग पर ज़ोर दिया और आख़िर एक तरीका सोचकर उसने यह कहना शुरू किया—"खुदा कसम...अल्लाह कसम...यह सब झूठ है। मैं मस्जिद में कुरान उठाने के लिए तैयार हूँ। जो कुछ आप समझते हैं, बिल्कुल गलत है। मैंने अपनी मर्जी से सौदागरों की नौकरी छोड़ी है। वहाँ काम बहुत ज़्यादा था और उस रोज़ रात को भी इसी बात का झगड़ा था। मैं दिन-रात कैसे काम कर सकती हूँ? चार नौकरों का काम मुझ अकेली जान से कैसे हो सकता है मियाँ जी!"

सईद बुखार में बेहोश पड़ा था। राजो जब अपने विचारानुसार तमाम आवश्यक बातें कर चुकी तो उसके दिल का बोझ हल्का हो गया। परन्तु उसने सोचा कि एक ही साँस में जितनी कसमें खायी हैं, शायद काफ़ी नहीं हैं, इसलिए उसने फिर कहा—"मियाँ जी, अल्लाह कसम...यह सब मुझ पर झूठे इलजाम हैं। मैं कोई ऐसी-वैसी थोड़ी हूँ। मुझसे ज़्यादा काम नहीं हो सकता, इसलिए मैंने उनको छोड़ दिया। अब इतनी सी बात का बतंगड़ बन जाये, तो इसमें मेरा क्या कसूर है?"

यह कहकर जैसे उसने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। वह कमरे से बाहर जाने के बारे में सोच ही रही थी कि सईद ने आँखें खोलीं और पानी माँगा। राजो ने बड़ी फुर्ती से पानी का गिलास उसके हाथ में दे दिया और पास ही खड़ी रही ताकि वापस लेकर उसे तिपाई पर रख दे।

एक ही घूँट में गिलास का सारा पानी पीने के बाद उसकी प्यास थोड़ी बुझी। खाली गिलास राजो के हाथ में देकर उसने नज़रें उठाकर उसकी तरफ़ देखा, कुछ कहना चाहा, परन्तु चुप हो गया और तकिये पर सर रखकर लेट गया।

अब वह होश में था। उसने बड़ी संजीदगी से राजो को बुलाया—"राजो!"

राजो ने दबे हुए स्वर में उत्तर दिया—"जी।"

"देखो! बीबी जी को यहाँ भेज दो।"

यह सुनकर राजो को सन्देह हुआ कि वह बीबी जी को उस रात की सारी बात सुनाना चाहता है, इसलिए उसने फिर कसमें खानी शुरू कर दीं—

"मियाँ जी...अल्लाह की कसम...और कोई बात नहीं थी। मेरा उनसे केवल इसी बात पर झगड़ा हुआ था कि मैं ज़र-खरीद लौंडी नहीं हूँ कि दिन-रात काम करती रहूँ...आपने मेरी ज़बान से इसके सिवा और क्या सुना था?"

बिस्तर पर सईद ने बड़ी मुश्किल से करवट बदली। ठंडे पानी ने उसके शरीर में कँपकँपाहट-सी दौड़ा दी थी। राजो की तरफ़ आश्चर्य से देखकर उसने पूछा—"क्या कह रही हो तुम?"

फिर तुरन्त ही उसे जब ख़याल आया कि बेहोशी की हालत में उससे कई बातें कर चुका हूँ और अपना प्रेम भी उस पर प्रकट कर चुका हूँ, तो उसे अपने आप पर बहुत क्रोध आया। मलेरिया के कारण उसके मुँह का स्वाद बहुत खराब हो गया था। अब इस गलती के

एहसास ने उसके मुँह में और ज़्यादा कसैलापन पैदा कर दिया और उसको अपने आपसे घृणा होने लगी।

"मुझे राजो से बातें नहीं करनी चाहिए थीं...राजो पर अपनी मुहब्बत का इज़हार तो बिल्कुल नहीं करना चाहिए था...इसलिए कि वह इसके क़ाबिल ही नहीं है। मैंने राजो को अपने दिल का राज़ नहीं बताया, बल्कि अपने तमाम वजूद को एक गन्दी मोरी में फेंक दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि बेहोशी की हालत में मुझसे यह गलती हुई। लेकिन अगर मैं कोशिश करता, तो ऐसा होने से रोक सकता था। मुझ में इतनी ताकत है मगर अफ़सोस, इस बात का ख़याल ही न आया, और मैं बकता चला गया..."

जो कुछ वह राजो से कह चुका था, उसका एक-एक शब्द तो सईद को याद नहीं था, परन्तु वह सोच सकता था कि उसने क्या कहा होगा। वह इससे पहले अपने ख़यालों में राजो से कई बार बातें कर चुका था और हर बार लज्जित महसूस करता था। परन्तु अब सचमुच उसने उससे बातें की थीं, और उस पर अपना प्रेम भी प्रकट कर चुका था। दूसरे शब्दों में उसको वह रहस्य बता चुका था, जिससे वह खुद को भी अनभिज्ञ रखना चाहता था...यह सईद के जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना थी।

राजो उसके सामने खड़ी थी। मलेरिया अपने ठंडे हाथ उस पर फेर रहा था। एक बहुत ही तेज़ कँपकँपाहट उसके शरीर के हर कण में कनखजूरे की तरह रेंग रही थी, और उसके दिल में ऐसी पीड़ा पैदा हो रही थी, जो उसने इससे पहले कभी महसूस नहीं की थी। वह चाहता था कि एकदम से इतना बुखार चढ़े कि बेहोश हो जाये, ताकि जो कुछ हो, उसका एहसास कुछ समय के लिए उससे दूर रहे।

बड़ी मुश्किल से उसने खुद को राजो से यह कहने पर तैयार किया—"बीबी जी को यहाँ भेज दो। मैं यहाँ मर रहा हूँ, कुछ मेरा भी तो ख़याल करें।"

इस पर राजो ने धीरे से कहा, "मैं जाकर कहती हूँ..."

"जाओ...खुदा के लिए जाओ," यह कहकर सईद ने रजाई अपने ऊपर ओढ़ ली और मलेरिया के ताज़े हमले के कारण ज़ोर-ज़ोर से काँपना शुरू कर दिया।

राजो कमरे से बाहर चली गयी।

पाँच

सईद को ठंड क्योंकि बहुत तेज़ लगी थी, इसलिए उसकी देख-भाल अच्छी न होने के कारण उसे निमोनिया हो गया और उसकी हालत बहुत खराब हो गयी। उसकी माँ बेचारी क्या कर सकती थी! दिन-रात दुआएँ माँगने में लगी रहती थी। वह अपने बेटे के पास बैठी रहती। राजो ने भी सेवा में कोई कोताही न की। परन्तु सईद को उसकी सेवा से आराम की बजाय तकलीफ़ ही होती थी।

सईद के दिल में कई बार आया कि अपनी माँ से साफ़-साफ़ कह दे कि राजो की उपस्थिति उसे पसन्द नहीं, परन्तु कोशिश के बावजूद वह ऐसा न कह सका।

डॉक्टर मुकन्दलाल भाटिया ने यह राय दी थी कि इसे अस्पताल में दाखिल कर दिया जाये, तो ठीक रहेगा। वहाँ देख-भाल भी अच्छी तरह से हो सकेगी और दवा वगैरह भी वक़्त पर दी जा सकेगी और इसके अतिरिक्त अच्छे से अच्छा डॉक्टर भी ज़रूरत पर मिल सकेगा। मगर उसकी माँ नहीं मानती थी। अस्पताल से उसे सख्त घृणा थी। परन्तु उनके लाड़ले बेटे ने खुद अस्पताल में दाखिल होने के लिए ज़िद की, तो वह दिल पर पत्थर रखकर खामोश हो गयीं। उसने अपने बच्चे की आज तक कोई बात नहीं टाली थी। इसलिए निमोनिया होने के दूसरे दिन ही डॉक्टर मुकन्दलाल भाटिया उसे बड़ी सुरक्षा से अस्पताल ले गया और वहाँ स्पेशल-वार्ड में दाखिल करा दिया।

अस्पताल में सईद कुछ दिनों के अन्दर-अन्दर ही ठीक हो गया। निमोनिया का हमला काफ़ी तेज़ था, मगर वह बच गया। बुखार भी दूर हो गया था। अस्पताल के कमरे में जिसकी हर चीज़ सफ़ेद थी उसको आत्मिक शान्ति मिली। क्योंकि राजो वहाँ नहीं थी, इसलिए उसके दिल पर जो बोझ-सा आ पड़ा था, वह भी बहुत हल्का हो गया। वह अब अपने पूर्ण स्वस्थ होने की तेज़ी से इच्छा करने लगा...परन्तु यह निश्चित था कि वह घर में नहीं रहेगा, जहाँ राजो उपस्थित थी। वह इस औरत को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उसे देखकर उसका कुछ ऐसा हाल हो जाता था, जो पहले कभी महसूस न हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह उसके प्रेम में बुरी तरह जकड़ गया था, परन्तु वह इस प्यार को बिल्कुल दबा देना चाहता था।

प्रकट है कि यह काम बहुत कठिन था, परन्तु वह इसमें सफलता पाने के लिए पूरी-पूरी चेष्टा कर रहा था और उसने इस बीच खुद को धीरे-धीरे इस बात का विश्वास भी दिलाया था कि राजो को भूलकर वह एक ऐसा कमाल का काम करेगा, जो आज तक कोई नहीं कर सका।

अस्पताल में दाखिल होने के आठवें दिन कमज़ोरी के बावजूद सईद बहुत तरोताज़ा महसूस कर रहा था। सुबह-सवेरे जब सफ़ेद कपड़े पहने नर्स ने उसका टेम्परेचर लिया, तो उसने मुस्कुराकर कहा—"नर्स, मैं तुम्हारा बहुत शुक्रगुज़ार हूँ। तुमने मेरी बहुत ख़िदमत की है। काश, मैं उसका बदला तुमसे मुहब्बत करके दे सकता?"

एंग्लो-इंडियन नर्स के होंठों पर एक बारीक मुस्कान फैल गयी। आँखों की पुतलियाँ नचाकर उसने कहा, "तो क्यों नहीं करते...करो।"

उसने बग़ल से थर्मामीटर निकालकर नर्स को दिया और कहा, "मैं अपने दिल के किवाड़ हमेशा के लिए बन्द कर चुका हूँ। तुमने उस वक़्त दस्तक दी है, जबकि वहाँ रहने वाला हमेशा के लिए कोठरी में सो गया है। मुझे इसका अफ़सोस है। तुम इस काबिल हो कि तुमसे आइडोफार्म की तेज़ बू समेत मुहब्बत की जाये...मगर इट इज़ टू लेट माई डियर..."

नर्स हँस पड़ी और ऐसा लगा कि हार का धागा टूटने से मोती इधर-उधर बिखर गये हैं। उसके दाँत बहुत सफ़ेद और चमकीले थे। सईद नर्सों की कमज़ोरी से परिचित था, इसलिए उसने मुस्कुराते हुए कहा, "नर्स, तुम अभी पूरी तरह जवान कहाँ हुई हो—शबाब आने दो, एक छोड़ पूरी दर्जन मुहब्बतें तुम्हारे इर्द-गिर्द चक्कर लगाना शुरू कर देंगी। लेकिन उस वक़्त मुझे ज़रूर याद कर लेना...जिसने अस्पताल के इस कमरे में एक बार तुम्हारी पिंडलियों की

तारीफ की थी और कहा था, 'अगर चार होतीं, तो मैं अपने पलँग में पायों की जगह लगवा लेता'।"

नर्स ने तख्ती पर टेम्परेचर नोट किया और "यू नॉटी ब्वॉय" कहकर अपनी पिंडलियों की तरफ़ देखती हुई बाहर चली गयी।

सईद बहुत खुश था। या यूँ समझिये कि वह अपने आपको खुश करने की कोशिश कर रहा था। दरअसल वह राजो को किसी-न-किसी तरीके से भूल जाना चाहता था। कई बार उसको उस बातचीत का ख़याल आता, जो उसने बुखार की हालत में उससे की थी, परन्तु तुरन्त ही दूसरे ख़याल के नीचे उसे दबा देता।

अस्पताल में अब उसे चार दिन और रहना था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि निमोनिया और मलेरिया ने उसकी बहुत-सी शक्ति छीन ली थी, परन्तु उसे अपनी कमज़ोरी का बिल्कुल ख़याल नहीं था, बल्कि उल्टा वह खुश था। अब उसे ऐसा महसूस होता था कि बहुत-सा गैर-ज़रूरी बोझ उस पर से उठ गया है। विचारों में अब वह पहले-सा खिंचाव नहीं था, बुखार और निमोनिया ने फिल्टर का काम किया था। वह महसूस करता था कि अब उसमें वह भारीपन नहीं रहा, जो उसे पहले तंग करता रहा है। बुखार ने उसके नुकीले जज़्बात को घिस दिया था इसलिए अब उसे चुभन महसूस नहीं होती थी।

दिमाग बिल्कुल हल्का हो गया था। जिस तरह धोबी मैले कपड़े को फटक-फटक कर उजला करता है, उसी तरह बुखार ने अच्छी तरह झिंझोड़-निचोड़कर उसका सारा मैल निकाल दिया था।

जब नर्स अपनी पिंडलियों की तरफ़ देखती हुई बाहर निकली, तो सईद दिल-ही-दिल में मुस्कुरा दिया था। फिर उसने सोचा, 'नर्स की पिंडलियाँ वाकई खूबसूरत हैं।' दूसरे रोगियों के लिए ऐसे चार दिन बिताना बहुत मुश्किल था, परन्तु सईद ने बड़े मज़े से ये दिन काटे। शाम को उसके मित्र आ जाते थे। उनसे वह इधर-उधर की दिलचस्प बातें करता रहता। सुबह को उसकी माँ आती, जो अपनी ममता से उसका दिल खुश कर देती। दोपहर को वह सो रहता और बीच में जब उसके पास कोई न होता, तो पत्रिकाएँ पढ़ता रहता, जिनका एक ढेर अब खिड़की की सिल पर जमा हो गया था।

जब अस्पताल से उसकी छुट्टी का समय आया, तो डॉक्टर, नर्स, नौकर और अस्पताल के एक-दो दूसरे लोग उसके कमरे में जमा हो गये। दो सफ़ाईवाले इनाम लेने के लिए खड़े थे। बाहर फाटक पर ताँगा खड़ा था, जिसमें उसका नौकर गुलाम नबी बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे वह लंदन जा रहा है या लंदन से वापस आ रहा है, और उसके मित्र तथा अन्य लोग उसकी विदाई के लिए या उसके स्वागत के लिए जमा हुए हैं।

नर्स उसको बार-बार कह रही थी, "आपने अपनी सब चीज़ें याद से अटैची में रख ली हैं न?"

और वह बार-बार उसका उत्तर दे रहा था—"जी हाँ, रख ली हैं।"

नर्स फिर कहती थी, "वह आपकी घड़ी कहाँ है? देखिये, गद्दे के नीचे ही न पड़ी रहे।"

इस पर उसे कहना पड़ा, "मैंने घड़ी उठाकर अपनी जेब में रख ली है।"

“और आपका पैन?”

“वह भी मेरी जेब में है।”

“और आपकी ऐनक?”

“वह मेरी नाक पर है। आप अपना इत्मिनान कर सकती हैं।”

इस पर नर्स मुस्कुरा देती।

नर्स ने सईद की बहुत सेवा की थी। जैसे छोटे-छोटे बच्चों का कोई ख़याल रखता है, उसी तरह वह उसका ख़याल रखती थी और अब वह अस्पताल से जा रहा था। वह उसको ऐसे विदा कर रही थी, जैसे माँ बच्चे को स्कूल भेजती है, और उसके दरवाज़े से बाहर निकलने तक कभी उसकी टोपी ठीक करती है या कभी उसकी कमीज के बटनों को बन्द करती रहती है। नर्स की इस तरह की सेवा ने उसे बहुत प्रभावित किया था। यही कारण है कि वह नर्स से हमेशा हँसते-मुस्कुराते हुए बातें करता था।

जब सब कुछ ठीक-ठाक हो गया तो सईद नर्स से बोला, “नर्स, देखना मेरी टाई की नॉट कैसी है।”

नर्स ने टाई की नॉट की तरफ़ देखा, परन्तु तुरन्त ही समझ गयी कि उससे मज़ाक हो रहा है। वह मुस्कुरा दी, “बिल्कुल ठीक है। मगर आप अपना आइना यहीं भूले जा रहे हैं।”

यह कहकर वह कमरे की अन्तिम खिड़की की तरफ़ बढ़ी। उसने वहाँ पड़ी टोकरी में से आइना उठाया और सईद की अटैची में उसे रखते हुए बोली, “क्यों जनाब, एक चीज़ तो आप भूल ही गये थे न?”

इस पर सईद ने कहा, “अब मुझे क्या मालूम कि आइने भी फलों और दूध की तरह टोकरी में रखे जाते हैं। मैंने तो उसे वहाँ नहीं रखा था। आपने कभी उसकी मदद से अपने होंठों पर सुर्खी लगायी होगी, और वह भी उस वक़्त, जबकि मैं सो रहा हूँगा।”

इस तरह की मज़ेदार बातों के बाद उसने डॉक्टर से हाथ मिलाया, कुछ कागज़ों पर हस्ताक्षर किये, नर्स वगैरह को धन्यवाद कहा, और दान-पात्र में कुछ रुपये डाल कर उस कमरे से बाहर निकल आया, जहाँ उसने पूरे पन्द्रह दिन बीमारी की हालत में गुज़ारे थे।

जब वह बाहर सड़क की तरफ़ निकला, तो उसने ऐसे ही मुड़कर अपने पीछे देखा, जिधर उसके कमरे की खिड़कियाँ खुलती थीं। तीन खिड़कियाँ बन्द थीं, मगर एक खुली थी, जिसमें से नर्स झाँक रही थी। जब उन दोनों की आँखें चार हुईं, तो नर्स ने अपना छोटा-सा सफ़ेद रूमाल लहराया और खिड़की बन्द कर दी...

उसके मित्र अब्बास ने जब यह तमाशा देखा तो आँख मारकर रशीद से कहा, “भई, मुझे कुछ दाल में काला नज़र आता है।”

छह

पन्द्रह दिन की अनुपस्थिति के बाद जब सईद घर में दाखिल हुआ, तो सबसे पहले उसे राजो नज़र आयी, जो बड़ी तेज़ी से दरवाज़े से बाहर निकल रही थी। वह उसे देखकर रुक गयी

और तुतला-तुतला कर कहने लगी, "मियाँ जी, आप ठीक हो गये...ठीक हो गये...मैं...पाँच रुपये के पैसे लेने आ रही हूँ।"

यह कहकर वह चली गयी और सईद ने चैन की साँस ली। आगे बढ़ा, तो उसकी माँ ने उसे झट छाती से लगा लिया और बलायें लेनी शुरू कर दीं।

सईद को अपनी माँ के हद से ज़्यादा बढ़े प्यार से बहुत उलझन होती थी। परन्तु अब उसकी तबियत में एक तरह की नमी पैदा हो गयी थी, उसे माँ की मुहब्बत का जोश अच्छा मालूम हुआ और उसने खुशी महसूस की।

जब वह घर में दाखिल हुआ, तो उसके साथ मेहमानों का सा सलूक किया गया। नये टी सेट में चाय दी गयी। अन्दर कमरे में नया कालीन बिछाया गया था। कुर्सियों पर नयी गद्दियाँ रखी थीं। पलँग पर वह चादर बिछी थी, जिस पर उसकी माँ ने बड़े परिश्रम से कढ़ाई का काम किया था। हर चीज़ सजा कर रखी गयी थी। कमरे में ऐसी फिज़ा पैदा हो गयी थी, जो मस्जिद में जुम्मा की नमाज़ पर देखने में आया करती है, जब बहुत से आदमी नहा-धोकर उजले कपड़े पहने होते हैं।

चाय पीकर वह देर तक अपनी माँ के पास बैठा रहा। गली की सब औरतें एक-एक करके आयीं और सईद के स्वस्थ होने पर उसकी माँ को बधाई देकर चली गयीं। जब फकीरों को पाँच रुपये के पैसे बाँटने का समय आया और गली में शोर होने लगा, तो सईद उठकर अपनी बैठक में चला आया।

गुलाम नबी ने कमरा खूब साफ़ कर रखा था। सब-की-सब खिड़कियाँ खुली थीं। उसकी माँ को पता था कि वह अपने ही कमरे में जाकर बैठेगा। सिगरेट का नया टिन तिपाई पर रखा था और पास ही नयी माचिस भी पड़ी थी।

जब वह अपने कमरे में आया, तो उसने अपनी सब चीज़ों को ध्यान से देखा। हर चीज़ अपनी-अपनी जगह पर थी। वह कबूतर भी, जो बारह बजे तक उसके बाप की बड़ी तस्वीर के भारी फ्रेम पर ऊँघता रहता था।

थोड़ी देर तक वह साफ़ की हुई दरी पर नंगे पाँव टहलता रहा। इतने में उसके मित्र आने शुरू हो गये। दोपहर का खाना वहीं खाया गया जो कि परहेजी थी, परन्तु अस्पताल के खाने से बहुत ही अच्छा। खाने के बाद में सिगरेटों का दौर चला और देर तक गप्पें चलती रहीं। इसी बीच अब्बास ने कहा, "अमां, अस्पताल की वह लौंडिया बुरी नहीं थी...।"

रशीद ने मुस्कुराकर कहा, "आपका डबल निमोनिया बगैर दवा के यूँ ही तो अच्छा नहीं हो गया। कुछ नर्सें अमृतधारा होती हैं।"

अब्बास को रशीद की बात बहुत पसन्द आयी, "वाह, क्या बात कही है...नर्स और अमृतधारा...मैं समझता हूँ...सईद आधी बोतल खत्म कर दी होगी तुमने...भई, ऐसी दवाएँ बेदर्दी से इस्तेमाल नहीं की जातीं।"

सईद को यह बेकार की बातचीत अच्छी लगी। इसलिए उसने भी कहा, "क्या ख़याल है तुम्हारा, अस्पताल में उस जैसी तीखी नर्स शायद ही कोई दूसरी हो।"

"भई, अस्पताल वालों की तारीफ़ करनी ही पड़ेगी कि उन्होंने मिस फ़रिया को मेरी

ख़िदमत पर लगाया...यूँ तो इस शहर में किसी औरत की नंगी टाँग नज़र ही नहीं आती और अब तो सर्दी का मौसम भी है। सब टाँगें मोटे-मोटे गिलाफों में रहती हैं...इसलिए उसकी नंगी पिंडलियों ने बड़ा आराम पहुँचाया...लेकिन तुमने उसकी पिंडलियाँ नहीं देखीं।"

अब्बास बोला, "क्या उनका नाम भी मशहूर चीज़ों की लिस्ट में जोड़ दिया जाये?"

सईद ने कहा, "भई मज़ाक नहीं, उसने मेरी सचमुच बहुत खिदमत की है। मुझे बच्चा समझ मेरी देख-भाल करती थी। मामूली से मामूली चीज़ का ख़याल रखती थी। किसी वक़्त तो मेरा मुँह भी धुलाती थी, नाक भी पोंछती थी, जैसे मैं बिल्कुल अपाहिज हूँ। मैं उसका बहुत एहसान-मन्द हूँ। मेरा ख़याल है कि उसको एक साड़ी तोहफे के तौर पर भेज दूँ। एक बार उसने कहा था कि उसे साड़ी पहनने का बहुत शौक है। क्यों अब्बास, तुम्हारा क्या ख़याल है?"

अब्बास ने कहा, "नेकी और पूछ-पूछ। मगर शर्त यह है कि साड़ी लेकर मैं जाऊँगा।"

"तय है, और यह भी तय है कि साड़ी सफ़ेद होगी, क्योंकि यह रंग मुझे पसन्द है..."

अगले दिन गोकुल मार्किट से अब्बास और सईद ने एक सफ़ेद रंग की साड़ी ली, जिसके किनारे-किनारे एक सफ़ेद तिल्ले का बॉर्डर दौड़ रहा था। मूल्य चुकाकर और एक चिट पर अपना और नर्स का नाम लिखकर उसे साड़ी के साथ चिपका दिया गया। अब्बास ने डिब्बा बन्द किया और उसे लेकर अस्पताल की तरफ़ चला। जाने से पहले सईद ने अब्बास से कहा, "देखो, अस्पताल में जाकर इसे देना।"

अब्बास बोला, "मिस फ़रिया से मिलने घर जा रहा हूँ। अस्पताल में तो बीमार जाते हैं।"

अब्बास चला गया और शाम को वापस आया। जब सईद चाय-वाय पीकर अपनी माँ के पास थोड़ी देर बैठकर अपने कमरे की तरफ़ आ रहा था कि दरवाज़े पर दस्तक हुई और किसी ने "ख्वाजा साहब" कहकर बुलाया तो उसने समझ लिया कि अब्बास है और कोई दिलचस्प खबर लाया है। जब दोनों आराम से कमरे में बैठ गये, तो बातें शुरू हुईं।

अब्बास ने कहा, "भई मुझे ऐसा शक होता है कि उसे तुमसे बहुत बुरी तरह मुहब्बत है और वह दिन-रात तुम्हारी फ़िराक़ (वियोग) में आहें भरती रहती है, रात को सो नहीं सकती, वगैरह-वगैरह..."

"अरे भई नहीं..."

"तुम मज़ाक मत समझो, उसने खुद तो कुछ नहीं कहा, मगर मैंने अन्दाज़ा लगाया है कि वह तुम्हारी मुहब्बत में गिरफ्तार है। जाने तुमने उस पर क्या जादू कर दिया है..."

"अरे भई, पूरी बात तो सुनाओ..."

"...मैं वहाँ गया। उसका ठिकाना मालूम किया। वह ड्यूटी पर नहीं थी, इसलिए उसने मुझे अपने छोटे से कमरे में बुला लिया। मेरे आने की वजह पूछी, मैंने साड़ी का डिब्बा उसको दे दिया। उसे खोलकर जब उसने साड़ी देखी तो आँखों में नमी पैदा हो गयी...कहने लगी, 'क्यों तकलीफ़ की, मगर मुझे यह साड़ी पसन्द है। उनकी पसन्द भी बहुत अच्छी है, हालाँकि मैं सफ़ेद कपड़े पहन-पहन कर तंग आ गयी हूँ। मगर इसमें एक खास बात है...यह

बॉर्डर कितना प्यारा है! अगर बड़ा होता तो सारी खूबसूरती खत्म हो जाती। मेरी तरफ़ से उनका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा कीजियेगा...लेकिन...लेकिन वह खुद क्यों नहीं आये...उन्हें खुद आना चाहिए था।' यह कहते-कहते वह रुक-सी गयी और बात को बदल दिया —'आपने भी काफ़ी तकलीफ़ उठायी है। मुझे आपका भी शुक्रिया अदा करना चाहिए था...'।"

यह सुनकर सईद ने अब्बास से पूछा..."मगर इस बातचीत से क्या नतीजा निकलता है...कुछ भी नहीं..."

"अरे भई, मेरे बताने से क्या नतीजा निकलेगा। मैं मिस फ़रिया नहीं हूँ। तुम वहाँ होते, तो वही नतीजा निकालते, जो मैंने निकाला। और फिर उसने यह भी तो कहा कि आप जब कम्पनी बाग़ की तरफ़ घूमने निकलें, तो मुझे ज़रूर मिलें। मेरे कमरे का नम्बर उनको बता दीजियेगा...तुम्हें मालूम है, इसके बाद उसने क्या कहा?"

"तुमसे कहा होगा, तशरीफ ले जाइये।"

"उसने छोटे से पैड पर तुम्हें खत लिखा। लेकिन थोड़ी देर सोचकर उसे फाड़ दिया। फिर एक नया लिखा, उसे भी फाड़ दिया। और मेरी तरफ़ बेवकूफ़ों की तरह देखकर घबराये हुए लहज़े में कहने लगी, 'समझ में नहीं आता...शुक्रिया किस तरह अदा करूँ।' यह कहकर उसने फिर कोशिश की, जो कामयाब हुई। बड़े सोच-विचार के बाद उसने एक खत लिखा, उसे लिफ़ाफ़े में बन्द करके मुझे दिया और कहा, 'यह उनको दे दीजियेगा।' मैं खत लेकर बाहर निकला और..."

सईद ने पूछा, "कहाँ है?"

अब्बास ने लापरवाही से उत्तर दिया, "मेरे पास...हाँ तो मैंने बाहर आकर लिफ़ाफ़े को देखा। उस पर लिखा था, 'प्राइवेट', इसलिए मैंने खोल लिया..."

"तुमने खोल लिया?"

"खोल लिया और पढ़कर देखा तो मालूम हुआ कि वह आपसे मिलने के लिए बहुत बेकरार है। खत इस तरह से लिखा था...'मैं तुमसे मिलना चाहती हूँ। मेरी तबियत आजकल बहुत उदास है। साड़ी का बहुत-बहुत शुक्रिया। मैं इसे परसों बाल में पहनकर जाऊँगी, जो छावनी में हो रहा है'।"

यह कहकर उसने जेब में हाथ डाला और लिफ़ाफ़ा निकालकर सईद को दे दिया, "तुम खुद भी पढ़ लो। शायद इसमें तुम्हें कोई और चीज़ नज़र आ जाये।"

सईद ने लिफ़ाफ़ा खोलकर पढ़ा। वही लिखा था, जो अब्बास ने सुनाया था। अन्तर केवल इतना था कि मिस फ़रिया ने अंग्रेज़ी में कुछ लाइनें लिखी थीं, जिनका अब्बास ने अनुवाद कर दिया था।

यह पत्र पढ़कर सईद सोच में पड़ गया...'वह मुझसे किसलिए मिलना चाहती है, और उदास क्यों है। क्या उसकी उदासी मुझसे मिलने पर दूर हो जायेगी? क्या यह सम्भव है कि उसकी तबियत में उदासी पैदा करने वाला मै हूँ? क्या सचमुच, अब्बास के कहने के अनुसार, वह मुझसे प्रेम करती है?'

इस अन्तिम विचार पर उसे हँसी आ गयी, “अब्बास, तुम एकदम बेवकूफ़ हो। उसे मुझसे मुहब्बत नहीं हुई, बल्कि किसी और से हुई है और मुझे उसका सारा हाल सुनाना चाहती है। मैंने उससे एक बार मज़ाक में कहा था, ‘जैसे ही तुम किसी से मुहब्बत करने लगो, मुझे ज़रूर बताना।’ हो सकता है कि कामदेव ने उसके सीने पर अपना पहला तीर चला दिया हो। खैर छोड़ो इस किस्से को, यह बताओ क्या तुमने किसी एंग्लो-इंडियन लड़की से मुहब्बत की है?”

अब्बास ने बड़ी गम्भीरता से कहा, “मैंने ठेठ यूरोपियन लड़की से लेकर सफ़ाई करने वाली तक से मुहब्बत की है...सच पूछो तो मैं तुम्हारी इस फ़रिया ही से मुहब्बत करने लगा हूँ। मगर इस किस्मत का क्या करूँ? जैसा कि तुम कहते हो, ‘वह किसी और की मुहब्बत में गिरफ्तार हो चुकी है।’ मैं समझता हूँ, अपना सिलसिला यूँ ही चलता रहेगा और आख़िर एक रोज़ शादी हो जायेगी...और चलो, छुट्टी हुई।”

अब्बास उदास हो गया। इस पर सईद ने पूछा, “अब्बास, क्या तुम वाकई किसी से मुहब्बत करना चाहते हो?”

अब्बास तड़प कर बोला, “यह ‘वाक़ई’ की भी खूब रही। अरे भई, एक ज़माना हो गया है कोशिश करते-करते और अब तो मुहब्बत की ख़्वाहिश बहुत शिद्दत पकड़ चुकी है। कोई भी हो, मगर औरत हो औरत। खुदा कसम, मज़ा आ जाये।”

यह कहकर अब्बास ने ज़ोर-ज़ोर से मज़ा लेने के लिए अपने हाथ मलने शुरू कर दिये, “परन्तु मैं ऐसी मुहब्बत को पसन्द नहीं करता, जो बीमारी की तरह हमेशा के लिए चिपट जाये। मैं ज़्यादा से ज़्यादा एक या दो साल किसी औरत से इश्क़ कर सकता हूँ...और बस...उससे ज़्यादा इश्क़ करना मेरे बस में नहीं। गालिब ने क्या कहा है कि मिश्री की मक्खी बनो, शहद की मक्खी न बनो...तो भई मैं तो मिश्री की मक्खी हूँ...अपना तो यही असूल है...चाहे इश्क़ हो या न हो मगर यह असूल नहीं बदलेगा। शादी अलग रहे और इश्क़ अलग हो...अगर ऐसा हो जाये तो क्या कहने हैं! लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि बस अब किला फतह होने ही वाला है। एक किला फतह हो गया तो बस सारा जर्मनी मेरा है। मुझे यह सिगफ्राइड लाइन तोड़नी है। जिस दिन टूट गयी, बेड़ा पार समझो।”

अब्बास का भाषण सुनकर सईद ने अपने और उसके प्रेम की तुलना की। ज़मीन आसमान का अन्तर था। परन्तु एक बात अवश्य थी कि अब्बास ने दूसरे आदमियों की तरह अपने शारीरिक प्रेम पर परदा नहीं डाला था। उसने साफ़-साफ़ कह दिया था कि वह एक या दो वर्ष से अधिक किसी औरत से प्रेम करना मूर्खता समझता है।

प्रेम कितनी देर रहता है, यह सईद को मालूम नहीं था। मियादी बुखार की तरह क्या इसका समय भी सीमित है, यह भी उसे नहीं पता था। यह प्रश्न उसके दिल में पैदा हुआ ही था कि राजो और उसके चारों ओर की तमाम चीज़ें नज़रों के सामने घूमने लगीं। और वह उस आदमी की तरह, जो अचानक किसी मुसीबत में पड़ जाये, सख्त घबरा गया। उसने तुरन्त ही अपने आपको इन विचारों से मुक्ति दिलाने के लिए अब्बास से कहा, “अब्बास, आज कोई पिक्चर देखनी चाहिए।”

अब्बास, जिसके दिमाग में प्रेम बसा हुआ था, कहने लगा, "खाली तस्वीरें प्यास नहीं बुझा सकतीं दोस्त...मुझे औरत चाहिए औरत! गर्म-गर्म गोश्त वाली औरत,...तुम्हें एक मौका मिल रहा है। खुदा के लिए इससे फ़ायदा उठाओ। जाओ वह नर्स तुम्हारी है। उसकी आँखों ने मुझे बता दिया था कि वह एक गलती करके रोना चाहती है। जाओ उसको अपनी ज़िन्दगी की पहली गलती में मदद दो...बेवकूफ़ न बनो। अगर गलतियाँ न होतीं तो औरतें भी न होतीं। मेरी समझ में नहीं आता, तुम किस सोच में पड़े हो। भई, एक जवान लड़की तुम्हारे साथ मिलकर अपनी ज़िन्दगी की कहानी रंगीन बनाना चाहती है। तुम अगर अपना रंगों का डिब्बा बन्द कर लो तो यह तुम्हारी बेवकूफ़ी है...काश तुम्हारी जगह पर मैं होता फिर...फिर देखते कैसे-कैसे शोख़ रंग उसकी ज़िन्दगी में भर देता...।"

अब्बास का भाषण सईद उन कानों से सुनने की कोशिश कर रहा था, जिनमें राजो का प्रेम भनभना रहा था। अस्पताल में वह उसे लगभग भूल चुका था। मगर अब पहले ही दिन घर में आकर वह फिर उसके अन्दर प्रवेश कर गयी थी। अब्बास बातें कर रहा था और उसके दिल में यह इच्छा हो रही थी कि उठे और अन्दर जाकर राजो को एक नज़र फिर देख आये। नज़रों ही से देखे, मगर देखे ज़रूर। उसकी तरफ़ प्रेम-भरी नज़रों से न देखे, घृणा भरी नज़रों ही से देखे। मगर देखे अवश्य। परन्तु इसके साथ ही वह यह भी नहीं चाहता था कि जो इरादा वह कर चुका है, वह इतनी जल्दी टूट जाये।

इसलिए बड़े साहस से काम लेकर उसके ख़याल को एक बार फिर उसने अपने दिल के अन्दर कुचल दिया और उठ खड़ा हुआ, "अब्बास, कोई और बातें करो। सच पूछो, तो मैं मुहब्बत का सही मतलब ही अभी तक नहीं समझ सका। लेकिन इतना ज़रूर जानता हूँ कि यह मुहब्बत वह चीज़ नहीं है, जिसका ज़िक्र तुम करते हो। तुम एक औरत से सिर्फ़ एक-दो बरस तक मुहब्बत करने को ठीक मानते हो। मगर मैं उम्र भर का पट्टा लिखवाना चाहता हूँ। अगर मुझे किसी से इश्क़ हो जाये तो मैं उस पर अपनी मिलकियत चाहता हूँ। वह औरत सारी-की-सारी मेरी होनी चाहिए। उसका एक-एक ज़र्रा मेरी मुहब्बत के मातहत होना चाहिए। मैं आशिक़ और डिक्टेक्टर में कोई ज़्यादा फर्क नहीं समझता। दोनों ताकत चाहते हैं।..मुहब्बत...तुम मुहब्बत-मुहब्बत पुकारते हो। मैं खुद मुहब्बत-मुहब्बत कहता हूँ। लेकिन इस बारे में हम कितना जानते हैं...किसी अँधेरी सुरंग में या बाग़ की किसी घनी-सी झाड़ी के पीछे अगर तुम्हारी किसी भूख की मारी औरत से मुलाकात हो जाये, तो क्या तुम कहोगे मैंने इश्क लड़ाया है, मेरी ज़िन्दगी में एक रूमान दाखिल हो गया है। गलत है, बिल्कुल गलत है। यह मुहब्बत नहीं, मुहब्बत कुछ और है। मैं यह नहीं कहता कि मुहब्बत एक निहायत ही साफ़ ख़याल का नाम है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मुझे पता है, मुहब्बत क्या है...मगर...मैं साफ़-साफ़ बता नहीं सकता। मैं समझता हूँ, मुहब्बत हर शख्स के अन्दर एक खास ख़याल लेकर पैदा होती है। जहाँ तक उस खास हरकत का ताल्लुक है, एक ही रहता है। अमल भी एक ही है। नतीजा भी आमतौर पर एक ही जैसा निकलता है। जिस तरह रोटी खाते जैसी हरकत देखने से एक जैसी लगती है, और बहुत से आदमी जल्दी-जल्दी खाते हैं और बगैर चबाये उसको निगल जाते हैं और कुछ देर तक चबा-चबाकर लुकमे को अपने पेट

में दाखिल कर लेते हैं। लेकिन यह मिसाल भी साफ़-साफ़ कुछ बयान नहीं कर सकती...भई मेरा दिमाग खराब हो जायेगा...खुदा के लिए यह मुहब्बत की बातें खत्म करो। हमारी मुहब्बत बहुत से पत्थरों के नीचे दबी हुई है। जब खुदाई होगी और उसको निकाला जायेगा, तो हम दोनों उसके बारे में अच्छी तरह बातचीत कर सकेंगे।"

सईद के इस ऊटपटाँग भाषण में इतने धचके थे कि अब्बास के दिमाग की ऐसी हालत हो गयी जो थर्ड-क्लास के ताँगे में बैठकर टूटी सड़क पर चलने से पैदा होती है। वह भी उठ खड़ा हुआ, "जाने तुमने क्या बकवास की है। मगर मैं सिर्फ़ इतना समझा हूँ कि औरत से इश्क़ करना और ज़मीन खरीदना तुम्हारे लिए एक ही बात है। सो तुम मुहब्बत करने की बजाय एक-दो बीघा ज़मीन खरीद लो और उस पर सारी उम्र बैठे रहो...। आख़िर तुम्हें हो क्या गया है...तुम्हारे अन्दर शायरी का क्या हुआ...बीमार रहने के बाद तुम कैसे हो गये हो...भई, इतनी-सी मामूली बात तुम्हारी समझ में नहीं आती कि इश्क़, जो ज़्यादा देर तक कायम रहे, वह इश्क़ नहीं, लानत है...हम इन्सान हैं फरिश्ते नहीं, जो एक ही हूर पर कुर्बान होकर रह जाएँ। अगर एक ही औरत से मैंने अपने आपको हमेशा के लिए चिपका दिया तो मुश्किल हो जायेगी...मैं खुदकुशी कर लूँगा...ज़िन्दगी में सिर्फ़ एक औरत...सिर्फ़ एक औरत...और यह दुनिया क्यों इतनी भरी हुई है...क्यों इसमें इतने तमाशे जमा हैं...सिर्फ़ गेहूँ पैदा करके ही अल्लाह मियाँ ने अपना हाथ क्यों न रोक लिया।"

"मेरी सुनो और इस ज़िन्दगी को जो कि तुम्हें दी गयी है, अच्छी तरह इस्तेमाल करो कि तुम उस औरत को, जो तुम्हारे रास्ते में डाल दी गयी है, कुछ दिनों के लिए कैसे खुश कर सकते हो...इस तरह की फ़िलॉसफ़ी में खुद को न उलझाओ। यूँ तो तुम अपने पालतू कुत्ते को भी अच्छी तरह नहीं समझ सकते, लेकिन उसको समझने की ज़रूरत ही क्या है, जब तक वह तुम्हारे पुचकारने पर अपनी कटी दुम हिलाता रहता है और तुम्हारे कहने पर गेंद दबोच लेता है। मैं पूछता हूँ कि औरत के बारे में ज़्यादा सोच-विचार की ज़रूरत ही क्या है? वह अगर अथाह समुन्दर है तो हुआ करे, ऊँचा तारा है तो उससे क्या, जब तक वह औरत है और इन खूबियों की मालिक है, जो औरत में होनी चाहिए। सिर्फ़ एक ही बात पर गौर करना चाहिए कि उसे कैसे हासिल किया जा सकता है।"

यह भाषण सुनने के बाद सईद ने अब्बास से पूछा, "लेकिन औरतें हैं कहाँ?"

अब्बास ने डिब्बे से एक सिगरेट निकालकर सुलगायी और कहा, "यहाँ, वहाँ, इधर, उधर, हर जगह औरतें मौज़ूद हैं। क्या इस घर में कोई औरत मौज़ूद नहीं है? वह तुम्हारी नौकर राजो क्या बुरी है, जिसने उस दिन तुम्हारी बैठक का दरवाज़ा मेरे लिए खोला था। तुम मेरी तरफ़ यूँ आँखें फाड़कर क्या देख रहे हो? भई, हमें औरत चाहिए, और राजो सौ परसेंट औरत है। वह तुम्हारी नौकर सही, लेकिन इससे कहाँ फर्क पड़ता है...मानता हूँ कि हमारे यहाँ अक्सर औरतें सन्दूकों में बन्द हैं...लेकिन यह मतलब तो नहीं कि जो सन्दूकों से बाहर हैं उनकी तरफ़ हम देखना छोड़ दें...मेज़ पर जो हाज़िर हो खाना ही पड़ेगा।" यह कहकर अब्बास ने ज़ोर से सिगरेट की राख झाड़ी और अपने मित्र सईद की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा।

मगर वह नज़रें मिलाना नहीं चाहता था। ऐसा मालूम होता है कि उसे इस बात का डर है कि अब्बास उसकी आँखों में राजो के प्रेम की सारी कहानी पढ़ लेगा। वह एक तरफ़ हट गया। अँगीठी की सिल पर अपनी फोटो के फ्रेम को थोड़ा इधर हटाकर उसने अब्बास से कहा, "तुम...तुम...तुम्हारी बातचीत बड़ी डरावनी है...तुम बात करते हो और मुझे तुम्हारे मुँह से खून की बू आती है। तुम लहू पीने वाले इन्सान हो।"

"और तुम," अब्बास ने फिर सिगरेट की राख झाड़ी, "तुम?...मैं लहू पीने वाला इन्सान ही सही, लेकिन तुम जैसे दूध पीने वाले जानवरों से बहुत अच्छा हूँ। तुम नेकी और बदी के बीच में लटके हो...शुक्र है कि मैं ऐसा चमगादड़ नहीं। मैं एक तूफ़ानी समुन्दर हूँ। तुम खुश्की पर खड़े हो। तुम ऐसे ग्राहक हो, जो औरत को हासिल करने के लिए सारी उम्र दौलत जमा करते रहोगे, मगर उसे नाकाफ़ी समझोगे..."

"मैं ऐसा खरीददार हूँ, जो ज़िन्दगी में कई औरतों से सौदे करेगा। तुम ऐसा इश्क़ करना चाहते हो कि तुम्हारी मौत पर कोई छोटे दर्जे का राइटर एक किताब लिखे, जिसे नारायण दत्त सहगल लाल-पीले कागज़ों पर छापे और डिब्बी बाज़ार में एक-एक आने में तुम्हारी मुहब्बत का अफ़साना बिके...मैं अपनी पूरी किताब को दीमक बनकर खुद ही चाट जाना चाहता हूँ ताकि इसका कोई निशान बाकी न रहे...तुम मुहब्बत में ज़िन्दगी चाहते हो...मैं ज़िन्दगी में मुहब्बत चाहता हूँ...लेकिन तुम कुछ भी नहीं हो...ज़रा सोचो तो आख़िर तुम क्या हो?"

थोड़ी देर के लिए सईद को ऐसा महसूस हुआ कि अब्बास सचमुच सब कुछ है, और वह कुछ भी नहीं है। उसने सोचा कि आख़िर मैं क्या हूँ। यहाँ इस घर में एक लड़की मौज़ूद है, जिससे मैं मुहब्बत करता हूँ, लेकिन...लेकिन यह मुहब्बत क्या है...मैं चाहता हूँ कि वह मेरी हो जाये। लेकिन फिर साथ ही यह भी चाहता हूँ कि उसको एकदम से भूल जाऊँ। मैं किस मुसीबत में फँस गया हूँ? क्या प्रेम इसी मुसीबत का नाम है?

कुछ भी हो, मगर सईद इतना अवश्य समझता था कि यह मुसीबत या जो कुछ भी उसका नाम रख लिया जाये, प्रेम था, जो उसके दिल में धीरे-धीरे जड़ पकड़ गया था। जिस तरह लोग भूत-प्रेत से डरते हैं, इसी तरह वह इस प्रेम से डरता था। उसको हर समय डर रहता था कि एक वक़्त ऐसा आयेगा, जब उसके जज़्बात बेलगाम हो जायेंगे और वह कुछ कर बैठेगा। क्या कर बैठेगा...यह उसको मालूम नहीं था। परन्तु वह उस तूफ़ान की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसके चिह्न उसे अपने अन्दर दिखायी दे रहे थे। इस प्रेम ने उसे डरपोक बना दिया था...

अब्बास अपने ख़याल में मग्न था, इसलिए वह अपने मित्र के दिल की हालत को न समझ सका। वैसे भी दूसरों की बातों पर गौर करने की उसकी आदत नहीं थी। वह केवल अपने से मतलब रखता था, और अपने में ही समाया रहता। उसे इतनी फुर्सत ही न मिलती थी कि दूसरे के बारे में गौर कर सके। परन्तु इसके बावजूद वह अच्छा मित्र था। परन्तु मित्रता के क्या अर्थ होते हैं, वह इस बात पर भी गौर करना नहीं चाहता था। वह कहा करता था—"अमां छोड़ो, तुम किन वहमों में गिरफ्तार हो गये! दोस्ती-वोस्ती सब बकवास है। धातु या

पत्थर के ज़माने में दोस्त हुआ करते होंगे। आजकल कोई किसी का दोस्त नहीं हो सकता। लोग अगर दोस्ती ही की रस्सी बटना शुरू कर दें, तो सारे का सारा कारोबार ही बन्द हो जाये...तुम मुझे दोस्त कहते हो, कहो। मैं तुम्हें दोस्त कहता हूँ, ठीक है। सुनते जाओ, मगर इससे ज़्यादा इस पर गौर नहीं करना चाहिए। जितना ज़्यादा गौर करोगे, उतने ज़्यादा गड्ढे पैदा होते जायेंगे। आज दुनिया में जितने गलत काम हो रहे हैं, सब ग़ौर करने का नतीजा हैं।"

"कत्ल होते हैं, ज़्यादा सोच-विचार की वजह से। चोरियाँ होती हैं, ज़्यादा सोचने से। डाके भी ज़्यादा सोचने ही से पड़ते हैं। दिमाग और बारूद की मैगज़ीन में कोई फर्क नहीं...बेवकूफ़ और उल्लू हो जाओ मगर खुदा के लिए अक्लमंद न बनो और न ही ज़्यादा सोच-विचार करो।"

अब्बास बातें मज़ेदार करता था। वह मालूमी-सी बात को भी एक ख़ास रंग में दिलचस्प तरीके से पेश करता था। दुनिया के बारे में उसके बनाये हुए कुछ उसूल थे, जिन पर वह एक लम्बे समय से चल रहा था। वह किसी बात की चिन्ता न करता था और न ही अधिक सोचता था। परन्तु उन बातों पर उसे थोड़ी देर के लिए गौर करना ही पड़ता था जो उससे सम्बन्धित होती थीं...इस समय भी वह किसी बात पर गौर कर रहा था क्योंकि उसके चेहरे पर सन्तुष्टि की वह लहर नहीं थी, जो अक्सर नज़र आया करती थी। नयी सिगरेट सुलगाकर वह बड़े ज़ोर से कश ले रहा था और उसका मित्र सईद अँगीठी के पास खड़ा किसी ज़बर्दस्त उलझन में फँसा लगता था।

अब्बास जैसे चौंकता हुआ बोला, "अजी हटाओ, ख़्वामख़्वाह इस उलझन में अपने को क्यों फँसाया जाये। जो होगा, देखा जायेगा।" अपने मित्र को पुकारते हुए फिर उसने कहा, "अजी हज़रत, आप किन वहमों में गिरफ्तार हो गये हैं। कुर्सी पर तशरीफ रखिये। आप अभी-अभी बीमारी से उठे हैं। ऐसा न हो फिर अस्पताल जाना पड़े...लेकिन इस बार दोस्त, अपनी जगह मुझे देना। वह लौंडिया मुझे भा गयी है।" यह कहते ही वह तुरन्त आरामकुर्सी पर बैठ गया।

सईद अँगीठी के पास कुर्सी पर बैठ गया। अधिक बातचीत और सोच-विचार ने उसे कमज़ोर कर दिया था, इसलिए थकी हुई आवाज़ में उसने अब्बास से कहा, "अब्बास, मैं बहुत कमज़ोर हो गया हूँ। मेरा ख़याल है कि कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर चला जाऊँ। हवा बदल जायेगी।"

अब्बास ने पूछा, "कहाँ जाओगे?"

सईद बोला, "कहाँ जाऊँगा, यही तो सोच रहा हूँ। सर्दियों में कहाँ जाना चाहिए? कोई ऐसी जगह बताओ, जो ठीक रहे। बम्बई चला जाऊँ...कलकत्ता भी बुरा नहीं...लेकिन...लेकिन, क्रिसमस तो गुज़र चुका...क्रिसमस को छोड़ो...तो बम्बई चला जाऊँ...दरअसल मैं कुछ दिनों के लिए अमृतसर को भूल जाना चाहता हूँ। यहाँ मुझे डर लग रहा है।"

अब्बास ने आश्चर्य से पूछा, "अमृतसर से आपको डर लग रहा है!...अमृतसर ने

आपको कहाँ काट खाया है?”

इस पर सईद के दिल में आया कि अब्बास को अपना सारा रहस्य बता दे, परन्तु चुप रहा। वह चाहता था कि किसी को अपने रहस्य में शामिल कर ले, परन्तु साथ ही वह यह भी चाहता था कि कोई उसके रहस्य से परिचित न हो। उसे पता था कि एक बार उसने राजो से प्रेम की कहानी सुना दी तो वह चिड़िया फुर्र से उड़ जायेगी जिसको वह पिंजरे ही में मार डालना चाहता है। क्योंकि वह अब्बास को अपने दिल का रहस्य बताने के लिए आगे झुका था, इसलिए उसे डिब्बे से सिगरेट निकाल कर सुलगानी पड़ी।

अब्बास ताड़ गया कि उसका मित्र कुछ कहना चाहता है, मगर कह नहीं पा रहा। इसलिए उसने उसके अन्दर साहस पैदा करने को कहा, “बात को ज़्यादा देर तक पेट में न रखा करो सईद। हाजमा खराब हो जायेगा। कहो, क्या कहना चाहते हो? अमृतसर से क्यों वहशत होती है। तुम बाहर क्यों जाना चाहते हो, क्या कोई खास बात है? खास बात तो कोई भी नहीं होती। हम और तुम ख़्वामख़्वाह बातों में खासपन पैदा कर देते हैं...कहो क्या कहना चाहते थे तुम...।”

सिगरेट का एक कश लेकर सईद ने अब्बास से कहा, “कुछ भी नहीं। कोई खास बात नहीं है। मैं खुद नहीं समझ सका कि अमृतसर क्यों छोड़ना चाहता हूँ। दरअसल कुछ अर्से से मुझे परेशानी-सी महसूस हो रही है, और मैं कुछ शोर-शराबे में रहना चाहता हूँ।”

“शोर-शराबे में रहना चाहते हैं आप, तो इसमें क्या मुश्किल है? मैं इसी कमरे में आपके लिए शोर-शराबा पैदा कर सकता हूँ। रशीद, वहीद, नासिर, प्राण...सब आपकी खिदमत में हाज़िर हो जाया करेंगे। इतना शोर हुआ करेगा कि कान पड़ी आवाज़ भी सुनायी न देगी। फ़रमाइये, क्या हुक्म है?”

अब्बास हँसने लगा तो सईद बेचैन हो गया। अब्बास को पता नहीं था कि सईद के अन्दर कैसा तूफ़ान उठ रहा है और वह किन-किन मुश्किलों में पड़ा है। यही कारण है कि वह उसका मज़ाक उड़ा रहा था। हँसते हुए अब्बास ने एक बार फिर पूछा, “फ़रमाइये क्या हुक्म है?”

इस पर सईद और बेचैन हो गया और उठ खड़ा हुआ, “मैं फ़ैसला कर चुका हूँ कि इस हफ़्ते कहीं बाहर चला जाऊँगा। मैं बहुत उदास हो गया हूँ। मैं यहाँ रहना नहीं चाहता। बस एक-दो महीने बाहर रहकर जब मेरी तबियत ठीक हो जायेगी तो वापस आ जाऊँगा। मुझे यहाँ कौन से ज़रूरी काम करने होते हैं...तुम भी मेरे साथ चलो...।”

अब्बास मुस्कुराया, “लेकिन मुझे तो बहुत ज़रूरी काम करने होते हैं...।”

“एक हो तो बताऊँ। सैकड़ों हैं। मिसाल के तौर पर मुझे एक-दो लड़कियों से इश्क़ लड़ाना है, और एंग्लो इंडियन लड़कियों से बातचीत करने के सब तरीके सीखने हैं। कुछ थोड़े से बाज़ारी किस्म के मज़ाक भी याद करने हैं। और दस-बीस सस्ते नॉवल पढ़ने हैं...और...और। लेकिन मैं तुम्हें अपना प्रोग्राम क्यों बताऊँ...तुम जाओ...मैं यहाँ अपनी दिलचस्पी का सामान पैदा कर लूँगा। खत लिखते रहना। लेकिन जाओगे कहाँ?”

सईद ने भी सोचा कि वह जायेगा कहाँ। ऐसी कौन-सी जगह थी, जहाँ वह आराम से

रह सकता था? होटलों में रहना उसे पसन्द नहीं था। और रिश्तेदारों के यहाँ रुकना भी उसे पसन्द नहीं था, इससे उसकी आज़ादी में बाधा पहुँचती थी। ये सब बातें उसके दिमाग में थीं, मगर अमृतसर छोड़ देने की इच्छा तेज़ होती जा रही थी। वह खुद जाना चाहता था, परन्तु आश्चर्य था कि राजो को निकाल देने का ख़याल तक उसके दिमाग में न आया था।

उस दिन वह कुछ तय न कर सका। परन्तु यह निश्चित था कि वह कहीं चला जायेगा।

सात

अमृतसर से लाहौर में केवल तीस-बत्तीस मील का फासला है। एक घंटे में सुस्त-से-सुस्त रफ़्तार ट्रेन भी आपको अमृतसर से लाहौर पहुँचा देती है। परन्तु जब सईद अमृतसर छोड़कर लाहौर चला आया तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह हज़ारों मील अपने पीछे छोड़ आया है, और अब उसे राजो का डर नहीं रहा।

माँ ने उसको रोकने की बहुत कोशिश की मगर वह अपने इरादे पर डटा रहा, और अस्पताल से घर वापस आने के चौथे दिन ही अपना संक्षिप्त-सा सामान लेकर चल दिया। लाहौर में उसके तीन-चार रिश्तेदार भी थे। उनसे मिला, परन्तु उनके यहाँ रहा नहीं। वह रिश्तेदार भी उसकी खास चिन्ता न करते थे। सईद उनके इस व्यवहार से बहुत खुश था। वह मेहमानों की तरह चन्द घंटों के लिए हर एक के पास रुका और इधर-उधर की बात करने के बाद अपने होटल में चला आया।

इस होटल से उसका मन एक सप्ताह में ही उकता गया। वैसे किराया भी अधिक था, और वह उन लोगों में घिरा हुआ रहना नहीं चाहता था जो हिन्दुस्तान में पैदा होकर यूरोपियन बनने की कोशिश करते हैं। इसलिए उसने माल रोड पर अपने लिए एक छोटा-सा कमरा देख लिया और किराया तय करके उसमें चले जाने का निर्णय ले लिया।

होटल का बिल आदि देकर वह ताँगे में सामान रखवा रहा था कि उसने एक और ताँगे से मिस फ़रिया नर्स को उतरते देखा। पहले उसने सोचा कि फ़रिया नहीं कोई और होगी, क्योंकि एंग्लो-इंडियन लड़कियों की शक्ल-सूरत अक्सर एक जैसी होती है। मगर जब फ़रिया उसको देखकर तेज़ी से आगे बढ़ी तो उसको विश्वास हो गया कि सचमुच फ़रिया ही है। उसके दिमाग में कई प्रश्न तुरन्त नाच उठे। लाहौर में यह क्या करने आयी है, कब आयी है, क्या अकेली है, इस होटल में इसका कौन है, क्या इसी होटल में ठहरी है...आदि-आदि...।

सईद होटल के नौकर की हथेली में कुछ रुपये दबाकर फ़रिया की तरफ़ बढ़ा और उससे बड़े जोश से मिला—“मिस फ़रिया! किसे मालूम था कि यहाँ लाहौर में तुमसे मुलाकात होगी। तुम कब से यहाँ आयी हो?”

उसने और बहुत से प्रश्न फ़रिया से किये, मगर उसने एक का भी जवाब नहीं दिया। वह बड़ी उलझन में थी। ऐसा लगता था कि वह एकदम किसी दुर्घटना में से गुज़री है। उसका रंग बहुत पीला लग रहा था और उसके होंठों पर सुर्खी के लेप के बावजूद पपड़ियाँ नज़र आ रही थीं।

इधर-उधर देखकर फ़रिया ने उससे कहा, “मुझे आपसे बहुत-सी बातें करनी हैं।” यह कहते हुए उसने ताँगे की तरफ़ देखा जिसमें सामान लदा हुआ था, “मगर आप अभी-अभी आये हैं या कहीं जा रहे हैं।”

“मुझे यहाँ आये पूरे सात दिन हो गये हैं, और अब मैं यह होटल छोड़ रहा हूँ।”

यह सुनकर फ़रिया का रंग और पीला हो गया, “तो बस अब आप घर जा रहे हैं?”

“नहीं! घर तो मैं दो-ढाई महीने के बाद जाऊँगा। यह होटल का सिलसिला मुझे पसन्द नहीं था, इसलिए मैंने अलग कमरे का इंतज़ाम कर लिया है।”

“तो चलो मुझे वहीं साथ ले चलो,” यह कहकर वह कुछ झेंप-सी गयी, “आपको अगर तकलीफ़ न हो तो...यानी बात यह है कि मुझे आपसे बहुत कुछ कहना है। और यहाँ होटल के सामने कुछ मिनटों में आपसे कुछ नहीं कह सकती।”

सईद ने फ़रिया की तरफ़ देखा तो उसकी मोटी-मोटी आँखों में उसे आँसू नज़र आये, “नहीं-नहीं, तकलीफ़ की क्या बात है...मैं यह सोच रहा हूँ, तुम्हें वहाँ तकलीफ़ होगी, इसलिए कि वहाँ सामान-वामान कुछ भी नहीं। खाली कमरा है, अभी तक मैं फर्नीचर नहीं ला सका...खैर देखा जायेगा...चलो आओ।”

किराया-विराया चुकाकर और होटल के छोकरों को इनाम दे-दिलाकर वे दोनों माल रोड की तरफ़ रवाना हुए। रास्ते में कोई बात नहीं हुई। दोनों अपने-अपने विचारों में खोये थे। आख़िर वह बिल्डिंग आ गयी जहाँ दूसरी मंज़िल पर सईद ने अपने लिए एक कमरा किराये पर लिया था।

सामान रखवाकर जब सईद ने फ़रिया की तरफ़ देखा तो वह लोहे की चारपाई पर बैठी अपने आँसू पोंछ रही थी। दरवाज़ा बन्द कर वह उसके पास आया और सहानुभूति भरे स्वर में उसने पूछा, “मिस फ़रिया, क्या बात है। तुम्हारी आँखें तो कभी रोने वाली नहीं थीं।”

यह सुनकर फ़रिया ने ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर दिया, जिस पर सईद बहुत परेशान हुआ। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह इस लड़की को किस तरह चुप कराये। यह पहला अवसर था कि एक नौजवान लड़की उसके पास बैठी थी और रो रही थी। उसका दिल बहुत नर्म था। फ़रिया के रोने से उसे बहुत दुःख हुआ। घबराकर उसने कहा, “मिस फ़रिया, तुम मुझे बताओ तो सही, शायद मैं तुम्हारी मदद कर सकूँ...”

फ़रिया चारपाई से उठ खड़ी हुई और खिड़की खोलकर उसने बाहर बाज़ार की तरफ़ देखना शुरू कर दिया। फिर थोड़ी देर के बाद उसने कहा, “मैं इसीलिए तो आपके साथ आयी हूँ...अगर आपसे यूँ अचानक मुलाकात न होती, तो न जाने क्या होता। मैं सचमुच ज़हर खाकर मर जाती...मेरे साथ बहुत ज़ुल्म हुआ है...आपको याद होगा, साड़ी मिलने पर मैंने आपको शुक्रिया का खत लिखा था, और आपसे निवेदन किया था कि आप मुझे ज़रूर मिलें। अच्छा हुआ, आप नहीं आये...वरना मेरी पहली खुशी देखकर आपको बहुत आश्चर्य होता...मेरी ज़िन्दगी में यह परिवर्तन क्या आया है, मानो भूकम्प आया है जिसकी खबर ही नहीं होती। मुझे पता नहीं था कि खूबसूरत मर्द धोखेबाज़ हो सकते हैं। मुझे उससे प्रेम हो गया था। उसने भी मुझ पर अपना प्रेम प्रकट किया। वह इतनी अच्छी बातें करता था कि

उनको सुनकर मेरे दिल में नाचने की और नाचते चले जाने की इच्छा पैदा होती थी...”

“मगर...मगर...यह सब सपना था। उसने मुझसे कहा, ‘मैं बहुत अमीर आदमी हूँ’...उसने मुझे एक बढ़िया ड्रेस पेश की, मुझे एक अँगूठी भी दी...वह मुझसे जल्दी से जल्दी शादी करना चाहता था। मेरे माँ-बाप तो थे नहीं कि मैं इजाज़त माँगती...इसलिए मैं तैयार हो गयी। शादी करने के लिए वह मुझे लाहौर ले आया। हम दोनों इसी होटल में ठहरे, जहाँ आप भी कुछ दिन रहे हैं। सात-आठ दिन तक उसने मुझे हर तरह से खुश रखा। लेकिन एक दिन सुबह उठकर मैंने देखा कि उसका सब सामान गुम था, और उसका भी कोई पता नहीं था...। मैंने उसे तलाश करने की कोशिश की, मगर उसका कोई ठिकाना भी तो मुझे मालूम नहीं। मैंने कितनी गलती की! आप शायद विश्वास न करें, परन्तु मैंने उसका पूरा नाम तक भी न पूछा। खुदा जाने, वह कौन था, कहाँ का रहने वाला था और क्या करता था! मेरी अक़्ल पर पत्थर पड़ गये थे और अस्पताल छोड़कर उसके साथ चली आयी...शादी करने।”

“मैं कितनी खुश थी और शादी के बाद घर बनाने और उसे सजाने के लिए मैंने दिल-ही-दिल में कितनी योजनाएँ बना रखी थीं...अब मैं क्या करूँ...अस्पताल कैसे वापस जा सकती हूँ...नर्सें क्या कहेंगी और सिस्टर मेरा कितना मज़ाक उड़ायेगी...”

“मैंने मरना चाहा, मगर...मगर मैं मरना भी नहीं चाहती...मुझे ज़िन्दा रहने का शौक है। वह मुझसे शादी न करता। मेरे साथ ऐसे ही रहता। खुदा की कसम मैं खुश थी...मगर वह कितना जालिम निकला...।”

“मैं यह नहीं कहती कि मैंने उस पर कोई एहसान किया है। मैं तो उसका एहसान मानती थी कि उसने मुझे एक नयी दुनिया का रास्ता बताया और मुझे खुश करने की कोशिश की। मगर वह तो मुझे धोखा दे गया। उसने ज़ुल्म किया। यह ज़ुल्म नहीं तो और क्या है? होटलवाले मुझे शक की नज़रों से देखते हैं। मेरी तरफ़ यूँ देखते हैं जैसे मैं चिड़ियाघर का कोई परिन्दा हूँ...मैं अभी तक वहाँ सिर्फ़ इसलिए ठहरी कि होटलवाले यह समझें कि कोई खास बात नहीं हुई। मगर ऐसा मालूम होता है कि उनको सब बातों का पता है, क्योंकि एक दिन बूढ़े बैरे ने मुझसे कहा, ‘मेम साहब, वह आपके साहब अब नहीं आयेंगे। आप चली जायें...’ मैंने उसे शुक्रिया कहने की बजाय गालियाँ दीं...”

“क्या करूँ, मैं चिड़चिड़ी हो गयी थी। लेकिन अब मेरे दिल को आराम पहुँचा है। आपको देखकर मुझे ऐसा लगता है कि जो कुछ हो चुका है, उसका ख़याल मेरे दिल-दिमाग से दूर हो जायेगा। मुझे दोस्त की ज़रूरत है। लेकिन यह मेरी दूसरी बेवकूफ़ी होगी, अगर मैं आपको दोस्त समझूँ। क्या पता, आप मुझे दोस्त न बनाना चाहें। अस्पताल में आप कुछ दिन रहे। आपने हमेशा मुझसे अच्छा व्यवहार किया। इसलिए मैं समझी...शायद आप मेरे दोस्त बन सकें। अच्छा, तो मैं अब जाती हूँ...।”

यह सुनकर न जाने सईद को क्यों हँसी आ गयी, “कहाँ जाओगी...बैठ जाओ...”

उसने उसकी बाँह पकड़कर उसे चारपाई पर बिठा दिया। जब वह बैठ गयी, तो अचानक सईद के सारे शरीर में इस ख़याल से एक सनसनी-सी दौड़ गयी कि उसने एक नौजवान लड़की को यूँ बाँह से पकड़कर बिठाया है और उससे इस तरह से बात की है, जैसे

वह उसका पुराना दोस्त हो और उसे अच्छी तरह समझता हो। मगर इस ख़याल ने वह भाव एकदम से बदल दिया, जो थोड़ी देर पहले फ़रिया के सम्बन्ध में उसके दिल में पैदा हुआ था। वे तमाम बातें, जो एक-एक करके उसके दिमाग में से बीजों में से निकलने वाले नन्हे पौधों की तरह उभरी थीं बढ़ गयीं और वह बेचैन-सा हो गया।

उसकी इस बेचैनी को देखकर फ़रिया फिर उठ खड़ी हुई और कहने लगी, "मेरा इस दुनिया में कोई नहीं, यह मुझे आज मालूम हुआ है। आज से कुछ दिन पहले मैं समझती थी, सब दुनिया मेरी है।...यह दुनिया फिर कभी मेरी होगी? इस सवाल का जवाब तो मैं नहीं दे सकती...लेकिन मैं अस्पताल कभी वापस नहीं जाऊँगी...लाहौर में कुछ दिन मैंने बड़ी खुशी से गुज़ारे हैं...मेरे दुःख के दिन भी यहीं गुज़रेंगे...मैं यहाँ किसी दुकान में नौकरी कर लूँगी...और...बाकी दिन भी यूँ ही बीत जायेंगे..."

यह कहकर फ़रिया फिर दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी, मगर सईद ने उसे रोक लिया।

"मिस फ़रिया...जो कुछ तुमने कहा है उसका मुझ पर बहुत असर हुआ है। जिस शख्स ने भी तुमको धोखा दिया है, निहायत जलील आदमी है। तुमको धोखा देना बहुत बड़ी बात नहीं है, इसीलिए तुम इस काबिल नहीं हो कि तुमसे फ़रेब किया जाये। मुझे तुमसे पूरी-पूरी हमदर्दी है। काश! जो कुछ हो चुका है मैं उसे ठीक कर सकता।"

फिर अचानक सईद ने एक नये स्वर और एक नये ढंग से कहना शुरू किया, "फ़रिया, माफ करना, तुम एक बिल्कुल गलत आदमी के पास आयी हो। तुम समझती हो, मैं औरतों से वाकिफ हूँ और उनको समझ सकता हूँ। खुदा जानता है, तुम पहली औरत हो, जिससे मैंने खुलकर बात करने की कोशिश की है। अस्पताल में तुमसे जितनी बातें हुई थीं, बिल्कुल बनावटी थीं। इसलिए कि मैं सिर्फ़ एक ऐसी औरत समझकर तुमसे बातें करता था, जिससे मैं जवाब के बगैर बातें कर सकता हूँ। तुम हमारी सोसाइटी से वाकिफ नहीं हो। हम लोग अपनी माँ-बहन के सिवा और किसी औरत को नहीं जानते। हमारे यहाँ औरतों और मर्दों के बीच एक मोटी दीवार खड़ी है...अभी-अभी तुम्हारी बाँह पकड़कर मैंने तुम्हें उस चारपाई पर बिठाया था। जानती हो, मेरे जिस्म में एक सनसनी दौड़ गयी थी। तुम इस बन्द कमरे में मेरे पास खड़ी हो, जानती हो, मेरे दिमाग में कैसे-कैसे ख़याल चक्कर लगा रहे हैं...मुझे भूख महसूस हो रही है, मेरे पेट में हलचल मच रही है...तुमने अपने उस आशिक की बातें की हैं और मेरे दिल में यह ख्वाहिश पैदा होती है कि उठकर तुम्हें सीने से लगा लूँ और इतना भींचूँ, इतना भींचूँ कि खुद मैं बेहोश होकर गिर पड़ूँ...लेकिन मुझे अपने ऊपर काबू पाने का गुर हासिल हो चुका है, इसलिए कि मैं अपनी कई ख्वाहिशें अब तक कुचल चुका हूँ...।"

"तुम हैरान क्यों होती हो, मैं सच कहता हूँ...औरत के मामले में मेरी कोई ख्वाहिश अब तक पूरी नहीं हुई। तुम पहली औरत हो, जिसको मैंने इतने पास से देखा है। यही वजह है कि मैं...मैं तुम्हारे और पास आना चाहता हूँ...लेकिन...लेकिन मैं शरीफ आदमी हूँ...मैं तुमसे मुहब्बत नहीं करता...लेकिन...लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं तुमसे नफ़रत करता हूँ...या क्योंकि मुझे तुमसे मुहब्बत नहीं है...इसलिए मैं तुममें दिलचस्पी नहीं लूँगा...यह बात नहीं है...मुहब्बत, मुहब्बत...मैं नहीं समझ सका कि यह मुहब्बत क्या

है...तुम्हें हैरानी होगी कि मुझे एक ऐसी औरत से मुहब्बत है, जो मुहब्बत किये जाने के बिल्कुल काबिल नहीं...मुझे उससे नफ़रत है...उसके नाम ही से नफ़रत है। लेकिन मुसीबत यह है कि उसी नफ़रत ने मेरे दिल में उसकी मुहब्बत के बीज बो दिये हैं।"

फ़रिया ने पूछा, "कौन है यह लड़की?"

"कौन है! तुम उसे जानकर क्या करोगी...एक मामूली लड़की है, जो लम्बे अर्से से औरत बन चुकी है। वह गोश्त की पुतली है...और बस, इससे ज़्यादा कुछ नहीं...मेरे घर में नौकर है...पहले किसी और की नौकर थी...मैं इसीलिए अमृतसर छोड़कर यहाँ चला आया हूँ कि उसको देखकर मेरे दिल में एक तूफ़ान उठ खड़ा होता है...मैं चाहता हूँ कि उससे अपने तरीके से मुहब्बत करूँ...मगर वह...वह...मिस फ़रिया, खुदा के लिए मुझसे न पूछो कि वह मुहब्बत को क्या समझती है। मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ कि मुहब्बत में वे सब चीज़ें शामिल हैं, जिनकी एक भद्दी तस्वीर उस औरत के दिमाग में है। मगर मैं यह भी तय चाहता हूँ कि कभी-कभी वह किसी अच्छी बात पर, किसी चुस्त मज़ाक पर, किसी शायर के नाज़ुक ख़याल पर तड़प उठे...मगर उसकी आँखें इन तमाम चीज़ों पर बन्द हैं। मैं दिमाग से सोचता हूँ, वह पेट से सोचती है। लेकिन तमाशा तो यह है कि मैं उससे मुहब्बत करता हूँ। और इस मुहब्बत ने मेरे दिल के दरवाज़े दूसरी मुहब्बतों के लिए बिल्कुल बन्द कर दिये हैं...मैं...मैं हमदर्दी के काबिल हूँ...।"

यह कहकर सईद चारपाई पर दुःखी मुद्रा में बैठ गया। मिस फ़रिया ने उसकी पीठ पर यूँ हाथ फेरकर उसे सांत्वना देनी शुरू की, जैसे वह बच्चा है। उसको फ़रिया की इस सहानुभूति से बड़ा आराम मिला। उसकी माँ अक्सर उसकी पीठ पर इस तरह हाथ फेरती थी। मगर फ़रिया के हाथ में उसने और ही मज़ा महसूस किया। उसे लगा कि वह सचमुच ही सहानुभूति का पात्र है और दुनिया की सब औरतों को चाहिए कि उसकी पीठ पर उसी तरह प्यार-मुहब्बत से हाथ फेरें और उसे सांत्वना दें। फिर अचानक उसे कुछ ख़याल आया और उसने फ़रिया का दूसरा हाथ जो कि खाली था, उठाकर अपने हाथों में ले लिया और धन्यवाद के रूप में उसे दबाना शुरू कर दिया।

फ़रिया ने अपना हाथ उसके हाथ में रहने दिया और कहा, "यह अजीब बात है, तुम एक औरत से मुहब्बत करते हो, और फिर साथ ही मुहब्बत करना भी नहीं चाहते...वहाँ से भाग आये हो...और किसी दूसरी औरत से भी मुहब्बत करना नहीं चाहते।"

इस पर सईद ने फ़रिया का हाथ छोड़ दिया, "यहाँ तो चाहने का सवाल ही पैदा नहीं होता। किसी औरत से मुहब्बत करने के लिए मैं जितने बरस तड़पता रहा हूँ उसका तुम्हें कुछ अन्दाज़ा नहीं...और फिर मुहब्बत का जो नज़रिया मेरे दिल-दिमाग में है वह भी तुम्हें मालूम नहीं...जिस मुसीबत में आजकल मैं जकड़ा हूँ, उसको पैदा करने वाला मैं खुद हूँ। उस औरत की मुहब्बत में मुझे किसी बाहर की ताकत ने गिरफ्तार नहीं किया, मैं खुद इस जाल में फँसा हूँ। और अब खुद ही इससे निकल भागा हूँ...दरअसल...दरअसल मैं यह कहना चाहता था कि जब मेरा दिल एक औरत की मुहब्बत से भरा है तो मैं किसी दूसरी औरत से कैसे मुहब्बत कर सकता हूँ। वह बात जो उस औरत के लिए मेरे दिल में पैदा होती है तुम्हारे लिए

या किसी और के लिए तो पैदा नहीं हो सकती...मैं जब उसका ख़याल दिमाग में लाता हूँ, तो खुद को अपनी सहूलियत के लिए कमज़ोर समझता हूँ। लेकिन तुमसे बातचीत करते हुए या तुम्हारा ख़याल दिमाग में लाकर मैं अपने आपको कमज़ोर नहीं समझ सकता...लेकिन तुम शायद मेरा मतलब नहीं समझ सकी हो...।" यह कहकर वह एक तड़प के साथ उठ खड़ा हुआ।

फ़रिया ने मुस्कुराकर उसकी तरफ़ देखा, "दुनिया में अजीब-अजीब आदमी बसते हैं...मैं...बहुत ही कोशिश करती हूँ कि उसको जिसने मुझे अभी धोखा दिया है जालिम मानूँ। और उन लोगों को भी जो इससे पहले मुझे धोखा दे चुके हैं वहशी जानवर समझूँ, मगर न जाने क्यों...मैं ऐसा नहीं कर सकती। मैं उल्टा यह सोचती हूँ कि शायद मैंने ही उन पर ज़ुल्म किया है। क्या पता मुझसे कोई ऐसी हरकत हो गयी हो जिससे उनको दुःख पहुँचा हो। कभी-कभी गुस्से में आकर उनको बुरा-भला कहती हूँ लेकिन बाद में अफ़सोस होता है। आप नर्स की ज़िन्दगी को अच्छी तरह नहीं जानते। अस्पताल में जो कोई भी आता है रोगी और दुःखी होता है। हर मरीज़ को हमारी हमदर्दी और देखभाल की ज़रूरत होती है। लोग मुझसे इश्क़ और मुहब्बत की बातें करते हैं और मैं समझती हूँ इन्हें कोई रोग है जिसका इलाज मेरे पास है...मगर मैं मैं...बड़ी बेवकूफ़ हूँ...और आप...।"

"मैं," सईद ने मुस्कुराकर कहा, "मैं सबसे बड़ा बेवकूफ़।"

फ़रिया मुस्कुराई और अचानक उसने सईद के होंठ चूम लिये।

थोड़ी देर के लिए इस चुम्बन ने सईद को अचंभे में डाल दिया। वह अत्यधिक घबरा गया, "मिस फ़रिया...यह क्या...", फिर सँभलकर उसने कहा, "ओह...ओह...कुछ नहीं...मुझे दरअसल ऐसी चीज़ों की आदत नहीं...।"

वह उठ खड़ा हुआ और झेंप-भरी हँसी हँसते हुए बोला, "मैं तुम्हारा शुक्रिया अदा करता हूँ...।"

यह सुनकर फ़रिया बहुत हँसी, "शुक्रिया...शुक्रिया...तुम बिल्कुल बच्चे हो...इधर आओ...", और खुद आगे बढ़कर उसने उसको अपनी बाँहों में ले लिया और उसके होंठों पर अपने होंठ जमा दिये।

इससे सईद और परेशान हो गया, "मिस फ़रिया...मिस फ़रिया...।"

फ़रिया ने हटकर उसकी तरफ़ देखा और कहा, "तुम बीमार हो...तुम्हें एक नर्स की ज़रूरत है...।"

अपनी घबराहट दूर करके सईद ने मुस्कुराने की कोशिश करते हुए कहा, "मुझे सिर्फ़ एक नर्स की ही नहीं, और भी बहुत-सी चीज़ों की ज़रूरत है। मगर मुसीबत यह है कि ये सब चीज़ें मिलती नहीं हैं...मेरे बहुत से ख़याल लँगड़े हो चुके हैं...अब तो यह हालत हो चुकी है कि मैं खुद भी नहीं समझ सकता कि मैं क्या हूँ और क्यों हूँ। एक चीज़ के लिए ख्वाहिश करता हूँ, पर साथ-ही-साथ यह भी चाहता हूँ कि उस ख़्वाहिश को किसी को बताऊँ नहीं। इसमें कुछ तो हमारी सोसाइटी के बनाये उसूलों का कसूर है और कुछ मेरा अपना...मैं एक बहुत बड़ा आदमी होता, यानी मेरे अन्दर सबका मुकाबला करने की हिम्मत होती, तो यह

अलग बात थी। मगर अफ़सोस है कि मैं एक मामूली इन्सान हूँ जिसका दिमाग उड़ानें भरना चाहता है...यह कितनी बड़ी ट्रेजेडी है...।"

फ़रिया ने उसकी बात सुनी और थोड़ी देर के बाद कहा, "लेकिन मैंने तो कभी अपने को मामूली औरत नहीं समझा। शायद यही ख़याल तमाम मुसीबतों की जड़ है। मैंने हमेशा यही सोचा है कि मैं गैर-मामूली औरत हूँ। यानी मुझमें मुहब्बत करने की ताकत दूसरी औरतों के मुकाबले में बहुत ज़्यादा है मगर यह अजीब बात है कि मैं किसी मर्द को हमेशा के लिए अपने पास रखने में कामयाब नहीं हो सकी। मेरी समझ में नहीं आता कि मर्द लोग औरत में क्या चाहते हैं?"

"मेरा ख़याल है ऐसी बातों के बारे में सोचना ही नहीं चाहिए...मर्द औरत में क्या चाहता है, औरत मर्द में क्या चाहती है और फिर ये दोनों मिलकर क्या चाहते हैं...यह चाहने का सिलसिला बहुत लम्बा है, जो कभी खत्म नहीं होगा। आओ, कुछ और बातें करें...हाँ, यह बताओ अब तुम क्या करना चाहती हो?"

फ़रिया ज़ोर से हँसी, "यह चाहने का सिलसिला कभी खत्म न होगा...।"

सईद भी हँस पड़ा।

फ़रिया बोली, "मैं बहुत दुःखी हूँ। लेकिन इन बातों ने मेरा सारा दुःख दूर कर दिया है। मैं वैसे भी ज़्यादा देर तक उदास नहीं रह सकती। लेकिन फिर भी जो बातें आपके और मेरे बीच हुई हैं इतनी अच्छी हैं कि वह थकान, जो मैं तीन-चार दिन से महसूस कर रही थी, गायब हो गयी है। अब मैं आगे के बारे में साफ़ दिमाग से सोच सकूँगी।"

"तो क्या इरादा है?"

"कोई खास तो नहीं। लेकिन मैं अब अमृतसर वापस नहीं जाना चाहती। क्योंकि मुझे वहाँ फिर इस बात का खतरा रहेगा कि कोई आदमी बाग़ में घूमता आ निकलेगा और मेरी कमज़ोरियों का फायदा उठाकर चलता बनेगा। मैं अब यहाँ लाहौर ही में रहना चाहती हूँ। आप कब तक यहाँ रहेंगे?"

सईद बोला, "मैं कुछ कह नहीं सकता। लेकिन ख़याल है, दो-ढाई महीने तक यहाँ और रहूँगा। मैं खुद अमृतसर जाना नहीं चाहता।"

फ़रिया ने कहा, "तो मैं भी दो-ढाई महीने तक यहाँ रहूँगी। उसके बाद कोयटा चली जाऊँगी, जहाँ मेरी एक बहन रहती है। वहाँ से फिर कहाँ जाऊँगी इसके बारे में सोचना फिज़ूल है। मेरे पास दो सौ रुपये थे जिनमें से डेढ़ सौ बाकी रह गये हैं। होटल का किराया-विराया चुकाकर मेरे पास सौ बचेंगे। उनसे क्या दो महीने गुज़ारा न हो सकेगा?"

"हो जायेगा, शर्त यह है कि तुम फिज़ूलखर्ची न करो। मेरे पास सिर्फ़ दो सौ रुपये हैं और मुझे इनसे ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त गुज़ारना है...मैं जब अमृतसर से चला था तो अम्मा ने मुझे ढाई सौ रुपये दिये थे। और मेरा ख़याल है, यह ढाई सौ रुपये मुझे देकर और अस्पताल वगैरह की फ़ीस चुकाकर उनके पास सिर्फ़ डेढ़ हज़ार रुपये बाकी बचे होंगे, जो हमारी कुल पूँजी है।"

सईद ने बिल्कुल ठीक कहा। इसलिए कि उसकी माँ के पास अब मुश्किल से डेढ़

हज़ार रुपया शेष बचा था। बाप के दस हज़ार रुपये थे, जिनमें से कुछ उसने अपने बाप की ज़िन्दगी में फिज़ूलखर्ची में खत्म कर दिये, और कुछ उनकी मौत के बाद इधर-उधर बर्बाद कर दिये। सईद ने यह रुपये ऐय्याशी पर खर्च नहीं किये थे। उसको बचपन में अजीब शौक थे। माँ से किसी-न-किसी बहाने या खुद सन्दूक में से रुपया निकालकर उसने चोरी-चोरी कई साइकिलें खरीदीं, और मज़ा यह कि उसको साइकिल चलाने का ठीक ढंग भी नहीं आता था। इन साइकिलों को उसके मित्र इस्तेमाल करते और वह खुश हो जाता।

इसी तरह उसने घर में से रुपया चुराकर एक छोटी सिनेमा-मशीन खरीदी, तीन सौ रुपये की, और यह मशीन वह कभी चला न सका, इसलिए कि उसके मित्र के घर पर बिजली नहीं थी जहाँ उसने उसको छिपा रखा था। दो बार घर से भागकर बम्बई गया और साथ में अपने मित्रों को भी ले गया। वहाँ भी उसने कोई ऐय्याशी न की, मगर सारा रुपया फिज़ूल बर्बाद हो गया।

सईद का बाप उस पर सख्त नाराज़ रहता था। वह एक तेज़मिज़ाज आदमी था। उसको अपने बेटे की इन हरकतों पर सख्त गुस्सा आता था। वह उसको कड़ी से कड़ी सजा भी देता, परन्तु वह उसको अपने जीवन-काल में सुधारने में सफल न हो सका।

परन्तु सईद की माँ का मिज़ाज बहुत नर्म था। उसे अपने बच्चे से इतना प्यार था कि यदि किसी से इसकी चर्चा की जाये, तो उसे यह कहानी लगे। इस लड़के की खातिर उसने बहुत दुःख झेले, बहुत कष्ट उठाये, परन्तु उसकी हर इच्छा को पूरा किया। वह लोगों से कहती थी, "मानती हूँ, मेरा लड़का बहुत फिज़ूलखर्च है। उसको आगे-पीछे का कोई ख़याल नहीं। लेकिन दिल उसका बुरा नहीं...तुम देख लेना, एक दिन सब दलिद्दर दूर कर देगा...।"

अब भी उसका यही ख़याल था कि एक दिन उसका बेटा, जो अच्छे दिल वाला था, अचानक नया आदमी बन जायेगा और सब लोग आश्चर्य से उसका मुँह देखते रह जायेंगे।

माँ के दिल में अपने बेटे के लिए ऐसे विचारों का पैदा होना एक स्वाभाविक बात है...क्योंकि सईद की माँ खुदा पर भरोसा रखने वाली औरत थी, इसलिए वह कभी निराश नहीं होती थी। उसको उम्मीद थी कि उसका इकलौता बच्चा बहुत जल्दी सुधर जायेगा और उसकी तमाम परेशानियाँ दूर हो जायेंगी। वह हर वक़्त खुदा से उसके भले के लिए दुआ माँगती रहती।

इधर उसका लड़का एक तेज़ धारे में बहता चला जा रहा था। वह किसी तरह की चिन्ता ही न करता था। एक ज़माने से उसके विचार विभिन्न रूपों में बन-बिगड़ कर इधर-उधर बिखर रहे थे।

उसकी ज़िन्दगी एक कहानी थी, जो कागज़ पर लिखी गयी थी। जिस तरह कहानी का प्लाट बनाते समय लेखक के विभिन्न विचारों का एक उलझाव-सा पैदा हो जाता है, और घटनाओं-दुर्घटनाओं का एक ढेर-सा लग जाता है, उसी प्रकार उसकी ज़िन्दगी ऐसे अनगिनत कच्चे विचारों का गढ़ थी, जो एक के ऊपर एक ऊटपटाँग ढंग से पड़े थे।

वह एक लम्बी टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी पर जा रहा था, बड़ी तेज़ी के साथ। जो कुछ उसके पीछे रह गया था, उस पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया था। जो उसके आगे आने वाला था,

उससे भी वह बिल्कुल बेखबर था। वह भूत और भविष्य की सीमाओं के बीच में वर्तमान के साथ खेल रहा था—ऐसा खेल जिसका मतलब समझने के लिए यदि उसने चेष्टा भी की तो असफल रहा...

बाप की डाँट और माँ की लगातार दुआओं ने उस पर कोई असर न किया था। और वह अपनी ज़िन्दगी को समझने और न समझने की कोशिश में व्यस्त एक ऐसे रास्ते पर चलता रहा जो एक साथ मुश्किल भी था और आसान भी।

उसका बाप उसकी आँखों के सामने उसके इस तरह के जीवन पर अफ़सोस करता-करता चल बसा। बाप की मृत्यु ने उस पर काफ़ी प्रभाव डाला। वह कई घंटों तक अपने बाप की लाश पर रोया, परन्तु इस मातम के दौरान उसका दिमाग आँसुओं के आगे देखने की कोशिश करता था, आगे...बहुत आगे...। औरतों की चीखों और रोने-धोने की भयानक आवाज़ों के अन्दर न जाने कहाँ उसके विचार एक ऐसी आवाज़ तलाश कर रहे थे, जिसको सुनकर उसे पूर्ण शान्ति मिल सके। उसकी आँखें रोईं, उसका सारा अस्तित्व रो रहा था। उसको अपने बाप की मृत्यु का अत्यधिक दुःख था। मगर रोते-रोते एकदम उसे ख़याल आया था—"मैं रो रहा हूँ...ये लोग जो आस-पास बैठे हैं, वे कहीं यह तो ख़याल नहीं करते कि यह सब ढोंग है...।"

इस विचार ने सईद को अकस्मात् एक नयी दुनिया में फेंक दिया था। उसके आँसू बिल्कुल सूख गये, और वह देर तक अपने बाप के बेजान चेहरे की तरफ़ देखता रहा था।

बाप को कब्र के सुपुर्द करके जब वह अपने मित्रों और रिश्तेदारों के साथ घर वापस आया था तो रात को अकेले में उसे यह महसूस करके बहुत आश्चर्य हुआ था कि वह बहुत हल्का हो गया है, जैसे उसके अस्तित्व पर से मनों वज़न उठा दिया गया है। इसका मतलब समझने की उसने कोशिश की परन्तु असफल रहा।

बाप की मृत्यु के पश्चात् उसने एक दिन बैठकर बहुत से पक्के इरादे किये कि वह अब अपना नया रास्ता बनायेगा। मगर यह नया रास्ता अपनाने पर भी वह उसी पुराने रास्ते पर चलता रहा। यह रास्ता कुछ मोड़ों के बाद ही उसे उसी पुराने रास्ते पर ले गया, जिस पर एक अर्से से चल रहा था। जब उसे इस बात का एहसास हुआ, तो उसने सोचा कि ज़िन्दगी खुद रास्ते बनाती है। रास्ते ज़िन्दगी नहीं बनाते। मगर इस विचार पर अधिक ध्यान दिये बिना वह चलता रहा...और चलते-चलते उसकी राजो से मुठभेड़ हो गयी। उससे अपना दामन बचाकर वह भागा, तो लाहौर में मिस फ़रिया से अचानक मुलाकात हो गयी और उसे ऐसा महसूस होने लगा कि इस एंग्लो-इंडियन लड़की के लिए उसे अपना सफ़र कुछ दिनों के लिए रोक देना पड़ेगा।

मिस फ़रिया से प्रेम करने का ख़याल व्यर्थ था, क्योंकि उसको इस कोण से देखने का ख़याल ही उसके दिमाग में पैदा नहीं होता था। फ़रिया सुन्दर थी, उसमें वे तमाम बातें थीं, जो मर्दों की विशेष इच्छाएँ पूरी कर सकती हैं। परिस्थितियों ने इन दोनों को एक-दूसरे के बिल्कुल पास खड़ा कर दिया था। सईद के दिल में यह इच्छा पैदा हो रही थी कि वह फ़रिया को छूकर देखे। उसको समझने का विचार उसके दिमाग में पैदा नहीं हुआ था।

"देखो मिस फ़रिया," उसने उससे कुछ कहने की कोशिश की, "देखो", लेकिन वह कुछ न कह सका।

फ़रिया ने उससे कहा, "तुम कुछ कहते-कहते रुक क्यों जाते हो? कहो, जो कुछ तुम्हें कहना है, कहो..."

"मैं नहीं कह सकता...मैं कुछ कहना चाहता हूँ मगर लफ़्ज़ फिर अन्दर लुढ़क जाते हैं। मेरी यह कमज़ोरी कभी दूर न होगी। मैं कुछ नहीं कहना चाहता!"

"यह और भी बुरा है। तुम कुछ कहना चाहते हो...और फिर कुछ कहना भी नहीं चाहते...यह क्या मुसीबत!"

"मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि मैंने ऐसी फ़िज़ा में परवरिश पायी है, जहाँ सच्ची बात कहने वाला बेअदब समझा जाता है, जहाँ आज़ाद-ख़याल आदमी को पसन्द नहीं किया जाता...। इसमें मेरा क्या कसूर है...मैं...मैं...तुमसे और कहूँ...तुम खूबसूरत हो...तुम्हारी बातें भी मुझे अच्छी लगती हैं...मैं भी बुरा नहीं...लेकिन...लेकिन फिर...और यह तुम्हारा चूमना...यह तुम्हारा चूमना अभी तक मेरे होंठों पर महसूस हो रहा है। क्या यह हमेशा यूँ ही चलता रहेगा...?"

फ़रिया ने उसकी तरफ़ अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा, और बड़ी गम्भीरता से बोली, "एक और चुम्बन तुम्हारे होंठों पर दूँ...दो हो जायेंगे तो अच्छा रहेगा।"

यह सुनकर सईद ने थोड़ी देर सोचा और कहा, "मिस फ़रिया, मैं तुमसे एक बात पूछूँ...?"

"बड़े शौक से। एक के बदले दो पूछो...तीन पूछो...और चाहे तो पूछते जाओ।"

"मैं पूछता हूँ...क्या तुमसे मुहब्बत करना ज़रूरी है...यानी क्या तुमसे मुहब्बत किये बिना दोस्ती नहीं हो सकती...?"

"तुम्हारा यह सवाल बड़ा अजीब है। मुहब्बत के बिना दोस्ती कैसे हो सकती है और दोस्ती के बिना मुहब्बत भी तो नहीं की जा सकती। तुम खामख्वाह उलझनों में फँस रहे हो।"

यह कहते-कहते उसके गाल सुर्ख हो गये—"मैंने तो कभी ऐसी बातों पर ग़ौर नहीं किया और ऐसी बातों पर ग़ौर ही कौन करता है? सोच-विचार के लिए और बहुत चीज़ें हैं..."

"फ़रिया, मैं एक नयी दुनिया की सरहद पर खड़ा हूँ...उसके अन्दर दाखिल होने से पहले मैं बहुत कुछ सोचना चाहता हूँ। मगर अजीब मुसीबत है कि सोच ही नहीं सकता...मगर मुझे सोचना ज़रूर है, उसके बिना गुज़ारा न होगा।"

फ़रिया के गाल और सुर्ख हो गये, "तुम बिल्कुल बच्चे हो...उसके बगैर ही अच्छी तरह गुज़ारा हो सकेगा...तुम...तुम...आख़िर क्या चाहते हो तुम?"

फ़रिया के इस प्रश्न ने सईद को परेशान कर दिया, "मैं...मैं...क्या चाहता हूँ...मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे पास रहो।"

यह कहकर सईद को ऐसा महसूस हुआ कि उसका सीना एकदम खाली हो गया है, जैसे मोटर के टायर से हवा निकल जाये। वह घबराहट की स्थिति में उठा और तेज़ी से कमरे के बाहर चला गया। फ़रिया बैठी रही। उसका विचार था कि वह तुरन्त ही लौट आयेगा मगर

जब दस-पन्द्रह मिनट बीत गये, तो उसने उठकर बाहर बालकनी में देखा तो वहाँ कोई भी नहीं था। नीचे बाज़ार में नज़र दौड़ाई, तो वहाँ भी सईद कहीं नज़र न आया। फ़रिया को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसे अकेला छोड़कर आख़िर वह कहाँ भाग गया है। वापस कमरे में आकर वह उसकी प्रतीक्षा करने लगी।

हिम्मत से काम लेकर शाम को जब सईद वापस लौटा और कमरे में दाखिल होने लगा तो दरवाज़ा बन्द था। उसने धीरे से दस्तक दी...।

थोड़ी देर के बाद दरवाज़ा खुला। वह अन्दर आ गया तो फ़रिया ने तुरन्त ही दरवाज़ा बन्द करते हुए कहा, “तुम्हें शर्म नहीं आती। इतनी देर के बाद घर वापस आये हो...लेकिन छोड़ो इन बातों को...बताओ कि अब क्या खायेंगे और कहाँ खायेंगे...मुझे बड़ी भूख लग रही है...”

वह कुछ कहने ही वाला था कि उसकी नज़रें लोहे की चारपाई पर पड़ीं। बिस्तर बिछा हुआ था। तकिये रखे थे। तकियों के पास ही उसका वह नॉवल रखा था, जो उसने अभी तक आधा ही पढ़ा था। उसके चारों जूते एक लाइन में चारपाई के नीचे रखे थे। कपड़े के ट्रंक घसीटकर कोने में रख दिये गये थे और सामने खिड़की की सिल पर उसकी घड़ी पड़ी थी। इधर दायें हाथ को जो बाथरूम था, उसका दरवाज़ा खुला था, और उसने देखा कि स्टैंड पर तौलिया लटक रहा है। उसको ऐसा महसूस हुआ कि वह एक ज़माने से इस कमरे में रह रहा है और फ़रिया को भी वह मुद्दतों से जानता है। उसको इस सोच से बड़ा आराम मिला।

खुश होकर सईद ने कहा, “फ़रिया...भई, एक बात की कमी रह गयी है। इधर जंगले पर तुम्हारे धुले हुए बनियान लटकने चाहिए, और साथ वाला कमरा खाली पड़ा है, उसमें तुम्हारी सिंगार-मेज़ होनी चाहिए और उस पर पाउडर और क्रीमों के डिब्बे होने चाहिए...और...और...अगर एक झूलना भी आ जाये, तो क्या हरज है...तब तो पूरा खानदान जमा हो जाये, और मैं...मैं...लेकिन मैं ज़रूरत से ज़्यादा तो नहीं कह गया।”

फ़रिया ने बढ़कर उसके गले में अपनी बाँहें डाल दीं, “तुम बेकार बातों को अपने दिमाग में जगह न दिया करो। साथ वाला कमरा कल ही ले लेना चाहिए, सिंगार मेज़ भी रहे, लेकिन यह झूलने की बात गलत है। मुझे जल्दी माँ बनने की ख्वाहिश नहीं...लेकिन खाना खाने के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है? मैं कहती हूँ...वहीं होटल में आख़िरी डिनर उड़ाया जाये, और किराया-विराया चुकाकर मैं अपना सामान यहाँ ले आऊँ...”

यह सुनकर सईद घबरा गया। फ़रिया की बाँहें हटाते हुए उसने कहा, “मगर...मगर इस कमरे में दो आदमियों की जगह कहाँ है...”

“हटाओ जी”, फ़रिया ने अपना हैंड-बैग खोलकर गालों पर पाउडर लगाते हुए कहा, “देखा जायेगा...इस कमरे में तो आधा दर्जन मरीज समा सकते हैं, और हम तो सिर्फ़ दो हैं। दरअसल तुम बिल्कुल वह हो। तुम्हें कुछ मालूम नहीं कि घर-बार कैसे चलाया जाता है...चलो, अब बाहर चलें...।”

आठ

सईद बेहद खुश था।

फ़रिया के साथ रहते हुए उसे पूरे दस दिन हो गये थे। साथ वाला छोटा कमरा उन्होंने किराये पर ले लिया था। सिंगार-मेज़ भी आ गयी थी और इधर दूसरे कमरे में एक छोटी तिपाई और तीन कुर्सियाँ भी लाकर रख दी गयी थीं। जीवन बड़े मज़े से बीत रहा था।

फ़रिया खुश थी कि उसे इतना अच्छा साथी मिल गया, जिसका दिल धोखेबाज़ी से बिल्कुल साफ़ है...और सईद खुश था कि उसे औरत मिल गयी है...जीवन में पहली बार उसे एक औरत मिल गयी है...जिसको वह छूकर देख सकता है...और जिससे वह बेतकल्लुफ बातें कर सकता है। फ़रिया सलीकेदार औरत है और उसे खुश रखने के बहुत से तरीके जानती है।

फ़रिया हमेशा खुशी और शान से रहना पसन्द करती थी। उसकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि उसके शारीरिक प्रेम में भी एक निश्छलता थी। ऐसी निश्छलता सर्दियों में दहकते हुए कोयलों के अन्दर दिखायी दिया करती थी...दस दिन उनको इकट्ठे रहते हो गये थे। फ़रिया अपने जीवन के बारे में अधिक सोचना नहीं चाहती थी। लेकिन सईद के दिमाग में यह विचार कभी-कभी भिनभिनाती मक्खी की तरह दाखिल हो जाता था कि यदि उसके किसी रिश्तेदार या मित्र ने यह सब कुछ देख लिया, तो क्या होगा। यह सोचते ही उसे बड़ी उलझन होने लगती। और एक अजीब-सी इच्छा उसके दिल में जन्म लेती थी कि यह सारी दुनिया थम जाये...वह खुद बुत-सा बन जाये और सब लोग बेजान पत्थरों की तरह हो जायें—

वह सोचता...'यह आख़िर क्या है...मैं जिस तरह चाहूँ, अपनी ज़िन्दगी बसर करूँ...लोगों को उससे क्या मतलब...मैं अगर शराब पीता हूँ, तो लोगों के बाप का इसमें क्या जाता है! मैं अगर औरत को अपने साथ रखना चाहता हूँ, तो इसमें दूसरों की इजाज़त लेने का मतलब ही क्या है...क्या मैं अपने कामों का खुद ज़िम्मेदार नहीं...?'

लेकिन वह फिर सोचता कि ऐसी बातों पर सोचना बिल्कुल बेकार है।

वह खुश था। बहुत खुश। मगर इसी खुशी के साथ-साथ यह एहसास भी एक मद्धम लकीर की तरह दौड़ रहा था कि वह किसी दिन पकड़ा जायेगा और उसे अपने मित्रों और रिश्तेदारों के सामने लज्जित होना पड़ेगा...सबसे अधिक कष्टदायक बात यह थी कि उसे ज़बर्दस्ती लज्जित होना पड़ेगा, यानी अपनी इच्छा के विरुद्ध। वह बिल्कुल विवश होगा। वे तमाम बातें जो सईद के दिल में थीं और वे तमाम विद्रोही विचार जो उसके दिमाग में पल रहे थे वहीं धरे रह जायेंगे। उसका सर झुक जायेगा, उसको लज्जित होना पड़ेगा...।

एक दिन संयोग ऐसा हुआ कि सईद और फ़रिया दोनों शाम को चार्ली चेप्लिन की फिल्म 'मॉडर्न टाइम्स' देखने गये और जब खेल देखकर सिनेमा हॉल से बाहर निकले तो एक आदमी ने उनकी तरफ़ बड़े ध्यान से देखा। फ़रिया ने उससे कहा, "यह आदमी तुम्हें बड़े ग़ौर से देख रहा है, तुम्हारा दोस्त तो नहीं?"

सईद ने उस घूरने वाले आदमी की तरफ़ देखा और ज़मीन उसके पैरों के नीचे से

निकल गयी। यह उसका दूर-दराज का एक रिश्तेदार था जो लाहौर ही में रहता था और किसी कॉलेज में पढ़ रहा था। उसने सर के इशारे से उसके सलाम का उत्तर दिया और फ़रिया को साथ लिये बिना जल्दी से उस भीड़ में घुस गया जो मुख्य दरवाज़े पर जमा थी।

बाहर निकलकर जो पहला ताँगा नज़र आया सईद उसमें बैठ गया। इतने में फ़रिया आ गयी। जल्दी से उसको ताँगे में बिठाकर घर का रुख किया। रास्ते में उनकी कोई बात नहीं हुई। परन्तु जैसे ही वे कमरे में घुसे, फ़रिया ने कहा, "यह एकदम तुम्हें क्या हो गया है...वह आदमी कौन था जिससे डरकर तुम मुझे छोड़ कर भाग गये?"

टोपी उतारकर सईद ने चारपाई पर फेंक दी और कहा, "मैं उसका नाम तो नहीं जानता, लेकिन वह मेरा रिश्तेदार है...अब बात निकलती-निकलती कहाँ की कहाँ फैल जायेगी..."

फ़रिया ज़ोर से हँसी, "बस?...बस इतनी-सी बात को जनाब ने अफ़साना बना दिया...अजी हटाओ...कौन-सी बात कहाँ तक फैलेगी...तुम बड़े वहमी हो...चलो आओ, मैं तुम्हारे गले पर मालिश कर दूँ...इधर-उधर की बातें शुरू कर दोगे तो मुझे याद न रहेगा...कल से तुम्हारा गला खराब है...बस अब मैं कुछ न सुनूँगी...इस कुर्सी पर बैठ जाओ...ठहरो कोट मैं उतार देती हूँ...।"

कोट और टाई उतारकर फ़रिया ने सईद के गले पर मालिश शुरू कर दी और वह थोड़ी देर के लिए अपने उस रिश्तेदार को भूल गया।

मालिश करते-करते फ़रिया ने उससे कहा, "अरे...डिनर खाना तो हम भूल ही गये...तुम अफरा-तफरी में यहाँ दौड़ आये और सारा प्रोग्राम चौपट हो गया। हमने यह तय किया था कि सिनेमा देखकर खाना 'स्टिफल' में खायेंगे...और यूँ इतवार का दिन मज़े से कट जायेगा...अब क्या ख़याल है...।"

"मेरा ख़याल क्या पूछती हो, चलो, मगर मुझे तो भूख नहीं है...और फिर मेरा गला भी खराब है...।"

"तो ऐसा करो, भागकर नीचे से एक डबल-रोटी ले आओ। थोड़ा-सा मक्खन और पनीर यहाँ पड़ा है...जैम भी है...दो टोस तुम खा लेना, बाकी मैं खा लूँगी...यह भी बुरा नहीं...'स्टिफल' में खाना अगले इतवार को सही...।"

सईद डबल-रोटी ले आया। मिस फ़रिया ने यूँ चुटकियों में तिपाई पर कपड़ा बिछाकर डिनर चुन दिया, और दोनों खाने में मगन हो गये...।

एक टोस मक्खन लगाकर फ़रिया ने उसको दिया और कहा, "अगर दिन यूँ ही बीतते जायें तो कितना अच्छा हो...मैं ज़िन्दगी से और कुछ नहीं माँगती...सिर्फ़ ऐसे दिन माँगती हूँ जो इस टोस की तरह मक्खन लगे हों...।"

सईद ने जो अपनी होने वाली बदनामी के बारे में सोच रहा था। फ़रिया के चिकने गालों की तरफ़ देखा। उसके दिल के एक कोने में यह इच्छा पनपी कि वह उठकर उन्हें चूम ले। सईद अभी कोई निर्णय न ले पाया था कि फ़रिया मुस्कुराती हुई उठी और अपने होंठ सईद के होंठों से जोड़ दिये।

एक क्षण के लिए सईद को ऐसा महसूस हुआ कि फ़रिया के होंठों की छुअन ने झिंझोड़कर उसकी रूह को आज़ाद कर दिया है। तुरन्त ही उसने ज़ोर से फ़रिया के सख़्त सीने को अपनी छाती के साथ भींच लिया और दूसरे ही क्षण वे दोनों लोहे के पलँग पर एक-दूसरे में गुम थे।

सईद पागलों की तरह फ़रिया के गालों और होंठों और आश्चर्य से फड़फड़ाती हुई काली आँखों को चूमने लगा। फ़रिया को सईद की यह मर्दाना गर्मी पसन्द आयी और उसने अपने को उसकी बाँहों में सौंप दिया।

अकस्मात सईद को फ़रिया की इस स्थिति का एहसास हुआ...और जिस तरह थर्मामीटर को बर्फ़ दिखाने से उसका पारा नीचे गिरता है उसी तरह सईद की सारी गर्मी उसके डरपोक दिल में सिमट आयी और वह माथे से ठंडा पसीना पोंछता हुआ फ़रिया के पास से अलग हट गया।

फ़रिया को जैसे बड़े ज़ोर से ठेस लगी। उसने भिंची हुई आवाज़ में केवल इतना कहा, "क्या बात है सईद?"

"कुछ नहीं," यह कहकर सईद की गर्दन झुक गयी, "मैं तुम्हारे काबिल नहीं हूँ..."

यह सुनकर फ़रिया के होंठ बड़े प्यार से खुले, "डार्लिंग" कहते हुए वह उठी और सईद के गले को अपनी दोनों बाँहों में लेते हुए बोली, "बेवकूफ़ मत बनो।"

सईद ने उसी बुझे लहज़े में उत्तर दिया, "मैं खुद नहीं बनता, बेवकूफ़ या जो कुछ भी हूँ, यह मेरे माहौल की वजह से है।" यह कहकर उसने फ़रिया की बाँहें धीरे से हटाईं, "मुझ में और तुम में बहुत फर्क है। तुम आज़ाद माहौल में पैदा हुई हो। तुम अंग्रेज़ नहीं हो, तुम्हारा रंग हाकिम कौम के रंग से नहीं मिलता, लेकिन इसके बावजूद तुम न चाहते हुए भी यह महसूस करती हो कि तुम्हारा दर्जा हम हिन्दुस्तानियों से बहुत ऊँचा है। लेकिन छोड़ो इसको। तुम सब के सामने भी मुझे डार्लिंग कह सकती हो। मगर अकेले में भी तुम्हें डार्लिंग कहते हुए मेरी ज़बान रुक जायेगी। तुम्हारी सोच आज़ाद है, लेकिन मेरी सोच माहौल की ज़ंजीरों में जकड़ी हुई है। तुम मुकम्मिल हो, लेकिन मैं अधूरा हूँ..."

फ़रिया जिसके कानों में अभी तक सईद की मर्दाना गर्मी के स्वर भनभना रहे थे, सईद की इन दार्शनिक किस्म की बातों को न समझ सकी, बोली, "जाने तुम क्या कह रहे हो।"

सईद पलँग पर बैठ गया। जेब से सिगरेट निकालकर उसने फ़रिया की तरफ़ देखा। इस ख़याल से कि अपनी और फ़रिया की स्वस्थ इच्छा को उसने बड़े ही भोंडे तरीके से अधूरा छोड़ दिया है, सईद को सख्त अफ़सोस हुआ। वह बोला, "तुम मेरी उलझी हुई बातें नहीं समझोगी, इसलिए कि तुम्हारी ज़िन्दगी के तार बिल्कुल सीधे हैं, लेकिन यहाँ मेरे दिमाग में उलझाव के सिवा और कुछ है ही नहीं। मैंने एक बार पहले भी कहा था कि मैं तुम्हारे काबिल नहीं। एक बार फिर कहता हूँ फ़रिया—मैं तुम्हारे काबिल नहीं..."

फ़रिया ने चिढ़कर पूछा, "क्यों?"

"बताता हूँ। लेकिन तुम पहले मुझसे यह पूछो—सईद, क्या तुम अपनी बीवी बनाकर मुझे अपने घर ले जा सकते हो?"

फ़रिया ने मुस्कुराते हुए कहा—"लेकिन मैंने तुमसे कब कहा है कि मुझसे शादी करो।"

सईद ने सिगरेट सुलगायी और ज़रा सोचकर कहा, "तुमने मुझसे ऐसा नहीं कहा, लेकिन मैंने बार-बार अपने दिल से यही सवाल किया है, और मुझे हमेशा यही जवाब मिला है कि सईद, तुममें इतनी हिम्मत नहीं है। जब मेरे सवाल का यह जवाब है, तो बताओ, मैं कैसे तुम्हारे काबिल हो सकता हूँ..."

फ़रिया अपने भावों में डूबती हुई बोली, "क्या हम शादी के बिना एक-दूसरे से मुहब्बत जारी नहीं रख सकते?"

यह सुनकर सईद के दिल में सिमटी हुई गर्मी थोड़ी-सी फैली, परन्तु वह फ़रिया के पास से उठ खड़ा हुआ, "नहीं।"

"क्यों?"

"इसलिए कि मैं यहाँ चोरों की तरह रहता हूँ। आज ही की बात ले लो। सिनेमा के बाहर एक रिश्तेदार को देखकर, जिसका नाम भी मुझे याद नहीं, मैं कितना परेशान हो गया था। मैंने तुम्हें ऐसे छोड़ दिया था जैसे तुम मेरे लिए बिल्कुल अजनबी थीं। ऐसे गिरे हुए आदमी के साथ रहकर तुम्हें ज़िन्दगी का क्या मज़ा आ सकता है...जो अभी-अभी औरत की मुहब्बत को ठुकराकर एक तरफ़ हट गया था..."

फ़रिया मुस्कुराती हुई पलँग पर से उठी और एक बार फिर अपनी बाँहें सईद के गले में डाल दीं, "तुम बड़े अच्छे हो सईद...बस एक मैं ही मुहब्बत करना नहीं जानती।"

फ़रिया की बेहद सादगी ने सईद की घायल रूह पर एक और चोट की। उसने धीरे से फ़रिया के परेशान बाल सँवारे और कहा, "नहीं...यह मेरा जुर्म है...और मैं इसकी सज़ा एक मुद्दत से भुगत रहा हूँ...तुम से अलग हुआ तो यह सज़ा बाकी ज़िन्दगी की भी हो जायेगी।"

फ़रिया चीख उठी, "तुम मुझे छोड़ दोगे?"

सईद जवाब में केवल इतना कह सका—"मुझे अपने आप से यही उम्मीद है।"

फ़रिया बिलख-बिलखकर रोने लगी।

सईद कुछ क्षण चुप खड़ा रहा। परन्तु इस संक्षिप्त समय में उसके दिल की सिमटी हुई गर्मी उसके सारे शरीर में फैल गयी थी। उसने सुर्ख आँखों से फ़रिया को देखा और आगे बढ़कर अपने जलते हुए होंठ उसके होठों पर जमा दिये।

एक बार फिर लोहे के पलँग पर वे एक-दूसरे में गुम हो गये थे।

मेरा और उसका इन्तिक़ाम

घर में मेरे सिवा कोई मौज़ूद नहीं था। पिताजी कचहरी में थे और शाम से पहले कभी घर आने के आदी न थे। माता जी लाहौर में थीं और 'विमला' मेरी बहिन अपनी किसी सहेली के यहाँ गयी थी। मैं तन्हा अपने कमरे में बैठा किताब लिये ऊँघ रहा था कि सदर दरवाज़े पर दस्तक हुई। उठकर दरवाज़ा खोला तो देखा कि 'पार्वती' है।

दरवाज़े की दहलीज़ पर खड़े-खड़े उसने मुझसे पूछा, "मोहन साहब! 'विमला' अन्दर है क्या?"

जवाब देने से पहले एक लम्हे के लिए 'पार्वती' की तमाम शोख़ियाँ मेरी निगाहों में फिर गयीं और जब मैंने सोचा कि घर में कोई व्यक्ति मौज़ूद नहीं तो मुझे एक शरारत सूझी। मैंने झूठ बोलते हुए बड़ी बेपरवाही के अन्दाज़ में कहा—"अपने कमरे में ब्लाउज़ टाँक रही है।"

यह कहकर मैं दरवाज़े से बाहर गली में निकल आया। 'विमला' का कमरा ऊपरी मन्ज़िल पर था। जब मैंने गली के रोशनदान से 'पार्वती' को सीढ़ियाँ चढ़ते देखा तो झट से दरवाज़े में दाख़िल होकर उसको बन्द कर दिया और कुंडी चढ़ाकर वह ताला लगा दिया जो पास ही दीवार पर एक कील से लटक रहा था। दरवाज़े में ताला लगाने के बाद मैं अपने कमरे में चला आया और सोफ़े पर लेटकर अपने दिल की धड़कनों को सुनता रहा।

'पार्वती' के किरदार का हल्का-सा नक़्शा यूँ खींचा जा सकता है।

वह एक शोख़, चंचल और शर्मीली लड़की है। अगर इस घड़ी आपसे बड़ी सहजता से बात कर रही है तो थोड़े ही अर्से के बाद आप उसे बिल्कुल अलग पायेंगे। शरारत उसकी रग-रग में कूट-कूट कर भरी है। लेकिन कभी-कभी इतनी सन्जीदा और शालीन हो जाती है कि उससे बात करने की ज़ुर्रत तक नहीं हो सकती। मुहल्ले भर में वह अपनी क़िस्म की एकमात्र लड़की है। लड़कों से छेड़छाड़ करने में उसे ख़ास लुत्फ़ आता है। अगर कोई लड़का जवाब में मामूली-सा मज़ाक भी कर दे तो उसे सख़्त नागवार गुज़रता है। गली के नौजवानों के नाज़ुक जज़्बात से खेलने में उसे ख़ास लुत्फ़ आता है। बिल्ली की तरह वह चाहती है कि चूहा उसके पंजों के नीचे दुबका रहे और वह उसको इधर-उधर पटक-पटककर खेलती रहे। जब उकता जाये तो छोड़कर चली जाये। कोठे पर चढ़कर मुहल्ले के लड़कों की पतंग तोड़ लेने में उसे एक ख़ास महारत हासिल है।

हमारे घर में उसका अक्सर आना-जाना था। इसलिए मैं उसकी शोख़ तबियत से एक हद तक वाक़िफ़ था। मेरे साथ वह कई मर्तबा नोक-झोंक कर चुकी थी, मगर मैं दूसरों की

मौजूदगी में झेंपकर रह जाता था। मुझे उससे नफ़रत न थी। इसलिए कि उसमें कोई आदत भी ऐसी नहीं जिससे नफ़रत की जा सके। अलबत्ता उसकी तबियत किसी क़दर उलझी हुई थी और उसकी हद से ज़्यादा शोख़ी कभी-कभी मेरे जज़्बात पर बहुत भारी पड़ती थी। अगर मैं सबके सामने उसकी फुलझड़ी जैसी ज़बान को (जिससे कभी तेज़-ओ-तुन्द और कभी नर्म-ओ-नाज़ुक शरारे निकलते थे) अपनी बोलने की ताक़त पर ज़ोर देकर बन्द कर सकता तो मुझे ये शिकायत हर्गिज़ न होती बल्कि इसमें ख़ास लुत्फ़ भी हासिल होता। मगर यहाँ मौज़ूदा निज़ाम की मौज़ूदगी में इस किस्म के ख़्वाब क्योंकर पूरे हो सकते हैं।

पार्वती के सन्तुलित जिस्म में खूबियाँ भरी पड़ी थीं। तरुणाई उसके हर अंग में साँस लेती थी। आँखों में धूप और बारिश के टकराव जैसी चमक, गदराये हुए यौवन का दिलकश उभार, आवाज़ में सुबह के ख़ामोश वातावरण में मन्दिर की घंटियों की ध्वनि जैसा माधुर्य और चाल...ऐसे अल्फ़ाज़ नहीं हैं कि उसके क़दमों का नक़्शा पेश किया जा सके।

घर ख़ाली था। दूसरे लफ़्ज़ों में मैदान साफ़ था। इसलिए मैंने मौक़ा बहुत मुनासिब ख़याल किया और उससे इन्तिक़ाम लेने की ठान ली। मेरी अर्से से ख़्वाहिश थी कि उस फिसल जाने वाली मछली को एक बार पकड़कर इतना सताऊँ, इतना सताऊँ कि रो दे और कुछ अर्से के लिए अपनी तमाम शोख़ियाँ (शरारतें) भूल जाये।

मैं कमरे में बैठा था कि वह आशा के अनुरूप घबराई हुई आयी और कहने लगी, “दरवाज़े में ताला लगा हुआ है।”

मैं बनावटी हैरत से विकल होकर यकायक उठकर खड़ा हो गया।

“क्या कहा?”

“सदर दरवाज़े में ताला लगा हुआ है।”

“बाहर से गली के उन गन्दे लौंडों ने ताला लगा दिया होगा।” ये कहता हुआ मैं उसके पास आ गया।

इस पर पार्वती ने कहा, “नहीं, नहीं। ताला तो अन्दर से लगा हुआ है।”

“अन्दर से?—और विमला कहाँ है?”

“अपने कमरे में तो नहीं। कोने-कोने में देख आयी हूँ। कहीं भी नहीं मिली।”

“तो फिर उसी ने ये शरारत की है। जाओ देखो बावर्चीख़ाने, गुसलख़ाने में या इधर-उधर कहीं छिपी होगी—तुमने तो मुझे डरा ही दिया था।”

यह कहकर मैं वापस मुड़कर सोफ़े पर लेट गया और वह ‘विमला’ को ढूँढने चली गयी। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद फिर आयी और कहने लगी—“मैंने तमाम घर छान मारा, परमात्मा जाने कहाँ छिपी है। आज तक मेरे साथ उसने इस क़िस्म की शरारत नहीं की। लेकिन आज जाने उसे क्या सूझी है?”

पार्वती सोफ़े के पीछे खड़ी थी। मैंने उसकी बात सुनी और पास पड़े हुए अख़बार के पन्ने खोलते हुए कहा—“मुझे खुद ताज्जुब हो रहा है। सेहन के साथ वाले कमरों में जाकर तलाश करो, वहीं किसी पलँग के नीचे छिपी बैठी होगी।”

यह सुनकर पार्वती ये कहती हुई चली गयी—“उसे मेरी शरारतों की जानकारी नहीं,

ख़ैर सौ सुनार की, एक लोहार की।"

उसको व्याकुल देखकर मेरा जी बाग़-बाग़ (प्रफुल्लित) हो रहा था। उस चपला को अपनी होशियारी पर कितना नाज़ था। मैं हँसा, इसलिए कि उसके फड़फड़ाने वाले पर मेरी गिरफ़्त में थे। और मैं बड़े मज़े से उसकी बेचैनी का तमाशा कर सकता था।

मैं अपने ज़ेहन में इस होने वाले ड्रामे का तमाम प्लॉट तैयार कर चुका था और उस पर अमल कर रहा था। थोड़ी देर के बाद वह फिर आयी। इस मर्तबा सख़्त झल्लायी हुई थी। दाहिने कान से बहुत नीचे बालों का एक गुच्छा क्लिप की गिरफ़्त से आज़ाद होकर ढलक आया था। साड़ी सर पर से उतर गयी थी और वह बार-बार अपने गर्द भरे हाथों को एक नन्हे रूमाल से पोंछ रही थी। कमरे में दाख़िल होकर मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गयी।

मैंने उससे लेटे-लेटे पूछा, "क्यों कामयाब हुईं क्या?"

उसने थकी हुई आवाज़ में जवाब दिया, "नहीं, मैं अब यहाँ बैठकर उसका इन्तज़ार करती हूँ।"

"हाँ, बैठो, मैं ज़रा ऊपर हो आऊँ।" ये कहकर मैं उठा और ऊपर चला गया।

ऊपरी मंज़िल की छत पर मैं पन्द्रह-बीस मिनट तक टहलता रहा। चाबी मेरी जेब में थी, इसलिए मुझे मालूम था कि पार्वती किसी सूरत में भी घर से बाहर नहीं जा सकती और ये एहसास मेरे दिल में एक नाक़ाबिल-ए-बयान खुशी पैदा कर रहा था। मैदान बिल्कुल साफ़ था और मैं इस मौक़े का पूरा-पूरा फ़ायदा उठाना चाहता था। मेरी सबसे बड़ी ख़्वाहिश यह थी कि पार्वती की दूसरों पर हँसने वाली आँखों की चमक एक लम्हे के लिए मंद पड़ जाये और उसको मालूम हो जाये कि मर्द के पास निस्वानी (ज़नाना) शरारतों का बहुत बड़ा जवाब मौज़ूद है।

ये खेल बहुत खतरनाक था। क्योंकि इस बात का डर था कि वह पिताजी, माता जी या विमला को तमाम बीती घटनाएँ सुना देगी। इस सूरत में घरवालों की निगाहों में मेरी मानहानि यक़ीनी थी मगर चूँकि मेरे सर पर उस दिलचस्प इन्तिक़ाम का भूत सवार था, जो मैंने उस चंचल लड़की के लिए तय किया था। इसलिए कुछ अर्से के लिए ये तमाम चीज़ें मेरी आँखों से ओझल हो गयी थीं। मैं अपने दिल से सवाल करता था कि नतीजा क्या होगा। लेकिन इसका जवाब मेरी पोज़ीशन की सही तस्वीर दिखाने की बजाय पार्वती—पराजित पार्वती की तस्वीर आँखों के सामने खींच देता था—मैं बेहद मस्त था।

कुछ अर्सा ऊपरी मंज़िल पर टहलने के बाद मैं नीचे आया। पार्वती कुर्सी पर बैठी सख़्त बेचैनी की हालत में अपनी खूबसूरत टाँग हिला रही थी। जिस पर रेशमी साड़ी का कपड़ा इधर-उधर थिरक रहा था।

मैंने कमरे में दाख़िल होते हुए उससे पूछा, "क्यों विमला मिली?"

"नहीं मैंने एक बार फिर सब कमरों को छान मारा है लेकिन वह ऐसी ग़ायब हुई है जैसे गधे के सर से सींग।"

मैं मुस्कुराया। "चलो हम दोनों मिलकर उसको ढूँढें। तुम इस क़दर घबरा गयी हो, तुम तो बड़ी निडर और बेबाक लड़की हो।"

“घबराने की कोई बात नहीं, लेकिन मुझे बहुत जल्द घर वापस जाना था।” पार्वती के लबों पर एक निहायत ही प्यारा तबस्सुम पैदा हुआ।

हम दोनों एक अर्से तक नीचे सेहन में पलँगों के नीचे, चारपाइयों के पीछे, मेज़ों के इधर-उधर पर्दों को हटा-हटाकर विमला को तलाश करते रहे, मगर वह घर पर होती तो मिलती। आख़िरकार मैंने खुद को व्याकुल ज़ाहिर करते हुए पार्वती से कहा, “हैरत है तुम्हीं बताओ आख़िर विमला गयी कहाँ?”

पार्वती जो बार-बार झुकने, उठने और बैठने से बहुत थक गयी थी, अपनी पेशानी से पसीने के नन्हे-नन्हे क़तरों को पोंछती हुई बोली—“मैं क्या जानूँ, ज़मीन खा गयी या भूत-प्रेत उठाकर ले गये। ये आप ही की बहिन की कारस्तानी है। ख़ैर कोई हर्ज की बात नहीं। मैं भी ऐसा सताऊँगी कि उम्र भर याद रखेगी। विमला हज़ार हो मुझसे उड़कर कहाँ जायेगी।”

मैं ख़ामोश रहा और इत्मिनान से कुर्सी पर बैठ गया। इस वक़्त हम माता जी के कमरे में थे। पार्वती मेरे सामने टॉयलेट मेज़ के क़रीब खड़ी थी। उसके चेहरे को देखकर यह मालूम होता था कि दिमाग़ी तौर पर सुकून में है। ग़ैर इरादी तौर पर वह बार-बार मेज़ के गोल आइने में अपना चेहरा देख रही थी और टाँगों पर से अपनी साड़ी की सिलवटें दुरुस्त कर रही थी। अचानक कमरे के मुकम्मल एकान्त से बेख़बर होकर वह बहुत बेचैन हो गयी और मुझसे कहने लगी—“मोहन साहब मुझे घर जाना है। जितना जल्द जाना चाहती हूँ, उतनी देर होती जाती है। विमला के अब ‘पर’ लग गये हैं। शायद मेरे हाथों उसकी शामत आयी है।”

“हाँ, हाँ, मगर मैं क्या कर सकता हूँ। आप जानें और वह। इसमें मेरा क्या कुसूर है और अगर आपको सचमुच जल्दी जाना है तो कहिये, मैं आपकी कमर में रस्सी बाँधकर छत से लटका दूँ या कहिये तो ताला तोड़ दूँ? अब आपकी जो राय हो?”

उसने एक लम्हे के लिए सोचा और जवाब दिया, “मजबूरी है ताला तो तोड़ना ही पड़ेगा।”

लेकिन मैंने कुर्सी पर से उठते हुए कहा, “ताला बहुत बड़ा है और उसको तोड़ने के लिए बहुत ही दिक्कतें पेश आयेंगी। इसके अलावा हथौड़ों की चोटों की आवाज़ सुनकर लोग क्या कहेंगे?”

ये सुनकर वह संजीदा हो गयी और कुछ देर सोचने के बाद बोली, “लेकिन मुझे घर भी तो जाना है। लोग क्या कहेंगे। हम किसी गैर के घर में सेंध थोड़े ही लगा रहे हैं। अपने घर का ताला तोड़ रहे हैं। हाय-हाय आज मैं किस शामत से आयी थी। अब क्या होगा, मैं किस तरह घर जाऊँ। हाय राम किस बला में फँस गयी।”

मेरा वार ख़ाली गया। दरअसल मैं यह चाहता था कि वह इस माहौल की नज़ाकत से अच्छी तरह आगाह हो जाये जिसमें कि वह इस वक़्त मौज़ूद थी। चुनांचे मैंने बात को ज़रा विस्तार से बयान किया। “माता जी लाहौर गयी हैं। पिताजी बाहर हैं और विमला गायब है। इस सूरत में...” मैं यह कहते-कहते रुक गया और फिर उस फिक़रे को यूँ पूरा कर दिया, “ताला तोड़ना अच्छा मालूम नहीं होता।”

अब की दफ़ा तीर निशाने पर बैठा। पार्वती के सफ़ेद चेहरे पर हल्की-सी सुर्ख़ी छा

गयी और एक लम्हे के लिए ऐसा मालूम हुआ कि उसके गालों पर गुलाब की पत्तियाँ बिखर गयी हैं। वह अपनी रेशमी साड़ी में सिमटी, काँपी, थर्रायी, पारे की तरह तड़पी और कुछ कहती-कहती ख़ामोश हो गयी। मैंने इस मौक़े से फ़ायदा उठाया और हमदर्दाना लहज़े में कहा—"तुम खुद सोच सकती हो, वैसे मुझे कोई एतराज़ नहीं।"

वह दुखी होकर रह गयी। मैं उसकी विकलता देखकर खुश हो रहा था। कल की चुलबुली, शोख़-ओ-संग और तर्रार लड़की जो बादलों से आँख मिचौली खेलती हुई बिजली की तरह चमका करती थी, आज दीये की लौ बनकर रह गयी थी जो मेरी फूँक के रहम पर थी।

साहिल के पत्थरों से टकराकर पलटती हुई लहर की तरह उसने अपने आप में नयी ताज़गी पैदा करके कहा, "मेरी तो जान पर बनी हुई है और आप हैं कि चबा-चबा कर बातें किये जा रहे हैं।"

"कौन-सी बात?"

"यही, यही कि लोग क्या कहेंगे?" उसने अपने शर्मीले जज़्बात पर पूरी ताक़त से क़ाबू पाते हुए कहा। मैं कुर्सी पर बैठ गया और होंठों-होंठों में गुनगुनाने लगा।

"माता जी लाहौर गयी हैं, पिताजी बाहर हैं और विमला गुम है।"

"आप कौन-सी नयी बात बता रहे हैं। ये तो मुझे भी मालूम है। सवाल तो यह है कि विमला कहाँ है?"

"ऊपर होगी और कहाँ?"

"ऊपर? ऊपर की खूब कही। मैं ऊपर चप्पा-चप्पा ढूँढ आयी हूँ।"

"तुम उसे नीचे ढूँढती होगी तो वह दूसरी सीढ़ियों से ऊपर चली जाती होगी। जब तुम ऊपर जाओगी तो वह नीचे आ जायेगी। ये एक बात मेरे ज़ेहन में आती है और..."

"इसका एक इलाज हो सकता है।" पार्वती ने अपने दाहिने गाल पर उँगली से एक निहायत दिलकश गढ़ा बनाते हुए कहा, "मैं ऊपर जाती हूँ और आप ऐसा कीजिये कि दूसरी सीढ़ियों पर खड़े हो जाइये और ज्यों ही वह नीचे उतरे, उसे पकड़ लीजिये।"

मैंने उसके सुझाव को सुना और कहा, "लेकिन शायद वह यहाँ मौजूद ही न हो।"

"यहाँ मौजूद न हो।" मेरी बात सुनकर पार्वती का सर ज़रूर चकरा गया होगा।

"हाँ हो सकता है, इसलिए कि अगर होती तो मिल न जाती?"

"क्या हो सकता है। वह यहाँ न हो तो फिर दरवाज़े को ताला किसने लगाया है। ये कहीं आपकी शरारत तो नहीं, सच कहिये?"

"मुझे क्या मालूम। मेरा ख़्याल है कि 'विमला' अपनी किसी सहेली के यहाँ गयी होगी। ये मैं इसलिए कह रहा हूँ कि वह सुबह अपनी साड़ी इस्त्री कर रही थी।"

"आप क्या कह रहे हैं?" पार्वती की हैरत धीरे-धीरे बढ़ रही थी। "अगर वह किसी सहेली के यहाँ गयी है तो फिर ताला किसने लगाया है—ये क्या शरारत है?"

"हैरान होने की कोई बात नहीं। मुझे अच्छी तरह याद है कि वह अपनी सहेली ही के यहाँ गयी है। इसलिए कि जाते वक़्त वह सन्तो को साथ लेती गयी थी, अब मुझे याद आया।

बाक़ी रहा मैं, तो आप ही बताइये, मैं आपको क्यों क़ैद करने लगा। पर इतना ज़रूर कहूँगा, बड़ी दिलचस्प मछली जाल में फँसी है।"

"आप क्या कह रहे हैं...तो फिर—तो फिर...ये शरारत..." वह अपने वाक्य को पूरा न कर सकी।

"हाँ यह शरारत मैं भी तो कर सकता हूँ।" मैंने मुस्कुराकर जवाब दिया। "या आपका ख़याल है कि मैं इसके योग्य नहीं?—शायद मैंने आपसे किसी वक़्त का बदला लिया हो?"

पार्वती की हालत अजीब-ओ-ग़रीब थी। बन्द भाप की तरह वह बाहर निकलने के लिए बेकरार हो रही थी। उसने मेरी तरफ़ तेज़ निगाहों से देखा। जैसे मेरे सीने में पार कर जाना चाहती है, लेकिन मैं एक कामयाब एक्टर की तरह अपना पार्ट निभा रहा था।

उसने अपनी आँख की पुतलियों को नचाते हुए पूछा, "लेकिन इस शरारत की वजह?"

"मुझे मालूम नहीं।"

वह ख़ामोश हो गयी। फिर यकायक जैसे उसे कुछ याद आ गया। कहने लगी —"मोहन साहब! मुझे घर जाना है।"

"मुझे मालूम है, पर ये तो बताइये, क्या किसी ने आपका हाथ पकड़ा है?"

"तो दरवाज़ा खोल दीजिये।" ये कहने के बाद उसने कुछ सोचा और कहा, "लेकिन आप किस तरह कह रहे हैं कि ताला आपने लगाया है। क्या विमला वास्तव में यहाँ नहीं है?"

"मुझे यक़ीन है कि वह यहाँ नहीं है, इसलिए कि मैं खुद उसे राम गली में छोड़कर आया हूँ और मैंने इन हाथों से ताला लगाया है।" मेरी गुफ़्तगू का अन्दाज़ निहायत गम्भीर था।

"आप ने ताला क्यों लगाया?" पार्वती ने तत्परता से पूछा, "देखा मैं न कहती थी, ये आप ही की कारस्तानी है।"

"क्यों लगाया, इसलिए कि मैंने लगा दिया और मैंने नहीं लगाया। मेरे हाथों ने लगाया है?"

"ये भी कोई बात है?"

मैं कुर्सी पर से उठा और जम्हाई लेकर कहा, "रात को देर तक बाहर रहने से नींद पूरी न कर सका। मेरा ख़याल है अब सोना चाहिए।"

"चाबी दे दीजिये, फिर आप सो सकते हैं। वरना मैं आफ़त मचा दूँगी।" पार्वती ने बेचैनी से चाबी के लिए अपना हाथ मेरी तरफ़ बढ़ा दिया।

"चाबी—चाबी।" मैंने अपनी क़मीज़ की जेब में हाथ डाल कर कहा, "मगर वह तो गुम हो गयी। न मालूम किसने उड़न छू कर डाली अब क्या होगा?"

यह सुनकर पार्वती विस्मित होकर बोली, "गुम हो गयी होगी। यानी आपको पहले से ही मालूम था कि गुम हो जायेगी। मोहन साहब। दाहिने हाथ से चाबी निकाल कर दे दीजिये। ये शरारतें जवान लड़कियों से अच्छी मालूम नहीं होतीं, वरना मेरा नाम पार्वती है। मुझे कोई ऐसी-वैसी लड़की न समझियेगा।"

“चाबी वाक़यी गुम है।” मैंने पहली-सी गम्भीरता के साथ जवाब दिया, “और तुम्हें इस क़दर तेज़ होने की ज़रूरत नहीं, बेकार तुम मुझ पर इस क़दर गर्म हो रही हो।”

“चाबी गुम कहाँ हुई, मुझे भी तो कुछ मालूम हो?” पार्वती अब हवा से लड़ना चाहती थी। “आख़िर आपकी जेब से कोई जिन्न ले गया।”

“अगर तुम्हें मालूम हो जाये तो क्या कर लोगी। दरवाज़ा बन्द है और मैंने उसे गली में फेंक दिया है। लो अब साफ़ सुनो मैंने दरवाज़े की दराज़ से देखा कि जब मैंने गली में फेंकी तो कुत्ते ने हड्डी समझकर मुँह में दबोच ली और निगल गया अब वह कुत्ता ढूँढा जाये, उसका पेट चीरा जाये, तब कहीं मिले।”

ये सुनकर वह झल्लाकर रह गयी और ज़्यादा तेज़ आवाज़ में कहा, “आप को इस शरारत का जवाब देना होगा?”

“किसे?”

“ये बाद में मालूम हो जायेगा।”

मैंने इत्मिनान की साँस ली और कहा, “यह बाद की बात है। उस वक़्त देखा जायेगा। अब हमें हालात पर ग़ौर करना है। कुत्ते के पेट में कहीं कुंजी घुल न गयी हो।”

वह ख़ामोश हो गयी और मैं भी चुप हो गया। कमरे में पूरी तरह ख़ामोशी छायी थी। वह चकित खड़ी थी और शायद अपनी बेबसी पर कुढ़ रही थी।

“आप दरवाज़ा नहीं खोलेंगे?” उसने कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद कहा, “देखिये मुझे न सताइये, वरना इसका अन्जाम अच्छा न होगा।”

“मेरे पास चाबी नहीं, इसलिए मजबूर हूँ। हाँ अलबत्ता शाम को दरवाज़ा खोला जा सकता है इसलिए कि शायद उस वक़्त तक तलाश करने पर मिल जाये।”

“और मैं उस वक़्त तक यहीं क़ैद रहूँगी?”

“नहीं, तुम बड़ी खुशी से सेहन में, कमरों में, कोठों पर जहाँ चाहो कूद सकती हो, गा सकती हो, मुझे कोई, एतराज़ नहीं।”

“परमात्मा जाने आपको क्या हो गया है।” वह मेरी गुफ़्तगू के अन्दाज़ पर काफ़ी हैरान थी।

“मैं अच्छा-भला हूँ, लेकिन कभी-कभी तफ़रीह (मनोरंजन) भी तो होनी चाहिए। क्या तुम इसकी क़ायल नहीं हो। क्या तुम कभी ऐसा तफ़रीह मज़ाक़ नहीं करतीं।”

“मुझे घर जाना है मोहन साहब!” उसने मेरे सवाल का जवाब दिया।

“तुम बिल्कुल सही कह रही हो। तुम्हें घर जाना है। घर गया पानी से भर और उसमें बड़े-बड़े कछुओं का डर? लेकिन बताओ मैं क्या कर सकता हूँ?”

“चाबी दे दीजिये। बहुत सता चुके, अब न सताइये।”

“देवी जी, मुझे अफ़सोस है कि वह कमबख़्त अभागी गुम हो गयी है।”

“गुम हो गयी है, गुम हो गयी है, आपने ये क्या रट लगा रखी है। आप चाबी क्यों नहीं देते।”

“मेरे पास नहीं है सरकार, कुत्ते के पेट में है।”

“मोहन साहब! लड़कियों से इस तरह का मज़ाक उचित नहीं। कुत्ते का पेट आपकी जेब है।”

“अच्छा तो यूँ ही होगा।”

“यूँ ही क्या होगा, चाबी लाइये मैं जाना चाहती हूँ।”

“मैं एक बार नहीं सौ बार कह चुका हूँ कि चाबी मेरे पास नहीं है, नहीं है।”

“चाबी आपके पास है, आपके पास है, आपके पास है।”

“मेरे पास नहीं, नहीं, नहीं है।”

“नहीं आप ही के पास है, है, है।” उसने है को सौ मर्तबा दोहराते हुए कहा।

“अच्छा नहीं थी, तो है।”

“तो लाइये, जेब से निकालिये।”

“मैं नहीं दूँगा।”

“आपको देनी पड़ेगी।”

“कोई ज़ोर-ज़बर्दस्ती है?”

“मैं चिल्लाना शुरू कर दूँगी।” उसने मुझ पर रोब गाँठा।

“बड़े शौक़ से।” मैंने बड़े इत्मिनान से जवाब दिया। “मगर तुमको ये मालूम होना चाहिए कि नाहक़ अपना गला फाड़ोगी हलक़ थकाओगी—कुछ भी न होगा। पीट के देख लो। मैं झूठ नहीं कहता—इस कमरे में कोई रोशनदान नहीं। दरवाज़े पर जितने पर्दे लटक रहे हैं सब-के-सब मोटे हैं। मुझे बचपन ही में इसका कई मर्तबा कटु अनुभव हो चुका है कि यहाँ से बुलन्द-से-बुलन्द आवाज़ भी बाहर नहीं जा सकती। माता जी एहतियातन मुझे इस कमरे में पीटा करती थीं। मैं इस मार से छुटकारा हासिल करने के लिए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया करता था कि पिताजी मेरी आवाज़ सुन लें मगर निरर्थक—तुम बेकार चिल्लाओगी।”

पार्वती ने मेरी बात सुनी और हारे हुए इन्सान की तरह कहा, “लेकिन आप चाबी नहीं देंगे?”

“मुझे अफ़सोस से कहना पड़ता है कि नहीं।”

“क्यों? इसकी वजह?”

“फिर वही सवाल।”

“आपका मज़ाक हद से ज़्यादा बढ़ रहा है।” उसने अपनी साड़ी के गिरते हुए पल्लू को सँभालते हुए कहा, “मैं ये सब मामला जैसे का तैसा विमला को सुना दूँगी।”

“बड़े शौक़ से, मैं आज शाम को दिल्ली जा रहा हूँ। इसके अलावा बेचारी विमला कर भी क्या सकेगी?”

“वह आपके पिताजी से शिकायत करेगी।”

“मेरी एक झिड़की उसकी ज़बान बन्द करने के लिए काफ़ी होगी।”

“तो मैं खुद उनसे सब कुछ कह दूँगी।”

“जो दिल में आये कर लेना। इस वक़्त उसके इज़हार की ज़रूरत नहीं है।”

मैंने कहने को तो ये कह दिया मगर दिल में बहुत डरा पिताजी यद्यपि नर्म दिल थे।

मगर इस किस्म की शरारत का हाल सुनकर उनका गुस्सा होना लाज़िम था। बहरहाल मैंने सोच रखा था कि अगर पार्वती ने उनसे कह दिया तो मैं सर झुका कर उनकी डाँट-फटकार सुन लूँगा। दरअसल मैं किसी क़ीमत पर भी इस इधर-उधर की चीज़ें कुतरकर झट से अपने बिल में घुस जाने वाली चुहिया को अपने बदले की पकड़ से बाहर नहीं निकालना चाहता था।

मुझे खामोश देखकर वह मेरे फ़र्ज़ से आगाह करने की ख़ातिर बोली, "आपको मालूम होना चाहिए कि मुझे घर जाना है। बहुत दिल्लगी हो चुकी। अब कुंजी निकालिये।"

"तुम नहीं जा सकती हो।"

"ये भी अजीब तानाशाही है।"

"हाँ इस मकान में मेरा राज है और सामने वाले मकान पर तुम्हारा। अपने मकान की छत पर तुम शिवाजी हो और हम तुम्हारी हुकूमत मानते आये हैं। तुमने हज़ारों मर्तबा चढ़े हुए पतंगों की कई-कई रील डोर समेत तोड़ ली है और हम ख़ामोश रहे हैं। आज तुम हमारी बादशाहत में हो, इसलिए तुम अपनी मनमानी नहीं कर सकतीं।"

"मैंने आपकी पतंग कभी नहीं तोड़ी, आप ग़लत कह रहे हैं।"

"तुम झूठ बोल रही हो पार्वती, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इस वक़्त मेरे हाथ बड़ी-बड़ी शक्तियों की बाग-डोर हैं। मर्दों से बात-बात पर नोंक-झोंक करना तुम्हारी फ़ितरत में दाख़िल है मगर शायद तुम्हें ये मालूम नहीं कि हम लोग बहुत कठोर होते हैं। बुरी तरह बदला लेते हैं। समझीं।"

ये सुनकर वह और भी घबरा गयी। "मैं जाती हूँ।"

वह दरवाज़े की तरफ़ बढ़ रही थी कि मैंने दौड़कर दहलीज़ में उसका रास्ता रोक लिया, "तुम कमरे ही में रहोगी?"

"हटिये, मुझे जाने दीजिये।" उसने मेरे बाजू को झटका दिया।

मैं वहीं पर जमा रहा। ये देखकर वह एक क़दम पीछे हट गयी और सख़्त गुस्से की हालत में कहा, "आप ज़बर्दस्ती कर रहे हैं।"

"अभी तुमने इस ज़बर्दस्ती का आधा भी नहीं देखा।"

"आप मुझे नहीं जाने देंगे?"

"नहीं।"

"मैं रो दूँगी, मोहन साहब मैं सर पीट लूँगी अपना।" और उसकी आँखों से वाक़यी टप-टप आँसू गिरने लगे। इसी हालत में वह रोनी आवाज़ में धमकियाँ देती हुई आगे बढ़ी। मुझे धक्का देकर उसने दरवाज़े से बाहर निकलना चाहा। इस कशमकश और परेशानी में व्यथित देखकर मुझे उस पर तरस आ गया और जब वह ताज़ा हमले के लिए आगे बढ़ी तो मैंने बड़े आराम से उसके गीले होंठों को अपने लबों से छू लिया।

मेरे लबों का उसके होंठों को छूना था कि आफ़त-बरपा हो गयी। ये समझिये कि किसी ने आतिशबाज़ी की छछून्दर को आग दिखा दी है। उसने मुझे दो मोटी-मोटी गालियाँ दीं कि तौबा भली और मेरे सीने को अपने हाथों से धड़ाधड़ पीटना शुरू कर दिया लुत्फ़ ये है

कि आप रोती जाती थी। आख़िरकार जब मुझे मार-मारकर थक गयी तो ज़मीन पर बैठकर अपने सर को घुटनों में छुपाकर और भी ज़्यादा ज़ोर से रोना शुरू कर दिया।

आधे घंटे के अनुरोध के बाद उसने अपनी आँखों से आँसू बहाने बन्द किये। इसके बाद मैंने जेब से चाबी निकाली और सदर दरवाज़ा खोलकर अपने कमरे की तरफ़ जाते हुए कहा, “दरवाज़ा खुला है और आप जा सकती हैं।”

उस रोज़ शाम को मैं दिल्ली चला गया और पन्द्रह रोज़ के बाद वापस आया। चूँकि घर में किसी ने इस शरारत के बारे में मुझसे प्रश्न न किया। इसलिए मालूम हुआ कि पार्वती ने मेरा चैलेंज कुबूल कर लिया है। ज़ाहिर था कि वह इन्तिक़ाम ज़रूर लेगी।

एक रोज़ मैंने मेज़ का दराज़ खोलकर अपनी बड़ी तस्वीर निकाली, इसलिए कि मुझे उसका फ्रेम बनवाना था। ये फोटो ख़ाकी रंग के बड़े लिफ़ाफ़े में बन्द थी। चुनांचे मैं उसको खोलकर देखे बग़ैर फ्रेम-साज़ के यहाँ ले गया। उसकी दुकान पर मैंने डेढ़ घंटे के सोच-विचार के बाद फ्रेम के लिए एक लकड़ी को चुना और कुछ हिदायत देने के बाद तस्वीर वाला लिफ़ाफ़ा दुकानदार को दे दिया। उसने जब उसे खोलकर देखा तो खिलखिलाकर हँस पड़ा। मैंने जब तस्वीर पर नज़र दौड़ायी तो देखा उस पर स्याह पेन्सिल से मूँछें और दाढ़ी बनी हुई हैं। नाक पर एक स्याह गोला-सा रखा है और चश्मे के शीशे बिल्कुल स्याह कर दिये गये हैं। ये तस्वीर मेरी थी मगर इस बिगड़ी हालत में उसको पहचानना बहुत कठिन था। पहले-पहल तो मैं बहुत विस्मित हुआ कि ये किसकी हरकत है मगर फ़ौरन ही सब मामला साफ़ हो गया —शिवाजी मेरी ग़ैर हाज़िरी में अपनी हमसाया सल्तनत (पड़ोसी राज्य) पर निहायत कामयाबी से छापा मार गये थे।

अल्ला दित्ता

दो भाई थे। अल्ला रक्खा और अल्ला दित्ता। दोनों रियासत पटियाला के रहने वाले थे। उनके पुरखे ज़रूर लाहौर के थे। जब इन दोनों भाइयों का दावा नौकरी की तलाश में पटियाला आया तो वहीं का हो रहा।

अल्ला रक्खा और अल्ला दित्ता दोनों सरकारी नौकर थे। एक चीफ़ सैक्रेट्री साहब का अर्दली था। दूसरा कन्ट्रोलर ऑफ़ स्टोर्स के दफ़्तर का चपरासी।

दोनों भाई एक साथ रहते थे ताकि ख़र्च कम हो। बड़ी अच्छी गुज़र रही थी। एक सिर्फ़ अल्ला रक्खा को जो कि बड़ा था, अपने छोटे भाई के चाल चलन के बारे में शिकायत थी। वह शराब पीता था, रिश्वत लेता था और कभी-कभार किसी ग़रीब और लाचार औरत को फाँस भी लिया करता था, मगर अल्ला रक्खा ने हमेशा इन बातों को अनदेखा कर दिया ताकि घर की सुख-शान्ति छिन्न-भिन्न न हो।

दोनों विवाहित थे। अल्ला रक्खा की दो लड़कियाँ थीं। एक का विवाह हो चुका था। अपने घर में ख़ुश थी। दूसरी जिसका नाम सुगरा था तेरह बरस की थी और प्राइमरी स्कूल में पढ़ती थी।

अल्ला दित्ता की एक लड़की थी—ज़ैनब-उसकी शादी हो चुकी थी मगर अपने घर में वह इतनी ख़ुश नहीं थी, इसलिए कि उसका पति शराबी-कबाबी और अय्याश था, फिर भी वह जैसे-तैसे निभाये जा रही थी।

ज़ैनब अपने भाई तुफ़ैल से तीन वर्ष बड़ी थी। इस हिसाब से तुफ़ैल की उम्र अट्ठारह-उन्नीस वर्ष के क़रीब होती थी। वह लोहे के एक छोटे कारख़ाने में काम सीख रहा था। लड़का बुद्धिमान था। इसलिए काम सीखते हुए भी उसे पन्द्रह रुपये महीने के मिल जाते थे।

दोनों भाइयों की बीवियाँ बहुत नेक, आज्ञाकारी, मेहनती और पूजा-अर्चना में यक़ीन रखने वाली औरतें थीं। उन्होंने अपने पतियों को कभी शिकायत का अवसर नहीं दिया। ज़िन्दगी बहुत सीधी गुज़र रही थी कि अचानक हिन्दू-मुसलमान दंगा शुरू हो गया। दोनों भाइयों ने कभी सोचा भी न था कि उनकी जानो-माल और इज़्ज़त-आबरू पर हमला हो सकता है और उन्हें बहुत अफ़रातफ़री और बेचारगी की हालत में पटियाला छोड़ना पड़ेगा—मगर ऐसा ही हुआ।

दोनों भाइयों को बिल्कुल पता नहीं चला कि इस ख़ूनी तूफ़ान में कौन-सा दरख़्त गिरा, किस पेड़ की कौन सी टहनी टूटी—जब होशो-हवास कुछ सही हुए तो जो हकीकतें सामने आयीं उन्हें देखकर वे काँप गये।

अल्ला रक्खा के दामाद को कत्ल कर दिया गया था और उसकी पत्नी को दंगाइयों ने बड़ी बेदर्दी से मार दिया था।

अल्ला दित्ता की बीवी को भी सिखों ने कृपाणों से काट डाला था। ज़ैनब के बदचलन पति को भी मौत के घाट उतार दिया था।

रोना-धोना बेकार था। सब्र-सन्तोष करके बैठ रहे। पहले तो कैम्पों में गलते-सड़ते रहे फिर गली-कूँचों में भीख माँगा किये। आख़िर में भगवान को दया आयी। अल्ला दित्ता को गुजराँवाला में एक छोटा-सा टूटा-फूटा मकान सर छुपाने को मिल गया। तुफ़ैल ने दौड़ धूप की तो उसे भी काम मिल गया।

अल्ला रक्खा लाहौर ही में देर तक दर-बदर की ठोकरें खाता रहा। जवान लड़की साथ थी। जैसे एक पहाड़ का पहाड़ उसके सर पर खड़ा था। भगवान ही जानता है कि यह डेढ़ बरस का समय उसने किस तरह गुज़ारा। पत्नी और बड़ी बेटी का ग़म वह लगभग भूल चुका था। उससे पहले कि वह कोई ख़तरनाक कदम उठाता उसे पटियाला के एक बड़े अफ़सर मिल गये, जो उस पर बहुत मेहरबान थे, उसने उन्हें शुरू से लेकर अन्त तक अपनी आप-बीती सुनायी। आदमी रहमदिल था। उसको बड़ी कठिनाइयों के बाद लाहौर के एक अस्थायी दफ़्तर में अच्छी नौकरी मिल गयी। उन्होंने दूसरे ही दिन उसे भी चालीस रुपये माहवारी पर रख लिया और एक छोटा-सा क्वार्टर भी रहने के लिए दिलवा दिया।

अल्ला रक्खा ने ख़ुदा का शुक्र अदा किया जिसने उसकी सारी मुश्किलें दूर कीं। अब वह आराम से साँस ले सकता था और भविष्य के बारे में फ़ुर्सत से सोच सकता था। सुगरा बड़े सलीके वाली सुघड़ लड़की थी। सारा दिन घर के काम-काज में लगी रहती थी। इधर-उधर से लकड़ियाँ चुनकर लाती, चूल्हा सुलगाती और मिट्टी की हँडिया में हर रोज़ इतना सालन बनाती, जो दोनों समय के लिए पूरा हो जाये। आटा गूँधती और पास के तन्दूर पर जाकर रोटियाँ लगवा लेती।

तन्हाई में आदमी क्या कुछ नहीं सोचता, तरह-तरह के ख़यालात आते हैं। सुगरा प्रायः दिन में अकेली होती थी और अपनी माँ-बहन को याद कर आँसू बहाती रहती थी, पर जब उसका बाप घर आता तो वह अपनी आँखों के सारे आँसू सोख लेती थी, जिससे कि उसके जख़्म हरे न हों। लेकिन वह इतना जानती थी कि उसका अब्बा अन्दर-ही-अन्दर घुला जा रहा है, उसका दिल हर वक़्त रोता रहता है मगर वह किसी से कहता नहीं। सुगरा से भी उसने कभी उसकी माँ और बहन के बारे में ज़िक्र नहीं किया था।

यों तो गिरते पड़ते ज़िन्दगी गुज़र हो रही थी। उधर गुजराँवाला में अल्ला दित्ता अपने भाई की तुलना में थोड़ा सम्पन्न था। क्योंकि उसे भी नौकरी मिल गयी थी और ज़ैनब भी थोड़ा बहुत सिलाई का काम कर लेती। सब मिलाकर सौ-सवा सौ रुपये महीने के हो जाते थे, जो तीनों के लिए काफ़ी थे। मकान छोटा था मगर ठीक था। ऊपर की मंज़िल में तुफ़ैल रहता था नीचे की मंज़िल में ज़ैनब और उसके अब्बा। दोनों एक-दूसरे का बहुत ख़याल रखते थे। अल्ला दित्ता उसे ज़्यादा काम नहीं करने देता था। भोर में उठते ही वह आँगन में झाड़ू देकर चूल्हा सुलगा देता था कि ज़ैनब का काम कुछ हल्का हो जाये। वक़्त मिलता तो वह दो-तीन

घड़े भरकर घड़ौची पर रख देता था।

जैनब ने अपने स्वर्गीय पति को कभी याद नहीं किया था। ऐसा लगता था जैसे कि वह उसके जीवन में कभी था ही नहीं। वह ख़ुश थी, अपने बाप के साथ बहुत ख़ुश थी और कई बार वह उससे लिपट भी जाती थी—तुफ़ैल के सामने भी और उसको ख़ूब चूमती थी।

सुगरा अपने बाप से ऐसी चुहल नहीं करती थी—अगर सम्भव होता तो वह उससे पर्दा भी करती, इसलिए नहीं कि वह कोई ग़ैर था—सिर्फ़ आदर के लिए—उसके दिल से कई बार यह दुआ निकलती थी कि या परवरदिगार मेरा बाप मेरा जनाज़ा उठाये।

प्रायः कई प्रार्थनाएँ उल्टी सिद्ध होती हैं। जो ख़ुदा को मंजूर था वही होना था। सुगरा गरीब पर दुख दरिद्र का एक और पहाड़ टूटना था।

जून के महीने में दोपहर को दफ़्तर के किसी काम से जाते हुए तपती हुई सड़क पर अल्ला रक्खा को ऐसी लू लगी कि बेहोश होकर गिर पड़ा। लोगों ने उठाया। अस्पताल पहुँचाया पर दवा ने कुछ काम नहीं किया।

सुगरा अपने बाप की मौत के सदमे से पागल हो गयी। उसने अपने बाल नोंच डाले। पड़ोसियों ने बहुत दम दिलासा दिया, मगर यह कारगर कैसे होता—वह तो ऐसी किश्ती की तरह थी जिसका न बादबान (ऊपरी कपड़ा) हो न कोई पतवार और बीच मँझधार में आ फँसी है।

पटियाला का वह अफ़सर जिसने स्वर्गीय अल्ला रक्खा को नौकरी दिलवायी थी, उसके परिवार के लिए देवदूत की तरह से था। उन्हें जब इसकी सूचना मिली तो वे दौड़े आये। सबसे पहले उन्होंने यह काम किया कि सुगरा को मोटर में बिठा कर घर छोड़ आये और अपनी पत्नी से कहा कि वह इसका ख़याल रखे। फिर अस्पताल पहुँचकर अल्ला रक्खा के मुसल का प्रबन्ध वहीं किया और दफ़्तरवालों से कहा कि वो उसे दफ़ना आयें।

अल्ला दित्ता को अपने भाई के देहान्त की सूचना बड़ी देर से मिली। बहरहाल, वह लाहौर आया और पूछता-पाछता वहाँ पहुँच गया जहाँ सुगरा थी। उसने अपनी भतीजी की बहुत हिम्मत बँधाई, बहलाया, प्यार किया, सीने से लगाया। संसार की निस्सारता-की चर्चा करते हुए उसे बहादुर बनने को कहा मगर सुगरा के शोक संतप्त मन पर इन सब बातों का क्या असर होता। बेचारी ख़ामोशी से अपने आँसू दुपट्टे में सुखाती रही।

अल्ला दित्ता ने अन्त में उस शरीफ़ अफ़सर का आभार प्रकट किया और कहा, “मेरी गर्दन आपके एहसानों तले सदा झुकी रहेगी। मरहूम के कफ़न-दफ़न का प्रबन्ध आपने किया, फिर इस बेआसरा बच्ची को आपने अपने घर में जगह दी—ख़ुदा आपका भला करे—अब मैं इसे अपने साथ लिये जाता हूँ, मेरे भाई की क़ीमती निशानी है।”

अफ़सर साहब ने कहा, “ठीक है—लेकिन तुम अभी इसे कुछ दिन और यहाँ रहने दो—इसकी तबियत थोड़ी सँभल जाये तो ले जाना।”

अल्ला दित्ता ने कहा, “हज़ूर! मैंने सोचा है कि इसकी शादी अपने लड़के से करूँगा और बहुत जल्दी ही।”

अफ़सर बहुत ख़ुश हुआ, “बड़ा नेक इरादा है—लेकिन उस सूरत में जबकि तुम

इसकी शादी अपने लड़के से करने वाले हो, इसका उसी घर में रहना मुनासिब नहीं। तुम शादी का बन्दोबस्त करो, मुझे तारीख़ से सूचित कर देना। भगवान की कृपा से सब ठीक हो जायेगा।"

बात ठीक थी। अल्ला दित्ता वापस गुजराँवाला चला गया। ज़ैनब उसकी ग़ैर हाज़िरी में बड़ी उदास हो गयी थी। जब वह घर में घुसा तो उससे लिपट गयी और पूछने लगी कि उसने इतनी देर क्यों लगायी। अल्ला दित्ता ने प्यार से उसे एक तरफ़ हटाया, "अरे बाबा आना-जाना तो क्या है—कब्र पर फ़ातिहा पढ़नी थी, सुगरा से मिलना था, उसे यहाँ लाना था।"

ज़ैनब पता नहीं क्या सोचने लगी, 'सुगरा को यहाँ लाना था' एकदम चौंक कर "हाँ—सुगरा को यहाँ लाना था, पर वह है कहाँ?"

"वहीं है—पटियाला के एक बड़े नेक दिल अफ़सर हैं, उनके पास है। उन्होंने कहा कि जब तुम उसकी शादी का बन्दोबस्त करोगे तो ले जाना" यह कहते हुए उसने बीड़ी सुलगाई।

ज़ैनब ने बड़ी दिलचस्पी लेते हुए पूछा, "उसकी शादी का बन्दोबस्त कर रहे हो? कोई लड़का है तुम्हारी नज़र में?"

अल्ला दित्ता ने ज़ोर का कश लिया, "अरे भई अपना तुफ़ैल—मेरे बड़े भाई की सिर्फ़ एक ही निशानी तो है—मैं उसे क्या गैरों को सौंप दूँ।"

जैनब ने ठंडी साँस भरी, "तो सुगरा की शादी तुम तुफ़ैल से करोगे।"

अल्ला दित्ता ने जवाब दिया, "हाँ—क्या तुम्हें कोई एतराज़ है?"

ज़ैनब ने बड़े मज़बूत स्वर में कहा, "हाँ—और तुम जानते हो क्यों है—यह शादी कभी नहीं होगी।"

अल्ला दित्ता मुस्कुराया—ज़ैनब की ठुड्डी पकड़कर उसने उसका मुँह चूमा, "पगली—हर बात पर शक करती है—और बातों को छोड़ आख़िर मैं तुम्हारा बाप हूँ।"

ज़ैनब ने बड़ी ज़ोर की "हुँह" की। "बाप।" और अन्दर कमरे में जाकर रोने लगी।

अल्ला दित्ता उसके पीछे गया और उसे पुचकारने लगा।

दिन बीतते गये, तुफ़ैल सुशील लड़का था। जब उसके बाप ने सुगरा की बात की तो वह फ़ौरन मान गया, और तीन-चार महीने बाद की तारीख़ तय हो गयी—अफ़सर ने फ़ौरन सुगरा के लिए एक बहुत अच्छा जोड़ा सिलवाया जो उसे शादी के दिन पहनना था। एक अँगूठी भी ले दी। फिर उसने मुहल्लेवालों से अपील की कि एक अनाथ लड़की की शादी के लिए जो बिल्कुल बेसहारा है वे सब अपने सामर्थ्य के हिसाब से कुछ-न-कुछ दें।

सुगरा को करीब-करीब सभी जानते थे और उसकी हालत से वाकिफ़ भी थे, इसलिए उन्होंने मिल-मिलाकर उसके लिए बड़ा अच्छा दहेज़ तैयार कर दिया।

सुगरा दुल्हन बनी तो उसे ऐसा लगा जैसे कि सारे दुख इकट्ठे होकर उसे पीस रहे हों। बहरहाल जब वह अपने ससुराल पहुँची जहाँ उसका स्वागत ज़ैनब ने किया कुछ इस तरह कि सुगरा को तभी पता चल गया कि वह उसके साथ बहनों का-सा सलूक कभी नहीं करेगी, बल्कि सास की तरह पेश आयेगी।

सुगरा का शक सही था, उसके हाथों की मेहंदी अभी अच्छी तरह उतरी भी नहीं थी

कि ज़ैनब ने उससे नौकरों के काम लेने शुरू कर दिये। झाड़ू वह देती, बर्तन वह माँजती, चूल्हा वह झोंकती, पानी वह भरती। यह सब काम वह बड़ी फुर्ती और सलीके से करती, लेकिन फिर भी ज़ैनब ख़ुश न होती, बात-बात पर उसको डाँटती-डपटती, झिड़कती रहती।

सुगरा ने दिल में तय कर लिया था, वह यह सब कुछ बर्दाश्त करेगी और कभी शिकायत का लफ़्ज़ ज़बान पर नहीं लायेगी, क्योंकि अगर उसे यहाँ से धक्का मिल गया तो उसके लिए और कोई ठिकाना नहीं था।

अल्ला दित्ता का सलूक बुरा नहीं था। ज़ैनब की नज़र बचाकर कभी वह उसको प्यार कर लेता था और कहता था, “वह बिल्कुल चिन्ता न करे सब ठीक हो जायेगा।”

सुगरा को उससे बहुत सहारा मिल जाता, ज़ैनब जब कभी अपनी किसी सहेली के यहाँ जाती और अल्ला दित्ता इत्तिफ़ाक से घर पर होता, तो वह उससे दिल खोलकर प्यार करता। उससे बड़ी मीठी-मीठी बातें करता। काम में उसका हाथ बँटाता। उसके लिए जो चीज़ें उसने छिपाकर रखी होती थीं देता और सीने के साथ लगाकर कहता, “सुगरा तुम बड़ी प्यारी हो।”

सुगरा झेंप जाती। दरअसल वह इतने पुर जोश प्यार की आदी नहीं थी। उसका मरहूम बाप अगर कभी उसे प्यार करना चाहता था तो सिर्फ़ उसके सर पर हाथ फेर दिया करता था, या उसके कन्धे पर हाथ रखकर यह दुआ करता था, “ख़ुदा मेरी बेटी के नसीब अच्छे करे।”

सुगरा तुफ़ैल से बहुत ख़ुश थी। वह बहुत अच्छा पाता था, जो कमाता था उसके हवाले कर देता था। मगर सुगरा ज़ैनब को दे देती थी इसलिए कि वह उसके बेपनाह गुस्से से डरती थी। तुफ़ैल से सुगरा ने ज़ैनब की बदसलूकी, उसके सास जैसे बर्ताव का कभी ज़िक्र नहीं किया था। वह शान्त स्वभाव की थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके कारण घर में किसी प्रकार का झगड़ा हो। और भी कई बातें थीं जो वह तुफ़ैल से कहना चाहती तो कह देती मगर उसे डर था कि ऐसा करने पर तूफ़ान बर्पा हो जायेगा और तो इसमें से बचकर निकल जायेंगे, मगर वह अकेली उसमें फँस जायेगी, और उससे उबर न पायेगी।

ये ख़ास बातें उसे कुछ दिन पहले ही पता चली थीं और वह काँप गयी थी। अब अल्ला दित्ता उसे प्यार करना चाहता तो वह अलग हट जाती या दौड़कर ऊपर चली जाती, जहाँ वह और तुफ़ैल रहते थे।

तुफ़ैल को शुक्र की छुट्टी होती, अल्ला दित्ता को इतवार की। अगर ज़ैनब घर पर होती तो वह जल्दी-जल्दी काम-काज ख़त्म कर ऊपर चली जाती। अगर इत्तिफ़ाक से इतवार को ज़ैनब कहीं बाहर गयी होती, तो सुगरा की जान पर बनी रहती। डर के मारे उससे काम न होता, लेकिन ज़ैनब का ख़याल आते ही उसे मजबूरन काँपते हाथों और धड़कते दिल से रोते-झींकते सब कुछ करना पड़ता। अगर वह खाना वक़्त पर न पकाये तो उसका पति भूखा रहे क्योंकि वह ठीक बारह बजे अपना शागिर्द रोटी के लिए भेज देता था।

एक दिन इतवार को जब ज़ैनब घर पर नहीं थी और वह आटा गूँध रही थी, अल्ला दित्ता पीछे से दबे पाँव आया और खिल-अन्दाज़ में उसकी आँखों पर हाथ रख दिये, वह तड़पकर उठी मगर अल्ला दित्ता ने मज़बूती से उसे अपनी बाँहों में जकड़ लिया। सुगरा ने

चीखना शुरू कर दिया, मगर वहाँ सुनने वाला कौन था। अल्ला दित्ता ने कहा, “शोर मत मचाओ। यह सब बेकार है—चली आओ।”

वह चाहता था कि सुगरा को उठाकर अन्दर ले जाये। वह कमज़ोर थी मगर ख़ुदा जाने कहाँ से उसमें इतनी ताकत आ गयी कि अल्ला दित्ता की पकड़ से निकल गयी और हाँफती काँपती ऊपर पहुँच गयी, कमरे में घुसकर उसने अन्दर से कुंडी चढ़ा ली।

थोड़ी देर के बाद ज़ैनब आ गयी। अल्ला दित्ता की तबियत खराब हो गयी थी। अन्दर कमरे में लेटकर उसने ज़ैनब को पुकारा। वह आयी तो उससे कहा, “इधर आओ मेरी टाँगें दबाओ”—ज़ैनब उचककर पलँग पर बैठ गयी, और अपने बाप की टाँगें दबाने लगी—थोड़ी देर के बाद दोनों की साँस तेज़-तेज़ चलने लगी।

ज़ैनब ने अल्ला दित्ता से पूछा, “क्या बात है आज तुम अपने आप में नहीं हो।”

अल्ला दित्ता ने सोचा कि ज़ैनब से छिपाना फ़िजूल है, इसलिए उसने सारी बात बता दी—ज़ैनब सुनकर आग-बबूला हो गयी, “क्या एक काफ़ी नहीं थी—तुम्हें पहले तो शर्म न आयी पर अब तो आनी चाहिए थी—मुझे मालूम था कि ऐसा होगा इसीलिए मैं शादी के खिलाफ़ थी—अब सुन लो कि सुगरा इस घर में नहीं रहेगी।”

अल्ला दित्ता ने बड़े मिस्कीन स्वर में पूछा, “क्यों?”

ज़ैनब ने खुले तौर पर कहा, “मैं इस घर में अपनी सौत नहीं देखना चाहती।”

अल्ला दित्ता का गला सूख गया। उसके मुँह से कोई बात न निकल सकी।

ज़ैनब बाहर निकली तो उसने देखा सुगरा आँगन में झाड़ू दे रही है। वह चाहती थी कि उससे कुछ कहे मगर खामोश रही।

इस घटना को दो महीने गुज़र गये—सुगरा ने अनुभव किया कि तुफ़ैल उससे खिंचा-खिंचा रहता है। ज़रा-ज़रा-सी बात पर उसको शक की निगाहों से देखता है। आख़िर एक दिन आया कि उसने तलाक़नामा उसके हाथ में दिया और उसे घर से बाहर निकाल दिया।

❑❑❑

अगर आपको मेरी कहानियाँ अश्लील या गंदी लगती हैं, तो जिस समाज में आप रह रहे हैं, वह अश्लील और गंदा है। मेरी कहानियाँ तो केवल सच दर्शाती हैं...

अक्सर ऐसा कहते थे मंटो जब उन पर अश्लीलता के इल्ज़ाम लगते। बेबाक सच लिखने वाले मंटो बहुत से ऐसे मुद्दों पर भी लिखते जिन्हें उस समय के समाज में बंद दरवाज़ों के पीछे दबा कर, छुपा कर रखा जाता था। सच सामने लाने के साथ, कहानी कहने की अपनी बेमिसाल अदा और उर्दू ज़बान पर बेजोड़ पकड़ ने सआदत हसन मंटो को कहानी का बेताज बादशाह बना दिया। मात्र 43 सालों की ज़िंदगी में उन्होंने 200 से अधिक कहानियाँ, एक उपन्यास, तीन निबन्ध-संग्रह और अनेक नाटक, रेडियो और फिल्म पटकथाएं लिखीं। फ्रेंच और रूसी लेखकों से प्रभावित, वामपंथी सोच वाले मंटो के लेखन में सच्चाई को ऐसे पेश करने की ताकत है जो लंबे अर्से तक पाठक के दिलो-दिमाग पर अपनी पकड़ बनाए रखती है। 2012 में पूरे हिन्दुस्तान में मनाई गई मंटो की जन्म-शताब्दी इस बात का सबूत है कि मंटो आज भी अपने पाठकों और प्रशंसकों के लिए ज़िंदा हैं।

Cover Design
archanajain@archanacreatives.com